बिहार के नवयुवक हृदय

सपादक—

ठाकुर मंगलप्रसाद सिंह

प्रकाशक—

हिंदी-साहित्य-कार्यालय

लहेरियासराय

प्रथम संस्करण] सं० १९८५ वि० [मूल्य ३)

बिहार के नवयुवक हृदय
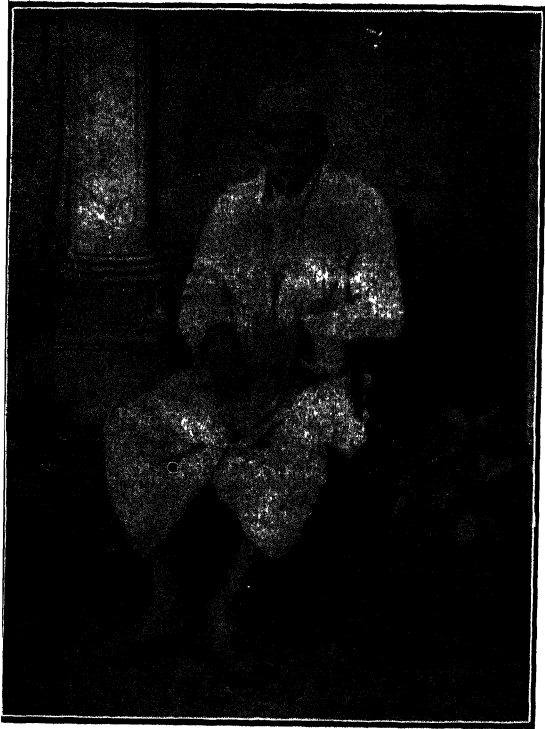
श्री ठाकुर मंगलप्रसाद सिंह

प्रकाशक—
श्री आनंदविहारी प्रसाद
हिन्दी-साहित्य-कार्यालय
लहेरियासराय, दरभंगा
(बिहार)

मुद्रक—
श्री बृजभूषण लाल,
अग्रवाल प्रेस,
बनारसकैंट
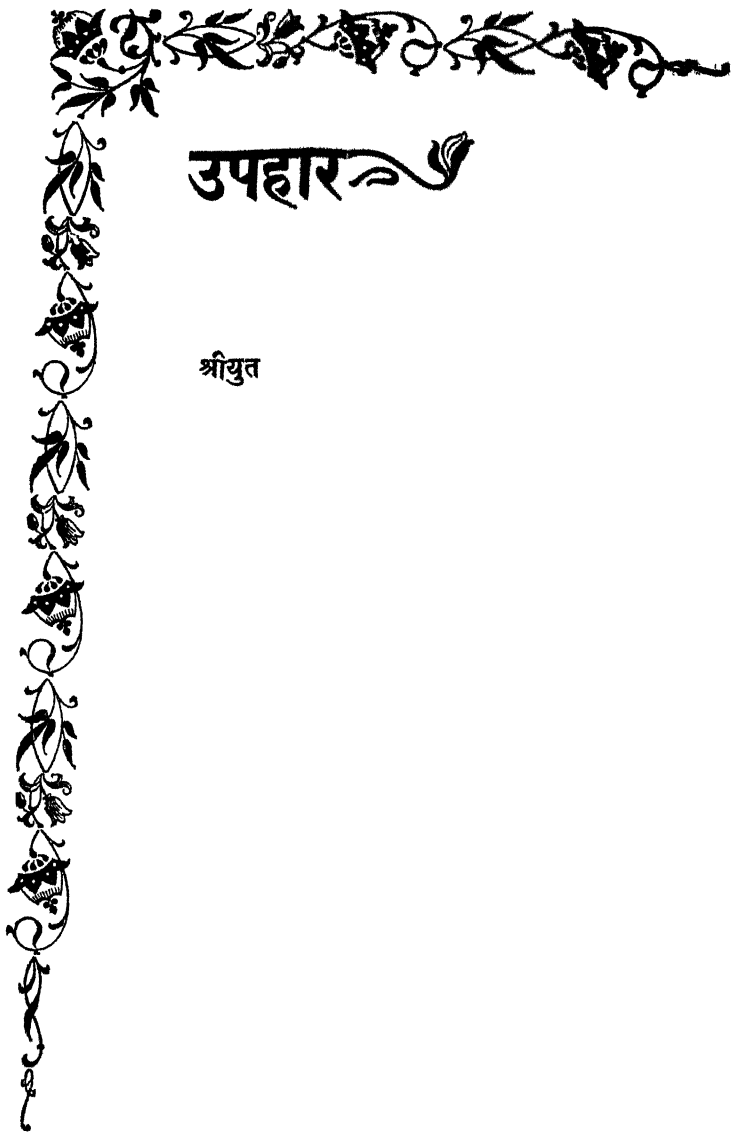
श्रीयुत

शीघ्र निकलेगा ! शीघ्र निकलेगा !!

बिहार के नवयुवक हृदय

[गद्य-भाग]

बिहारी नवयुवक लेखकों से सादर प्रार्थना है कि जिन लोगों की जीवनी किसी कारण से अब तक मेरे पास नहीं आयी है, वे अति शीघ्र निम्नलिखित पते से मेरे पास भेजने की कृपा करें। कारण, 'नवयुवक हृदय' का गद्य-भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा। साथ ही रचनाओं के कुछ उत्कृष्ट नमूने तथा चित्र भी आने चाहिये। पुस्तक में लेखकों की जीवनियाँ, उनकी रचनाओं के उत्कृष्ट नमूने तथा चित्र भी दिये जायेंगे। जिन महाशयों ने जीवनियाँ भेज दी हैं, वे अति शीघ्र चित्र और रचनाओं के चुने हुए नमूने भेजने की कृपा करें। आशा है, हमारे बिहारी नवयुवक साहित्यिक हमें इस कार्य्य में पूर्ण सहायता प्रदान कर कृतकार्य्य करेंगे।

निवेदक—

मंगलप्रसाद सिं[illegible]

हिन्दी-साहित्य-कार्य्यालय

लहेरियासराय

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा,
एम. ए., डि. लिट्., एल. एल. डी.

महामहोपाध्याय

डॉक्टर गंगानाथ झा

एम० ए०, डी० लिट्, एल-एल० डी०,

वाइस-चैंसलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय

की

सेवा मे

हमारी बातें

कविता-लता का उद्गम-स्थान है कवि-हृदय। प्रकृति-निरीक्षण-रूपी वायु, सद्गुरु के सदुपदेश-रूपी विमल वारि तथा कवि-रूपी माली की अनुक्षण देखरेख एवं उत्सुकता पाकर अध्ययन-परिशीलन-रूपी सुदृढ़ तरुवर के सहारे वह लोनी लता बढ़ती-फैलती, लहराती-इठलाती और यथाऋतु रंग-ढंग बदलती है। उसी लता के सुमनों के हार रसिकों के हृदय पर सुशोभित होते तथा उन्हीं हारों की बदौलत माली जन-साधारण से सम्मान एवं श्रेष्ठत्व का वरदान पाता है। माली के वे हार यदि शीतल, सुखद, सुरभित, सुन्दर और सत्य हुए तो माली और उसके हार हमारे सदा के साथी, सम्मान्य, प्रेम एवं हृदय के आभूषण हो गये। तभी माली की कीर्ति-कौमुदी संयोगियों और वियोगियों सबके लिए समान कल्याणकर सिद्ध होती है।

जिस प्रकार माली वर्णानुक्रम और व्यवहारानुक्रम दोनों से होते हैं उसी प्रकार कवि भी स्वभावप्रधान और कर्म या कृत्रिमताप्रधान होते हैं। स्वभावप्रधान कवि में ईश्वरदत्त एक प्रतिभा होती है जिसके कारण उसकी रचना स्वतः हृदयस्पर्शिनी, ओजस्विनी, मनोहारिणी एवं नित्यनूतन होती है, चाहे उसका रचना निरंकुशता—उच्छृंखलता का द्योतक छन्द-बन्द तथा अलंकार-रसादिकों के नियमों से अनियमित

और भाषा-भूषा से छूछी भले ही हो। कृत्रिमताप्रधान कवि अपनी अध्ययनप्राप्त योग्यता और मननशीलता के बल रप कविता करता है। उसकी रचना मे, शब्द-संघटन का चातुर्य, अलंकार-पुट का प्राचुर्य, रस-परिपाक का नैपुण्य, छन्द-बन्द के नियमों का पालन तथा भाषा-भूषा नपी तुली पाई जाती हैं, किन्तु उसकी रचना हृदय-तल पर सहसा आघात नही करती। प्रथम में कला का नग्न कलेवर दृष्टिगोचर होता है, द्वितीय में कला का काल्पनिक चित्र कुशल कारीगरी जताता है। प्रथम रचना हृदय में गुदगुदी पैदा करती है तो द्वितीय मानसिक विकास का परिचय देती और मुँह से 'वाह-वाह' कहवाती है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के कवि तब तक अधूरे हैं जब तक एक दूसरे की शैली और गुण का समावेश निज में नही कर लेता। प्रतिभाशाली कवि को अध्ययन-शीलता एवं रीति-ज्ञान की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कृत्रिमताप्रधान कवि को हृदय का सरस बनाना। अभ्यास, प्रकृति-निरीक्षण, सहानुभूति और प्रेम-विनिमय के सहारे दोनों अपने-अपने मार्ग साफ और सुगम कर सकते हैं।

सम्प्रति कवियों की वृद्धि से कतिपय व्यक्ति भीतचकित हो रहे हैं। उनमें कुछ तो अब तक मौन धारण किये बैठे हैं, कुछ अपने दिल की आग निकालने का मौका देख रहे हैं तथा कुछ संसार के सम्मुख अपना दुखड़ा रो रहे हैं। दुखड़ा रोने

वालो की दृष्टि में वर्तमान युग 'कविता की दुर्गति का युग' है। इस युग का प्रारम्भ ब्रजभाषा और खड़ी बोली के संघर्षण तथा खड़ी बोली के उत्थान से होता है और छायावाद या रहस्यवाद के प्रारम्भ-काल से इसका विकास अभिद्युत होता है। वे वर्तमान छायावाद को 'पाखंडवाद,' 'वितंडावाद' या 'छोकड़ावाद' कहते हैं तथा छन्द-बन्द, रस-अलंकारादि के नियमों की अवहेलना करते देख छायावादियों पर दुःख और क्रोध प्रकट करते हैं। इधर छायावाद के पोषक वर्तमान युग को 'साहित्यिक क्रान्ति' का युग बताते और अपने को 'क्रान्तिकारी'। वे इस क्रान्ति का भविष्य परिणाम उज्ज्वल, महत्वपूर्ण एव कल्याणकर कहते है। वे रीति-ग्रन्थों के अनुचर, प्राचीनता के सम्पोषक और छायावाद के अवरोधकों को 'पुराने खूसट' नाम से पुकारते तथा उन्हे बिना कुछ जली-कटी सुनाये चैन नही पाते। प्रथम की कट्टरता और द्वितीय का औद्धत्य आज हिन्दी के निर्मल साहित्य को कलुषित कर रहे हैं, इसका निराकरण करने की ओर किसी की दृष्टि नही जाती। दोनों यदि तनिक सहृदयता, सुजनता एवं त्यागशीलता से काम लें तो सुगमता से सब टंटा मिट जाय। दोनों एक दूसरे को इच्छानुसार हिन्दी की सेवा करने दें और प्रणाली की उत्कृष्टता का निर्णय, उसके 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का निर्णय, भविष्य पर छोड़ दें।

कविता किसी 'वाद' या 'रीति' की हो, पर मनुष्य

के जीवन की चिरसंगिनी होती है, असभ्य-से-असभ्य अवस्था में भी मनुष्य के साथ कविता थी और अब भी है। दर्शन विज्ञान आदि विषयों का अभाव किसी साहित्य में हो भले ही, किन्तु कविता का अभाव नही। हाँ, मनुष्य की अवस्था के अनुसार कविता का रूप भी बदलता है। इसी लिए किसी कविता से मुग्ध होकर हम उसके रचयिता कवि की जो अवस्था जानने को उत्सुक होते है, कवि के हृदय की जो ज्योति कविता में जगमगाती रहती है उसकी प्रतिज्योति से हमारे मन-मन्दिर का अन्धकार दूर होता है। अतः आदि-ज्योति की खोज में हमारे मनोवेग का झुक जाना स्वाभाविक ही है।

'सुमन' प्रत्येक नही हो सकता, पर सुमनों की 'सुरभि' से अपना मनोरंजन प्रत्येक कर सकता है। बहुतों ने ऐसा किया भी है। हम कवि नही, पर काव्यानुरागी अवश्य हैं, कवियों की कृति कीर्तनीय करने की कामना हममें है और स्वयं कविकीर्ति-कीर्तन मे प्रवृत्त रहते हैं। हमने अनुकरण से अपना मार्ग निकाला है सही, पर फिर भी कुछ मौलिकता और नवीनता साथ लिये आये है।

प्रस्तुत पुस्तक बिहार के नवयुवक कवियों की जीवनियो एवं उनकी रचनाओं के कुछ नमूनों का सग्रह है। बिहारी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के प्रति संयुक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सेवियों का घृणास्पद व्यवहार देख और उनको अपनी कोटि

में निष्पक्ष हृदय से स्थान देते न देख, उनके साथ समता और सौहार्द का आचरण करते न देख, 'उनकी भाषा भद्दी होती है, टकसाली नहीं'—ऐसा आक्षेप करते देख तथा अब तक इस ढंग के जितने भी ग्रन्थ निकले हैं उनमें उनका नाम मात्र को समावेश देख हमारा कार्य-क्षेत्र बिहार प्रान्त तक ही इतिश्री रहा है। इसके सिवा पुस्तक के कलेवर तथा अन्य प्रान्तों की जानकारी प्राप्त करने की कठिनाइयों की ओर ध्यान हुए तो हमें अपने विचार को पूर्ण युक्तियुक्त समझना पड़ा। पुस्तक तैयार करने को हमारे मित्र श्री लक्ष्मीनारायण सिंह जी 'सुधांशु' ने हमें प्रोत्साहित किया और हम कार्य में लग गये। इसके लिए हम उनका धन्यवाद करते हैं। 'प्रत्येक शुभ कर्म में विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है'—कहावत के अनुसार हमें भी अपनी उद्देश्य-सिद्धि में कितने ही झंझटों का सामना करना पड़ा है। अनेक मित्र हमारे शत्रु बन गये, कितनों की खुशामदें करनी पड़ीं, कितनों ने हमारा अपमान किया और कितनों के हतोत्साहपूर्ण वचनों और तानों ने दिल में घाव किये। इन सबों को सहते हुए भी हम अपने कार्य में लगे रहे और जैसा कुछ फल निकला, वह अब आप पाठकों के सामने है। हम नहीं कह सकते कि यह पुस्तक एक-दम पूर्ण और प्रामाणिक मानी जाय। यह तो आप पाठकों के उदार निर्णय पर निर्भर है। किन्तु इतना हम निःसंकोच कह सकते हैं कि इसे प्रामाणिक मानने योग्य बनाने में हमने

काफी कोशिश की है। आशा ही नही, हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक पक्षपातियों की नजर खोल देगी तथा शायद उनके हृदय मे समता का बीजारोपण करेगी। इतना ही नही, यह हिन्दी-भाषा के इतिहास-निर्माण मे नही तो कम-से-कम 'बिहारी' हिन्दी के इतिहास-निर्माण में अवश्य सहायक होगी।

प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चैंसलर भारतप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा एम० ए०, डी० लिट०, एल-एल० डी० ने इस पुस्तक का समर्पण स्वीकार कर और ज्ञानवयोवृद्ध साहित्यमर्मज्ञ बाबू शिवनन्दन सहाय ने इसकी भूमिका लिखकर अपनी सहृदयता एवं सदयता का परिचय दिया है। इन दोनों महानुभावों के हम चिरऋणी हैं। हम उन महाशयों और मित्रवरों के भी आभारी हैं जिन्होने किसी-न-किसी रूप में हमारी उद्देश्य-पूर्ति में सहायता की है।

श्रीमंगलप्रसाद सिंह

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, रंगभरी एकादशी सं० १९८४ वि

भूमिका

साहित्य-वाटिका में काव्य को प्रधान स्थान प्राप्त है। यों तो इस अभिराम आराम के सभी पेड़-पौधे लता-बँवर अपने २ लालित्य-लावण्य, सुहावने रंग-रूप, तथा फल फूल के कारण इसके अनुरागियों को अनुदिन आनन्दप्रद हैं ही; पर इसके काव्यखंड की बात ही निराली है। यह कुसुमकुञ्ज अपूर्व छटा प्रदर्शित करता है। यहाँ सचमुच मकरन्द झरा करता है। इसकी सरस सुगंध दिल दिमाग़ दोनों को ही हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ बनाती है। इसमें भ्रमण से मन नहीं ऊबता।

किसी उपन्यास को एक बार पढ़ लेने पर उसे पुनः पढ़ने का जी नही चाहता। किस्सा-कहानी की भी यहीं दशा है। कोई परिहास भी सदा एक-सा हमे नही हँसा सकता। नाट्य-शाला भी नित्य-नवीन नाटक की लालसा रखता है। पुरातत्व-सम्बन्धी ग्रंथ तथा इतिहास विगत बातों का स्मरण दिलाकर निस्सन्देह हमे सदा कुछ न कुछ सदुपदेश दे सकते और सुख दुःख अनुभव करा सकते हैं; परन्तु काव्य के समान कोई भी प्रभावोत्पादक नही। दिल पर चोट करने की ऐसी शक्ति साहित्य के किसी अंग में देखने में नहीं आती।

काव्य बड़ा ही प्रभावशाली वस्तु है। इसमें सदैव नवीनता ही जगमगाया करता है। सैकड़ो वर्ष व्यतीत होने पर भी

इसमें मलीनता नही आती। एक ही काव्य को सहस्रों वार पढ़ने पर भी उससे उचाट नही होता। जिन नाटकों वा अन्य पुस्तकों में कवियों की कारीगरी ने काव्य-कौशल का सुरंग चढ़ा रखा है, वे भी उसके प्रभाव से सदा हमारे मन को मोहित किया करती हैं।

कवि अपने हृदय के सुन्दर भावों को, वाह्य और आभ्यंतरिक जगत के सौन्दर्य को, जनता के नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष खड़ा कर देता है। घृणित पदार्थों का भी सच्चा चित्र खींच कर वह हमारे मन में उसके प्रति यथार्थ घृणा उत्पन्न कर देता है।

वह स्वार्थ, परमार्थ, तथा जगहित-साधक सब बातों का ज्ञान हमें प्रदान करता है। स्वयम् उस पर उसकी रचना का प्रभाव पड़े या नही, परन्तु उसके एक एक शब्द एक एक वाक्य दूसरों के लिये जादू के काम करते हैं। उसका एक वाक्य हमारे हृदय में सच्चा ईश्वरानुराग जागृत कर हमें प्रभु के पाद-पद्मों तक पहुँचने को समर्थ कर सकता है।

कवि स्वयम् नही जानता कि वह अपने वाक्यों में क्या टोना भर रहा है। वह नही जानता कि उसके काव्य कितने भाव-भूषित हो रहे हैं। वह केवल अपने भाव में विभोर, आत्मविस्मृत हो रचना करता है। बस, और कुछ नही।

क्या सूरदास को स्वप्न में भी ऐसा ध्यान हुआ था कि किसी समय उनके पदांश "यसुदा बार बार अरु भाषत" के

"बार बार" की भिन्न २ व्याख्या करने को बीरबल, रहीम, तानसेन, और फ़ैजी के समान महान् विद्वान् उद्यत होंगे ! क्या गोस्वामी तुलसीदास, शेक्सपियर प्रभृति जानते थे कि उनके काव्यों के इतने भाष्य किये जायँगे और उनके प्रति पद और शब्द के इतने भाव निकाले जायँगे ?

हाँ ! ऐसा कवि होना सब के भाग में नही होता। किन्तु सभी उत्तम कवियो की उत्कृष्ट रचनाएँ न्यूनाधिक मन को प्रभावित कर सकती हैं। और जिस कवि की रचना जितनी ही प्रभावोत्पादिनी होगी एवम् उसमें जितनी ही काव्य-निपुणता पाई जायगी, उतना ही उसका दर्जा ऊँचा होता जायगा।

इस उद्यान में बहुत से कुश-कंटक भी उग आते हैं। वे तिरस्कार-तरणि के ताप से आप छार-खार हो जाते हैं।

आजकल यहा तो कवियों का "भेड़िया-धसान" हो रहा है। पाठशालाओं से निकलने पर नहीं; वरन् उसमें प्रवेश करते ही लोग कविता करने को लेखनी उठाते हैं और उतने ही पर सन्तोष न करके तुरत ही उसे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने को भी व्यस्त हो जाते है।

पहले काव्यशास्त्र के कुछ अध्ययन करने की बात तो दूर गई, उन्मादग्रस्त प्राणी के सदृश बकने लगते हैं कि वर्त्तमान पिंगल से बढ़ कर पिगल तो हम लोग सभी बना सकते हैं।

किन्तु रंग देखने में क्या आता है ? कही कोरी तुकबन्दी

है; कहीं रबरछंद है, तो कहीं "स्वांज" और कहीं बावन-लीला की बहार! अभी एक चरण बित्ते भर का है, तो पर क्षण ही दूसरा आकाश को जा ठेकता है। छप्पै छन्दों में (जिस का नूतन नामकरण षट-पद हुआ है) ५वां चरण २८ मात्राओं का है तो छठवां २६ का। और कहीं छठवां ३० का है तो पांचवां २५ ही का। किसी छन्द के मध्य ऐसे शब्द मिलते हैं जो मानों युद्धक्षेत्र के योधाओं की नाईं रसना की अग्रगति अवरुद्ध करने को आ डटे हों। क्या मजाल कि पाठक की जुबान बिना दो चार बार लड़खड़ाये, जंग किये और जोर लगाये आगे बढ़ सके। कहीं गद्य ही की दो-चार पंक्तियां रख कर उन्हें पद की पदवी दी जाती है।

हमारे जिन कामों मे अंग्रेजीपन का रंग न चढ़े, उन से बढ़ कर संसार मे निकम्मा क्या होगा, यह विचार हमारे आधुनिक काव्य-रचयिताओं का मस्तिष्क खराब कर उन्हें अपनी रचनाओ का पाश्चात्य ढांचे में ढालने के लिये मजबूर कर रहा है। किन्तु यह हमारी कविता की स्वाभाविकता पर कितना कुठाराघात कर रहा है इस पर बड़े छोटे, नये पुराने किसी का भी ध्यान नहीं जाता। जाय कैसे? नवीनता के उपासकवृन्द तो जगत को और निज कविता को भी नये रंग रूप में निरीक्षण करने को लालायित हो रहे है। भला वे कविता-बनिता को गौन पहनाये, उसको आंखें भूरी और केशदाम सोनहरा बनाये बिना कब दम ले सकते और चैन पा सकते हैं?

भाई ! बुरा न मानिये । यदि मन में सचमुच काव्यानुराग है, यदि वस्तुतः सत् और उत्तम कवि बनना अभिप्रेत है तो अच्छे काव्यज्ञाताओं के चरणों के निकट बैठ कुछ काल इस शास्त्र का अध्ययन कीजिये, उनसे अपनी रचनाओं का संशोधन कराइये। उसी से आप सत्कारपात्र बनेंगे और एक दिन अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर सुकवियो मे परिगणित होने के अधिकारी होंगे।

हम यहां काव्य के विविध रस, भाव, गुण-दोषादि के विषय में कुछ कहना नही चाहते। ये सब बातें संस्कृत तथा हिन्दी दोनों के ही काव्य-शास्त्रों में विशदरूप से विस्तारपूर्वक वर्णित हुई हैं। जिन्हें जानना हो, उन्ही ग्रन्थों को देख लें। किन्तु स्मरण रहे कि नायिकाभेद, अष्टयाम आदि भी उसी शास्त्र के अंग हैं। उन्हें जाने विना पूरा शास्त्रज्ञान नहीं हो सकता।। आप को जो भावे सो कीजिये। उनसे दूर भागिये या उनका आलिंगन कीजिये।

अब हमसे इस पुस्तक के सम्बन्ध में दो चार बातें सुनिये। इसका सम्पादन और प्रकाशन दो बिहारी नवयुवकों के काव्यानुराग, नवोत्साह और परिश्रम का फल है।

इसमें दो खंड हैं। एक में कवियों के जीवन-वृत्तान्त तथा उनको रचनाओं के कुछ नमूने समावेशित हैं एवम् दूसरे में २६ अभिनव काव्यप्रेमियों की केवल कुछ रचनाएँ हैं। ये सब ४० वर्ष के भीतर के समय के लोग हैं। कुछ स्वर्गगत हैं

और शेष संसार में विद्यमान हैं। सभी बिहार प्रान्त के रहने वाले हैं। इस कुसुम-समूह में कुछ पूर्णस्फुटित, कुछ अर्ध-स्फुटित और कुछ मुकुलित भी अवश्य हैं।

युगल उत्साही युवकों का यह अभिप्राय बोध होता है कि नीचे के सोपान से ही शनैः २ उठते बिहार की काव्य-अट्टालिका पर पहुँच कर देखें कि यहाँ के काव्य-भंडार में कैसे रत्न भरे हुए हैं।

यह प्रथम सोपान मिट्टी का ही क्यों न हो, इसमें सुन्दर गच बार्निश वा संगमरमर की ज्योति भले ही न छिटकती हो, पर अट्टालिकारोहण में तो यह अवश्य सहायक होगा।

इस पुस्तक में व्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों की ही कविताएँ संकलित हुई हैं। खड़ी बोली की रचनाओं का बाहुल्य है। क्योंकि आज कल के लोगों में इसी का चाव है और उसमें भी रहस्यवाद और छायावाद की ओर अधिक है।

व्रजभाषा बालकों की "बूई" के समान आज भय-उपजा-विनी हो रही है। कितने इसके नाम से काँप उठते हैं। कोई तो भय से इधर ताकने का भी साहस नहीं करते कि कहीं उनका हृदय कलुषित न हो जाय। कुछ लोग काव्यशास्त्र-कथित हाव-भाव, अलंकारादि की किञ्चिन्मात्र आवश्यकता नहीं समझते और जहाँ ये बातें हों कदाचित् उसी को व्रज-भाषा मानते हैं। उनका ऐसा भी विचार प्रतीत होता है कि

ब्रजभाषा में इन बातों के सिवाय और कुछ है ही नहीं और हो भी नहीं सकता। उन्हें सम्भवतः इसकी खबर नहीं कि सब भाषाओं की कविताओं में ये बातें न्यूनाधिक वर्त्तमान हैं एवम् रचयिता चाहे या नहीं ऐसी कोई न कोई विशेषता उसकी रचना में आप ही आप आ जाती है। यदि ब्रजभाषा वा उसकी रचनाएँ इन कारणों से घृणास्पद हैं, तो उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत सभी इसी सम्मान के योग्य हैं। उनमें भी आदिरस के वर्णनों की कमी नहीं।

लोगों की यह अनुचित धारणा हो गई है कि हिन्दी-साहित्य-वर्णित प्रेम का रूप पापमय विषय-वासना है। हम तो ऐसी धारणा को ही पापमयी धारणा मानेंगे और इसे ऐसी धारणा-धारियों के चित्त का प्रतिबिम्ब बतावेंगे।

वृजभाषा वा तद्वर्णित शृंगार-काव्य किसी की दृष्टि में दूषणीय दीख पड़े, किन्तु इसी ने कितने को भक्तिरस में ऐसा शराबोर कर दिया जिनकी समता करने वाला आज दृष्टिगोचर नहीं होता।

इसके सिवाय बिहारी कृत सतसई, विद्यापति की पदावली आदि जैसे ग्रन्थों को आज भी उच्च परीक्षाओं के पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित पाते हैं। उनका सटीक सम्पादन होते तथा पंडित-मंडली मे उनका आदर होते भी देख रहे हैं।

जो हो, हम ने प्रसंगवश ब्रजभाषा के विषय में यहाँ कुछ कह दिया है। हमें किसी भाषा वा बोली से घृणा नहीं।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि हमें इस पुस्तक की भूमिका लिखने में अणुमात्र भी संकोच नहीं हुआ है।

बोली या भाषा कोई हो, काव्य-रचना सुन्दर भावपूर्ण और नियमानुसार होनी चाहिये। ऐसी ही कविता सब के आदर का धन है और इसी से वास्तविक उद्देश्य-साधन की सम्भावना है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक और प्रकाशक प्रोत्साहन पाने से इसके आगे के सोपान निर्माण में अवश्य शीघ्र ही यत्नवान होंगे। इति शुभम्।

अख़तियारपुर
आरा

शिवनन्दनसहाय

बिहार के नवयुवक हृदय

श्रीयुत बाबू शिवनंदन सहाय

सूचीपत्र

नाम

१९—श्रीयुत महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'

२०—श्रीयुत धनराज पुरी 'विद्यार्थी'

२१—श्रीयुत रामेश्वर झा 'द्विजेंद्र'

२२—श्रीयुत जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

२३—श्रीयुत अनिरुद्धलाल 'कर्मशील'

२४—श्रीयुत रामजीवन शर्मा 'जीवन'

२५—श्रीयुत रामवचन द्विवेदी 'अरविंद'

२६—श्रीयुत जटाधरप्रसाद शर्मा 'विकल'

२७—श्रीयुत रामलोचन शर्मा 'कंटक'

२८—श्रीयुत भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

२९—श्रीयुत प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

हृदय-हार

नाम पृष्ठसंख्या

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री राघवप्रसाद सिंह 'महंथ'

बिहार के नवयुवक हृदय

राघवप्रसाद सिंह 'महंथ'

बाबू राघवप्रसाद सिंह का जन्म सं० १९४५ की अगहन शुक्ल तृतीया को हुआ था। आप दरभंगा जिलान्तर्गत वैनी ग्राम के निवासी हैं। आप द्रोणवार मूल के भूमिहार ब्राह्मण हैं। आपके पिता का नाम बाबू जगदेवनारायण सिंह था। वे हिन्दी, उर्दू और फारसी के एक अच्छे विद्वान थे। आप एक प्रतिष्ठित जमीन्दार हैं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में हुई। वहाँ से लोअर परीक्षा पास कर निकट के एक मिडिल स्कूल से आपने मिडिल की परीक्षा पास की। तीन चार वर्ष तक आप व्यर्थ ही घर बैठे रहे। इसके बाद १९०५ ई० में अपने बहनोई के साथ पटना पढ़ने चले गये। वहाँ संस्कृत एँग्लो स्कूल में आपकी शिक्षा हुई। १९०८ ई० में जब आप एन्ट्रेन्स क्लास में पहुँचे तब किसी कारणवश आपको पटना छोड़ देना पड़ा। १९०९ में आप मुजफ्फरपुर की मुकर्जी सेमीनरी से एन्ट्रेन्स की परीक्षा में सम्मिलित हुए, परन्तु अभाग्यवश फेल हो गये। १९१० से मैट्रिक परीक्षा प्रारम्भ हुई।

अब संस्कृत पढ़ना आवश्यक हो गया। पहले आप हिन्दी पढ़ते थे। इसलिये विवश हो आपको पढ़ना छोड़ देना पड़ा।

आपके पिताजी को कुश्ती का बड़ा शौक था। आपको बेकार बैठा देख कुश्ती खेलने तथा व्यायामादि करने के लिये वे आप को उत्साहित करने लगे। आपके लिये उन्होने एक पहलवान नियुक्त कर दिया। लगभग दो वर्ष आप इसी कार्य में लगे रहे। इसी बीच मे आपने अपने पिताजी से उर्दू लिखना पढ़ना सीख लिया।

१६१२ ई० मे पढ़ने की फिर चाह हुई। मुजफ्फरपुर जाकर आपने अपना नाम लिखवाया। इस बार आपने संस्कृत पर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया। १६१३ ई० की परीक्षा में आपने मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास कर लिया। तत्पश्चात आपने मुजफ्फरपुर कालेज में नाम लिखाया। द्वितीय वर्ष में पहुँचने पर एक कठिन व्याधि से ग्रसित होने के कारण डाक्टर की सलाह से आपने पढ़ना छोड दिया।

आरोग्य लाभ करने पर पिताजी की अनुमति से आपने मुख़्तारशिप परीक्षा के लिये कानून पढ़ना आरम्भ किया; पर इसमें आपका मन नही लगा। अतएव इसे पढ़ना छोड आप-ने टाइप-राइटिंग सीखना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय में इसकी परीक्षा पास करने पर आपकी नियुक्ति कमिश्नरी के वार्ड्स विभाग मे हो गई।

नौकरी करना आपको पसन्द न था। इसलिये नौकरी

छोड़कर मुजफ्फरपुर मे ही आपने एक स्टेशनरी और मनि-हारी की दूकान खोल दी। 'सिंह एण्ड कम्पनी' के नाम से वह दूकान बडी सफलता के साथ चलने लगी। आप स्थायी रूप से वही रहकर व्यापारकार्य करने लगे।

उसी समय १६१६ ई० में वहाँ कुछ नवयुवक साहित्यिकों के उद्योग से 'बिहार प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन' का जन्म हुआ। उसके जन्मदाताओं में आपका भी नाम लिया जा सकता है। पहले ही से आप इस सम्मेलन के स्थायी समिति के मन्त्रिमंडल में कार्य करते हैं। इस समय भी आप उसके संयुक्त मन्त्री हैं। कई वर्ष तक आप वहाँ के 'हिन्दी साहित्य परिषद्' के प्रधान मन्त्री भी रह चुके हैं।

१६२१ ई० मे जब असहयोग आन्दोलन खूब जोरों मे था, आप भी उसमे कूद पड़े और सभी विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार कर दिया। फलस्वरूप दूकान की बडी क्षति हुई। हजारों का घाटा सहना पड़ा। १६२५ ई० मे सम्मेलन के कार्य से आप बनैली जा रहे थे, मार्ग में भागलपुर में बीमार पड़ गये। इस बीमारी से आप सात मास तक पीड़ित रहे। डाक्टर और वैद्य सभी थक गये, परन्तु आप की बीमारी नही छूटी। अन्त में जल-चिकित्सा द्वारा आप ने स्वास्थ्य लाभ किया। इसी बीच में आपके भाई ने दूकान बेंच दी। अब आप स्वस्थ हैं और बराबर घर ही पर रहते हैं।

१६०८ ई० से आप कविता करने में लगे हैं। विशेषतः

आपके पद्य १९१५ और १९१८ के बीच लिखे गये हैं। उसके बाद दूकान के कार्य में फँस जाने से इस ओर से आपका ध्यान अलग रहा। अब फिर आपने लिखना प्रारम्भ कर दिया है। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'राष्ट्रीय संगीत' नाम से १९१८ ई० में छपा था। इस वर्ष आपने बालकों के लिये 'कथा मंजरी' नामक एक पुस्तक लिखी है, जो हिन्दी पुस्तक भण्डार लहेरियासराय से शीघ्र प्रकाशित होगी। अभी आप 'बालक-रामायण' सरल पद्य मे लिख रहे हैं। हिन्दी मे बाल-साहित्य का अभाव देखकर आप आजकल बाल-साहित्य की पूर्ति करने में लगे हैं। आपके पद्य इस समय हिन्दी के प्रायः सभी बालोपयोगी मासिक पत्रों में निकलते हैं। विशेषकर आपकी रचनाएँ 'बालक' में ही निकलती हैं। आशा है, आपसे हिन्दी की, विशेषकर बाल-साहित्य की विशेष श्रीवृद्धि होगी।

भारत-जननी-बंदना।

जननी तुअ पद कोटि प्रणाम ॥
चमकत सुभग मुकुट तव सिरपै शैलराज हिम-धाम।
सुर नर मुनि सबके मन मोहत सुखकर दृश्य ललाम ॥ १ ॥
विष्णुपदी रविजा युग सरिता मणि-माला सित श्याम।
विलसति कलुष-राशि-विनशावनि तव उर शोभा-धाम ॥ २ ॥
बसन धर्म शुभ-गात अनूपम पूरत सब मन काम।
अंग अग बहुमूल्य-अभूषण सुर-मन्दिर अभिराम ॥ ३ ॥

सजग भृत्य तव घहरत निसदिन हिन्द-महोदधि नाम।
चरण धोइ मृदु चरण-जलज-रज धरत शीश बसु-याम ॥ ४ ॥
सिल्प, ज्ञान, विज्ञान, गान अरु बल, विद्या-संग्राम।
सकल कला तेरो जग छायो देश देश सब ठाम ॥ ५ ॥
विश्वभरणि! त्रिभुवन-पति-प्यारी! धन भारत गुणधाम।
तव महिमा 'राघव' किमि बरणै निज मुख बरन्यो राम ॥ ६ ॥

कब होगा भारत-दुख दूर ?

जहाँ वेद-ध्वनि नित होती थी रहता था गूँजित वर-व्योम।
थे निष्काम-कर्म-रत सबही नित होते जप, तप, व्रत, होम ॥
वही पुण्य-महि लखो! आज है कैसी अधरम से भरपूर।
हे आरत-दुख-भंजन केशव! कब होगा भारत दुख दूर ॥ १ ॥
जहाँ सरस्वति-धाम बना था, विष्णु-प्रिया का था भण्डार।
वहीं अविद्या आज बसी है, हुआ दरिद्रादेव्यागार ॥
हाथ पसारत सबके आगे क्षुत्पीड़ित होकर मजबूर।
हे आरत-दुख-भंजन केशव! कब होगा भारत-दुख दूर ?॥ २ ॥
शिल्पकला विज्ञान सभ्यता में जो रहा जगत-सिरताज।
वहीं वस्तु दमड़ी की भी है आती अन्य देश से आज ॥
हाय! नवोन्नत-देश इसे अब करते सभ्य-राष्ट्र से दूर।
हे आरत-दुख-भंजन केशव! कब होगा भारत-दुख दूर ?॥ ३ ॥
कर्मविमुख सब हुए आलसी, रहा एकता का नहिं नाम।
फूट दुष्ट सबका घर घाला, फैला द्वेष डाह सब ठाम ॥

नहीं किसी का कोइ सहायक, सब है स्वार्थ-नसा में चूर ।
हे आरत-दुख-भंजन केशव ! कब होगा भारत-दुख दूर ॥ ४ ॥
शिवि, दधीचि, हरिचन्द, कर्ण, बलि, शुक, मिथिलेश, भर्तृहरिराय ।
बाल्मीकि, भवभूति रु काली, कृष्णचन्द्र, अर्जुन रघुराय ॥
इन समान फिर कब अवतरिहैं, दानी, ज्ञानी, कवि औ शूर ?
हे आरत-दुख-भंजन केशव ! कब होगा भारत-दुख दूर ? ॥ ५ ॥
कब साहस, उद्योग, परिश्रम, फैलेगा घर घर यहि देश ?
धन-सम्पन्न सुखी नर होगे कृषिवाणिज्यनिरत सविशेष ॥
फिर प्राचीन छटा धारेगी कब भारत जगजीवन-मूर ?
हे आरत-दुख-भंजन केशव ! कब होगा भारत-दुख दूर ॥ ६ ॥
प्रभो ! कहो, क्या कारण है जो दिया नेम अपना अब छोड़ ?
इसकी दीन दशा कत दिन से लखते, पुनि लेते मुख मोड ॥
'राघव' क्या तेरी है इच्छा भारत-देश मिलाना धूर ?
हे आरत दुख-भंजन केशव ! कब होगा भारत-दुख दूर ? ॥ ७ ॥

देश मेरा वही है ।

जग बिच अति ऊँचा जो हिमालै गिरीश,
अरिगण-मग छेके एक द्वारे खड़ा है ।
लह-लह लहराता सिंधु है तीन ओर,
अतिशय सुखदाई देश मेरा वही है ॥ १ ॥
अघहर-जल जाके सोइ देवापगा है,
दिनकर-तनया के संग शोभा दिखाती ।

विमल बह रही है दोउ धारा जहाँ पै,
सुर-नर-मुनि-प्यारा देश मेरा वही है ॥ २ ॥
षट-ऋतु क्रम से हैं बास लेते जहाँ पै,
निज निज समयों में होय शोभायमान ।
प्रकृति जँह दिखाती पूर्ण कारीगरी यों,
सब विधि सुखमूला देश मेरा वही है ॥ ३ ॥
रटत 'पिउ' पपीहा प्रेम में मग्न होके,
बन महँ जहँ तोता बैन मीठा सुनाता ।
मन बश कर लेता कोकिला का सु-गान,
बिहँगन जहँ ऐसे, देश मेरा वही है ॥ ४ ॥
जहँ तहँ हरियाली भूमि आनन्ददा है,
हरित-बसन से ही भूमि मानो ढकी है ।
चहुँ दिशि जित देखो क्षेत्र हैं शश्ययुक्त,
जगहित अनदाता, देश मेरा वही है ॥ ५ ॥
पथिकन-श्रम-हर्ता पीपलों का सु-वृक्ष,
विचरत खग जापै मोद से हो स्वतंत्र ।
सुभग वट, रसाला, निम्ब, केला, तमाला,
तरु सुखद जहाँ है, देश मेरा वही है ॥ ६ ॥
जब जब हरि आते धर्म रक्षार्थ भू में,
अवतरि जहँ लेते रूप नाना प्रकार ।
जहँ पर विधि ने भी सृष्टि को था पसारा,
विधि-हरि-अनुकूला देश मेरा वही है ॥ ७ ॥

गिरिवर नभचुम्बी जाहि देशस्थली पै,
अवढर शिव का है बास कैलाश-धाम।
चहुँदिशि सुर-धामो से घिरी भूमि जो है,
मुनिगण-हितकारी देश मेरा वही है॥ ८॥
शिवि,दधिचि,हरिश्चन्द्रादिकों-सा सुदानी,
धनुधर रणबाँके राम, पार्थादिकों-से।
कविवर जहँ काली, भूप दीलीप-से थे,
धन-बल-गुण-शाली देश मेरा वही है॥ ६॥
प्रभु कर शुभ बाणी वेद ही है जहाँ पै,
निशिदिन जहँ चर्चा ज्ञान की हो रही है।
जप, तप, व्रत, पूजा जाहि देशस्थ धर्म,
सुरपुर-छवि धारे देश मेरा वही है॥ १०॥
प्रभुवर! समझो तो, मै कहूँगा यही तो,
जहँ तुम रहि आये देश मेरा वही है।
अब यदि बिसराओ सो तुम्हारी खुशी है,
पर धनजन 'राघो' देश मेरा वही है॥ ११॥

विषाद।

बबुआ बनि बहु बरस बितायो बालकपन मे।
बहुरि बड़ो ह्वै व्यस्त विविध वर वेश वसन में॥
बूझि बड़ाई बझ्यो बहुत विधि बुरो व्यसन में।
विधुवदनीवश बंधु-बैर को बीज वपन में॥

विषय वासना मे बुरकि बिसरयो विभु विश्वेश ही।
वर विषाद बहुमूल्य वय बीत्यो बिल्कुल व्यर्थ ही॥

हे हरि !

हे हरि ! हेरत ही हँसिकै हमरो हियको हरषावत हौ।
बेनु विचित्र बजाइ विमोहक बान विभो ! बरसावत हौ॥
साँझ सबेर सु-संग सखा सुठि सब्द सुना सरसावत हौ।
तांत्रिक हौ तुम तो, तब तो तरुनी तिय को तरसावत हौ॥

केशव !

कभी तो कलाधर की कन्या के किनारे कृष्ण !
कानन मे कौतुक से कंदुक कुदाते हो।
कभी तो कटाक्ष कर कन्हैया ! कुल-नारी से
कुल-प्रतिकूल कुल काम करवाते हो॥
कभी तो कपिध्वज को कर्मयोग कहते हो,
कभी क्रूर कंस का कलेजा कड़काते हो॥
क्या क्या करते हो, करो किंकर पर भी कृपा,
काहे को केशव ! करुणेश कहलाते हो॥

करो।

जगदीश्वर का भजन नित्य ही सुबह और फिर शाम करो।
प्रातकाल उठ सभी बड़ों को श्रद्धा सहित प्रणाम करो॥ १॥

ठीक समय पर नित्य नियम से तुम शौचादिक काम करो।
अच्छे चाल चलन से प्यारे! बालकगण में नाम करो ॥ २ ॥
तुमसे कोई भूल अगर हो तुरत उसे स्वीकार करो।
कोई साथी बुरे काम को बहकावे, इन्कार करो ॥ ३ ॥
राह बताकर भूले-भटके अंधे का उपकार करो।
श्रेष्ठ पुरुष जो मिलें कहीं तो तुम आदर सत्कार करो ॥ ४ ॥
सबसे मीठी बोली में तुम सदा सत्य व्यवहार करो।
उचित समय पर जो बन आवे, हो प्रसन्न आहार करो ॥ ५ ॥
शिक्षक जो जैसे बतलावें उसको उसी प्रकार करो।
नया काम जब करना चाहो पहले जरा विचार करो ॥ ६ ॥
सूर्य्योदय से पहले सब दिन जागो, शय्या त्याग करो।
माता, पिता और गुरुओं की सेवा में अनुराग करो ॥ ७ ॥
पहले अपने पाठ नित्य तुम पूर्ण रीति से याद करो।
खेल-कूद या गप-शप करना सब कुछ उसके बाद करो ॥ ८ ॥
मिहनत करके खूब पढ़ो तुम, सभी परीक्षा पास करो।
'राघव' शुद्ध बोलने-लिखने का प्यारे! अभ्यास करो ॥ ९ ॥

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री जगदीश झा 'विमल'

जगदीश झा 'विमल'

बिहार प्रान्त के वर्त्तमान नवयुवकों में पं० जगदीश झा 'विमल' का स्थान बहुत ऊँचा है। आपके विमल हृदय की निःस्वार्थ साहित्य-सेवा अन्य नवयुवकों के लिये अनुकरणीय है।

आपका जन्म भाद्रपद कृष्णजन्माष्टमी संवत् १९४८ वि० को कुलीन मैथिल ब्राह्मण-वंश में हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० कुलानन्द झा है। आप भागलपुर जिले के कुमैढा नामक ग्राम के निवासी हैं। आपके पिता जी की अवस्था लगभग ६१ वर्ष की है। वे बड़े उदार और मिलनसार हैं। अपनी विद्या और बुद्धि से इन्होंने अपने जिले में बड़ा नाम पाया है। आपकी आर्थिक अवस्था भी साधारणतः अच्छी है।

यथासमय आप अपने ग्राम के पाठशाला में बैठाये गये। वहाँ से प्राइमरी शिक्षा समाप्त कर आप जलालाबाद सेकण्डरी स्कूल में प्रवृष्ट हुए। वहाँ की अन्तिम परीक्षा में विशेष योग्यतापूर्वक सफलता प्राप्त करने के बाद आप पटना नार्मल स्कूल में पढ़ने गये। सन् १९१० ई० में आपकी यहाँ की शिक्षा भी समाप्त हो गई। इस परीक्षा में सम्पूर्ण प्रान्त के उत्तीर्ण छात्रों में आपका स्थान प्रथम रहा।

सन् १९११ ई० से आप भागलपुर (क्रिश्चियन मिशन)

स्कूल में अध्यापक का कार्य करने लगे और तब से आज तक आप शिक्षाविभाग में ही काम कर रहे हैं। आजकल आप जमालपुर रेलवे स्कूल में अध्यापक हैं। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू और मराठी भाषा के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं।

आपके एक भाई और हैं। आपके छोटे भाई पं० मेवालाल झा असहयोगी हैं। सार्वजनिक कार्यों में इनका अधिक हाथ रहता है। इस समय वे स्थानीय जिला बोर्ड के सदस्य तथा युनियन बोर्ड के सभापति हैं।

सन् १९१४ ई० से साहित्य-सेवा की ओर आपका विशेष रूप से ध्यान गया। उसी समय से आपने भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे उपयोगी विषयों पर लेख, कविताएँ और गल्प लिखना आरम्भ किया। आपकी रचनाएँ पाटलिपुत्र, अभ्युदय, प्रताप, भारतमित्र, स्वतन्त्र, मतवाला, हिन्दूपञ्च, मर्यादा, सरस्वती, माधुरी, मनोरमा, आर्यमहिला, हिन्दी चित्रमय जगत, हितकारिणी, श्रीकमला, प्रभा, शारदा, चाँद आदि हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में निकलती रही हैं। इसके अतिरिक्त आपने कई पुस्तकों की रचना भी की है। आपकी लिखी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या पचास से भी अधिक है। वे सब भिन्न भिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हुई हैं। आपके प्रकाशित पुस्तकों में कुछ के नाम ये हैंः—वीणा-झंकार, पद्यप्रसून, पद्यसंग्रह, खरा सोना, जीवनज्योति, लीला,

आशा पर पानी, दुरंगी दुनियाँ, रमणी, सावित्री, महावीर, सती पंचरत्न, आदर्श सम्राट् आदि। आपने औपन्यासिक, पौराणिक, गल्प तथा कविता की पुस्तकों के अलावे कई स्कूली पुस्तकें लिखी है। आपने कई और पुस्तकें भी लिखी हैं जो अभी प्रकाशित हैं।

आप चुपचाप एकान्त में रहकर साहित्य-सेवा करना पसन्द करते है। इसी लिए आप इधर उधर की दौड़ धूप न कर शान्त भाव से अपने साहित्य-सदन मे बैठ साहित्य-सेवा किया करते हैं। नाम के लिये इधर उधर जाना आना आपको तनिक भी पसन्द नही।

इस समय आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखकों और कवियों में गिने जा सकते हैं। पर आपका ध्येय कार्य करना है, नाम करना नहीं। आपकी साहित्य-सेवा का प्रधान उद्देश्य समाज-सेवा तथा देव-सेवा ही है।

एकान्त

विश्व-तपस्वी के फलदायक हे शुचि स्वर्ग-द्वार-सोपान।
मोक्ष-प्रदायक हे गुरु-ज्ञानी अर्थ धर्म हे काम ललाम॥
हे कवियों के मार्ग प्रदर्शक काव्य-कला के दिव्य-प्रकाश।
भावमयी रोचक रचना के अलङ्कार गुण ओज विकास॥
हे विद्वान-हृदय-तन्त्री के नीतिपूर्ण न्यारा झङ्कार।
हे आचार्य ज्ञान-गरिमा के योगी-हिय के योग-विचार॥

हे दुखियों के दया-निकेतन भाग्यहीन के भाग्य-विधान ।
हे अनाथ के आश्रयदाता अन्न-हीन के जीवन प्राण ॥
अतल-सिन्धु के अगम-उदर-सा हे गम्भीर अनन्त प्रशान्त।
रम्य-गगन-सा निर्मल न्यारा हे जगविस्तृत अञ्चल-प्रान्त॥
दग्ध-हृदय की मूक वेदना हरनेवाले हे एकान्त ।
जीवन-ज्योति जगानेवाले कर अशान्त प्राणी को शान्त ॥
अश्रु-विमोचन-पर्व-पूर्णकर करनेवाले धैर्य प्रदान ।
घाव फबीले भरनेवाले जीवित कर जीवन-म्रियमान ॥
शीतल मन्द सुगन्ध हवाएँ होती भग्न उसास अथोर ।
विपदाएँ व्याकुल हो जाती आश्रित होते प्रेम-विभोर ॥

अर्चना

मुझे पाँव से ठुकराते क्यों प्रियतम प्राणाधार ।
तुझे छोड़कर कौन करेगा अब मेरा उद्धार ॥
पकड़कर क्यों अपनाया था ?
हृदय पर दखल जमाया था ॥

मान लिया तेरी सेवा को मुझ-सी खड़ी अनेक ।
पर मै किसको देख बचूँगी करते नही विवेक ॥
तुम्हारा एक सहारा है ।
जगत में कौन हमारा है ॥

तेरे पीछे पिता सहोदर माता पुत्र प्रधान।
पद पद पर वे नाथ करेंगे जग मेरा अपमान॥
कहाँ कैसे रह पाऊँगी।
साथ ही तेरे जाऊँगी॥

झटका देकर छुड़ा रहे हो मुझसे अपना हाथ।
हृदय न मेरा त्याग सकोगे स्वामी सुखमय साथ॥
नीति यह सुखमयकारी है।
धर्म का बन्धन भारी है॥

अन्तिम भेंट चढ़ाकर तुझको निकल रहे हैं प्राण।
साथ सदा ही रखना होगा हे मेरे भगवान॥
चरण पर जीवन धरती हूँ।
तुम्हारा पीछा करती हूँ॥

धारा से

निसर शृंग से अगम सिन्धु-पथ प्रखर वेग से बहती जा।
मूक हृदय की विषम वेदना अन्तस्तल में रहती जा॥
अपनी बीती और किसी से नही भूलकर कहती जा।
भग्न-भवन के नग्न दृश्य को अतल-उदधि-तल गहती जा॥
तप-तल्लीन तीर तपसी के पावन पद-रज लहती जा।
विप्लव बाढ़ विश्व में भरने रुकरुककर मत रहती जा॥

कठिन करारा काट काट मत टील्हा टापू भरती जा।
पर-हित-निरत विश्व-सेवा में नीति-प्रीति से सरती जा॥

निर्वासिता

प्राणनाथ प्रियतम जीवनधन मैं न यहाँ रह पाऊँगी।
तथ्यहीन सूने गृह में क्यों व्यर्थ बैठकर गाऊँगी॥
चरण-चिह्न पर चलकर स्वामी जीवन सफल बनाऊँगी।
किसको अपनी हृदय-वेदना कहकर यहाँ सुनाऊँगी॥
भव-नद अपनी तरी तेज कर शीघ्र तीर पर लाऊँगी।
या झंझा-झोके में बहकर धारा मे बह जाऊँगी॥
तेरी हूँ, इसलिये तुम्हारे पीछे दौड़ लगाऊँगी।
यहाँ नही तो वहाँ देव निश्चय दर्शन कर पाऊँगी॥

अवज्ञा

झोली ले वह द्वार तुम्हारे अलख जगाने आया है।
सुमन सौरभित भर अंजलि में हर्षित चरण चढ़ाया है॥
तार जोड़ टूटी तंत्री का गाना एक सुनाया है।
तो भी तुझको दया न आयी बार बार ठुकराया है॥
उलट गई आँखें तोते सी रूखा-रूप बनाया है।
हृत्कपाट को बन्द किया क्यों पीछे पाँव हटाया है॥
हँसा तुझे वह देख भटकता भ्रम में व्यर्थ भुलाया है।
माया की छाया यह समझो अपना और पराया है॥

तेरी कुटी

कर दी खाली कुटी तुम्हारी अलग किया अपना डेरा।
पुनः कभी देते पाओगे यहाँ खड़ा मुझ को फेरा॥
रवि-किरणों ने दूर हटाया कुहू-निशा का दृढ़ घेरा।
लगे पथिक पथ पाँव बढ़ाने भूले साथी ने टेरा॥
है सराय क्या खाली रहती फिर आवेगा बहुतेरा॥
घबराकर अधीर मत होना शीघ्र भरेगा गृह तेरा॥
भूल न जाना नीति प्रीति की स्वामी हो या हो चेरा।
रखना सच्चे स्नेह-भाव से कहना यह करना मेरा॥

जनार्दन मिश्र 'परमेश'

पं० जनार्दन मिश्र का जन्म ग्राम सनौर जिला संथाल परगना में सं० १६४८ में एक धनी ब्राह्मण (मैथिल) परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० मुरारी मिश्र तथा पितामह का नाम पं० हर्षदत्त मिश्र था। यह मिश्र परिवार अपने प्रान्त में प्रतिष्ठा और बड़प्पन के लिये एक ही है।

सुखी परिवार में जन्म लेकर आरम्भिक जीवन आपने बड़े आनन्द से बिताया। पाँच वर्ष की अवस्था में आपकी शिक्षा गाँव की पाठशाला में जारी हुई। काल पाकर गाँव की पाठ-शाला से आपने अपर प्राइमरी परीक्षा पास की। सन १६०६ ईस्वी में आप आगे पढ़ने के लिये खड़हरा मिड्ल इंग्लिश स्कूल में गये। वहाँ इनका अधिक काल कविता बनाने और काव्य-ग्रन्थों के अध्ययन में ही बीतता था। स्कूल के अध्यापक इसके लिये आपपर प्रायः बिगड़ते रहते थे कि आप कोर्स की पुस्तकें अच्छी तरह नही पढ़ते थे। एक बार तो यहाँ तक हुआ कि शिक्षक ने आपके सभी काव्य-ग्रन्थों को छीन लिया और तब तक नही लौटाया जब तक मिड्ल पास नही हुए। मिड्ल पास करने के पश्चात् पटना नार्मल ट्रेनिङ्ग स्कूल में भरती हुए। जिस समय आप वहाँ पढ़ते थे उसी समय सन् १६११ में राजराजेश्वर श्रीमान् पञ्चमजार्ज महोदय

बिहार के नवयुवक हृदय

श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश'

का भारतवर्ष में शुभागमन हुआ था। उस अवसर पर आपने 'जौर्ज किरणोदय' नाम का ग्रन्थ रचा था। कई संस्थाओं की ओर से इस उपलक्ष्य में आपको पुरस्कार और पदक मिले थे।

आपका विद्यार्थी-जीवन वही समाप्त हुआ और फाइनल पास करने के बाद खड्गविलास प्रेस में सहायक मैनेजर होकर काम करने लगे। आपकी प्रवृत्ति सदा से ही स्वतन्त्र रही है। वहाँ एक निम्न कर्मचारी रहकर काम करने में स्वाभाविक कविता-कार्य-धारा में अड़चन आते देख काम से इस्तीफा दे दिया और मुँगेर जिले में खड्गपुर तथा छितरौल मिडिल इंग्लिश स्कूलों में सहायक शिक्षक होकर काम करने लगे। अध्यापकी में भी आपका जी नही लगा, अध्यापकी छोड़कर भागलपुर में कौरोनेशन आर्ट्स प्रिन्टिग वर्क्स में काम करने लगे। वहाँ से 'साहित्य कल्पलता' नाम की एक ग्रन्थमाला निकाली। वही से 'सुप्रभात' नामक मासिक पत्र भी अपने सम्पादकत्व में निकाला, धन और साधन के अभाव से दो ही तीन अङ्क निकलकर पत्र बन्द हो गया। उक्त प्रेस के संचालक से कुछ अनबन हो जाने के कारण वही ब्राह्मण-प्रेस में बहुत दिनों तक मैनेजर होकर रहे। इस प्रेस से भी 'सुप्रभात' को निकालने का आपने प्रयत्न किया, किन्तु फिर दो अंक निकलकर पत्र आगे नहीं चल सका। कोर्स की पुस्तकें निकालनेवाले प्रकाशकों ने बहुत चाहा कि यह उनके

निश्चित रूप से पुस्तक लिखने का काम करते रहें; किन्तु आप इतने मनमौजी और स्वातन्त्र्यप्रिय हैं कि कही स्थायी रूप से नही रह सके है। भागलपुर में मिश्र एण्ड कम्पनी के यहाँ बहुत दिनों तक रहे सही, किन्तु वहाँ रहकर निज का कोई काम नही करके अन्य के नाम से पुस्तकें लिखते रहे। इस तरह यदि आपकी लिखी प्राइमरी और मिडिल स्कूलों की कोर्स की पुस्तकों की गिनती हो तो कोरियों हो जा सकती है। अब तक अपने नाम से जो ग्रन्थ आपने निकाले हैं वे ये हैं—जौर्जकिरणोदय, हमारा सर्वस्व, रसबिन्दु, पद्य-पुष्प, सती, जीवनप्रभा आदि। आप गद्य और पद्य दोनों लिखते है। अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, बंगला आदि कई भाषा जानते हैं। सती कृष्णा और वीर वृत्तान्त नामक ग्रन्थ प्रकाशित होनेवाले हैं। आपकी कविताएँ अधिकांश ब्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली में भी रचना करते हैं, किन्तु आप उस पक्ष के व्यक्ति हैं जिनका विचार है कि कविता यथार्थ मे ब्रजभाषा में ही हो सकती है। स्वभाव के बड़े ही उदार और प्रमोदप्रिय है। अब आप घर पर ही रहकर साहित्य-सेवा में संलग्न हैं।

महाराणा प्रताप

विद्यावल्ली सुम दल गुणालकृता श्रीविशिष्टा।
आर्यक्षौणी अवनितल पै वाटिका थी गरिष्ठा॥

केकी कोकी अलिकुल प्रजा कूजती गूँजती थी।
मानो स्नाता प्रकृति पति को प्रेम से पूजती थी ॥ १ ॥
झंझा झोंका यवनदल का काल के कोप से ही।
आया एवं विरहित किया कुंज को ओप से ही ॥
सन्ध्या से हो निशि निशि परे व्योम में सूर आता।
धीरे धीरे पुनि दिन गये नित्य उत्सूर आता ॥ २ ॥
स्वाधीना जो सब विधि सदा थी रही विश्वमध्य।
अन्यद्वारा विदलित हुई मेदिनी हाय अद्य ॥
जो लोकाधीश भुवनजयी आक्रमी शक्र-से थे।
दास्यालम्बी परवश हुए भाग्य के चक्र से वे ॥ ३ ॥
स्वेच्छाचारी यवनमहिपों के दुराचारपूर्ण।
कार्यों से हो जब हिय गया हिन्दुओं का विचूर्ण ॥
कर्त्तव्यों का तब कुछ उन्होंने न रक्खा विवेक।
प्रत्यर्थी से कतिपय मिले धर्म की छोड़ टेक ॥ ४ ॥
एकाएकी विचलित हुई राजपूती गलों से।
राज्यश्री श्रीभरतभुवि की जी मिली मोगलों से ॥
राजा थे जो बनकर प्रजा शाह का वे गुलाम।
आगे आके अति विनय से नित्य देते सलाम ॥ ५ ॥
दिल्ली का त्यों दिन फिर गया हो गयी ऋद्धिशाली।
प्रासादों पै विलसित हुई ज्यों ध्वजा चाँदवाली ॥
दिल्ली को यों विजयगरिमा नित्य आती तृषा से।
आती है ज्यों सरि जलधि में आप सारी दिशा से ॥ ६ ॥

मोगलों का विभव उन्मुख उत्तरोत्तर हो चला।
बर्द्धमाना दीखती है ज्यों कलाधर की कला॥
एक के उत्थान से होता अपर का ह्रास था।
राहु था जो एक तो फिर अन्य उसका ग्रास था॥ ७॥

इस तरह प्राय. उदिची भाग भारत का सभी।
मिल गया साम्राज्य में पर छोड़कर कुछ को अभी॥
इस वृहत भूखण्ड का अकबर जभी स्वामी हुआ।
बल, विजय, ऐश्वर्य उसका पूर्ण अनुगामी हुआ॥ ८॥

विद्वान था अकबर स्वयं करता विवुध का मान था।
नय-निपुण धीमान था गुणवान था बलवान था॥
'नवरत्न' के नररत्न उसके सभ्य सचिव प्रधान थे।
जो नित सदर दरबार में पाते उचित सन्मान थे॥ ९॥

हिन्दुओं को भी समादृत उच्च पद दे दे किया।
सत्कार्य से उसने परम औदार्य का परिचय दिया॥
शिष्ट आशामय हृदय वह था कलेजे का बड़ा।
नाम सुन रिपु का हृदय उठता सदा था कड़कडा॥१०॥

विक्रमी विजयी-समर सत्साहसी गम्भीर था।
धीर विजयी था तथा निर्भीक गर्वित वीर था॥
इस तरह वह था मुगल कुलदीप अकबर वरमना।
सब ओर जिसका बढ़ रहा था वैरियों में तनतना॥११॥

किन्तु उसपर भी उसे सुखनींद कुछ आती न थी।
वासना बस एक ही मन से कभी जाती न थी॥

"राजपूती राज्य प्रायः आ गये आधीन थे।
रह रहे 'राणा' अभी पर सर्वथा स्वाधीन थे ॥१२॥
बस, यही चिन्ता-शलाका शाह-दिल में थी गड़ी।
मच गयी जिस हेतु सारी सल्तनत में गड़बड़ी ॥
स्वाधीनता के अन्त को संग्राम अन्तक छिड़ गया।
एक छोटा राज्य झट साम्राज्य से ही भिड़ गया ॥१३॥

(अप्रकाशित महाकाव्य से)

* * * *

शक्तिसत्ता

संसार की सत्ता तनिक तेरे बिना रहती नहीं।
आग जलती क्यों भला तब वायु भी बहती नहीं ॥
चाँद सूरज से गगन यह जगमगाता क्यों कभी।
तू न होती तो यहाँ की यह दशा रहती नहीं ॥ १ ॥
विश्व-जननी शक्ति ! तेरी है प्रकट सबपर कृपा।
नित्य सबमें है छिपी, पर है न कुछ तुझसे छिपा ॥
है धराधर में लटकती क्या अजब जादूगरी।
चाहती जो तू न जाता खेल पल में यह लिपा ॥ २ ॥
ये निशा दिन औ दिशाएँ आप ही होती नहीं।
सिन्धु की सीपी बनाती आप ही मोती नहीं ॥
कह रहा मुखड़ा मृतक का तत्व यह हमको बुझा।
देखती हँसती न आँखें आप ही रोती नहीं ॥ ३ ॥

जंगलों में वृक्ष कोई यत्न से बोता नही।
बीज बोया जो अकारण अंकुरित होता नहीं॥
हेतुभूता भगवती से भिन्न है क्या लोक में।
जड़ नही, चेतन नही, जाग्रत नही, सोता नही॥ ४॥
तू नहीं तो दिव्यता भी देवताओं की नही।
विष्णु हर कर्त्तार की करतूत दामों की नहीं॥
है सहारा सब कही तेरा अखिल ब्रह्माण्ड में।
कर सके कोई अवज्ञा भावनाओं की नहीं॥ ५॥
है रमा वाणी क्षमा तू ही उमा देवी दया।
ईश्वरी तू सत्यरूपा शान्ति माया तू जया॥
व्यक्त है अव्यक्त तू ही तू सनातन तू नयी।
आदि है तू अन्त तू ही मोहनी शोभालया॥ ६॥
अस्तु तेरा हूँ इसीसे माँगता माँ! भक्ति दे।
और अपने पदकमल में अम्बिके! अनुरक्ति दे॥
हूँ निबल सब भाँति तेरी शक्ति-आशा पर जिया।
शक्तिरूपे! कष्ट सहने की हमें अब शक्ति दे॥ ७॥

सौन्दर्यमय जीवन

रक्तिमारञ्जित गगनपटयुक्त ऊषा थी खड़ी।
कंज-कलियाँ भी इधर बस खिलखिला कर हँस पड़ी॥
सर-सलिल सुरभित समीरण भर उदर दिनभर अली।
मुस्कुराती शेष तक बस, मंजुता मुरझा चली॥

दीर्घ जीवन का कभी क्या हो सका कुछ मूल्य है।
बढ़ जाय ऊँचे ताड़-से क्या कंज के वह तुल्य है॥
देख लो सौन्दर्य जीवन का यही जाता कहा।
आयु भर अल्पायु हो संसार को भाता रहा॥

विभूति नामक अप्रकाशित ग्रन्थ से—

वेदना न आवै ढिग वेदनाम आवै कहूँ,
वेद ना बतावै भेद नेति नेति गाये हैं।
मंगलभवन भक्तभवभयहारी सदा,
शिव शवभूमि को निकेतन बनाये हैं॥
नंगी नाग अंगी अपरूप अरु भंगी भाल,
गंगी बहुरंगी परमेस भेष भाये है।
तकि तकि तीनो लोक हारि मरि आजु हम,
आस करि ऐसे महादेव पास आये हैं॥ १॥

स्वारथ के नाते जगजाल है सनेही सबै,
तत्व नहि यामें कछू मोह को है फाँसरो।
तजिके कलपवृक्ष कीकरनि सेइ मरो,
जीवन अनमोल परमेस यों मुधा करो॥
कलि मरु कीट जानि दैव हूँ दुराये रहै,
सोच करि काटत कलेस निसबासरो।
राखो या न राखो शिव! रावरी दुहाई कहौं,
हम से गरीब को है तू ही एक आसरो॥

कामना कंचन ही की रहै पर कर्म कमाई सों कॉच न पावौं।
त्यों परलोक की याद गई जग वादिहि में श्रुति बॉच न पावौं॥
तीनहुँ लोक में तोहि विहाय कहूँ अपनी गति साँच न पावौं।
दानी बडो तुहिं जानि के जाँचत जाते बहोरि न जाँचन पावौं॥
वे तो दिगन्त सरीश कहावत सर्व सुरेश अनन्त तुह्व है।
दान को सागर है वह तो परमेश जु दान को सागर तू है॥
आप दयालु सदा शिव हौ पर वामे दयालुता की नहिं बू है।
पानी अपेय नदीपति को पर दानी तुम्हें न अदेय कछु है॥४॥
कुण्ठित तौ तिरसूल भये लखिके मम सूलकलाप को दापहिं।
गंग सुधारु सुधाकर में न रही छमता जु हरै मम तापहिं॥
है न कछू जिय सोच हमे परमेस समारहू आपनो आपहिं।
देखिये कौन बली निकरै प्रभु को परताप किधौं मम पापहिं॥
करपूर सों गात विभात विभूति भुजंगनि भीषम है लपटी।
विधु भाल विसाल कपाल लसैं अरु सीस जटा पर गंग तटी॥
नरमुण्ड की माल गले में लिये मृगराज को चर्म विराज कटी।
परमेस धरे यहि भेष को ध्यान हरै हर क्लेस न लेस घटी॥६॥

त्रिगुनसमूह को न होय क्रमह्रास यातें,
करसों जकरि धस्यो वाको गहि मूल है।
तीन लोक सासन की त्रिविध प्रणाली किधौं,
राजत त्रिदेव ही को बास अनुकूल है॥
किधौं या त्रिकाल मध्य एक रस विद्यमान,
भन परमेस चिन्ह सोई समतूल है।

भक्त भ्रम भूल भव जनित त्रिसूल को ये,
हरन समूल किधौं हर को त्रिसूल है ॥७॥

स्फुट रचनाएँ

चलत समीर धीर सौरभ सनी रहै जु,
नीर मद दान च्वै मतंग मतवारो सो।
कोकिलाकलापी पापी पपिहा पुकार करै,
बार बार झिंगुर झिगारै बजमारो सो॥
पथिक न आत जात कोऊ कहीं बाट आली,
बालम विदेश परमेस न पधारो सो।
चित घबरात रात दिन ना सोहात जब,
आवत घुमड़ि घेरि घोर घन कारो सो ॥ १ ॥

जल न बरसत जलन बरसत जलै,
अंग अंग तोयद को बुन्द विष धार भौ।
सिगरो जहान बीच मेरो दुख साथिनी वै,
आक औ जवास जौन जरि जरि छार भौ॥
भूषन बसन भावै एक न हमें री आज,
भन परमेस भौन जीवन को भार भौ।
चाहत चलन अब प्रान मेरे आसु वीर,
फटि फटि छाती मनो अंत लौं अनार भौ ॥ २ ॥

बादर समूह को तो चादर सों रोकि राखै,
दादुर अही सर को सौंपि दै बधिक कीर।

कोकिला कसायिनी को काग करि डारै और,
सारिका सरापि सिरहीन करि दै सरीर॥
कवि परमेस अम्ब केवरा कदम्बन को,
खोजि खोजि चम्पक के तरु को करै करीर॥
एतो उपचार कै जो हरै हिय पीर आज,
तेई है जगत बीच साँचो मत हितू वीर॥ ३॥

सीतल मन्द सुगंध समीर बहै बिरही के हिये कसती है।
तापर बारहि बार अली पिक चातक मोर भनै त्रसती है॥
पीतम जानि विदेश अहो परमेश सबै रँग मैं रसती है।
स्याम घटा मे छटा करिके यह दामिनि देखि हमै हँसती है॥४॥

उनयी उनयी घन घोर घटा चहुँ ओरन लौं घहरान लगी।
छिति ऊपर नीर के बूँद छने छन छरैं मनो छहरान लगी॥
परमेस पपीहनि को हनि कै यह मोर हिये हहरान लगी।
सजनी हमैं नाहक गंजन को अब खंजन को बहरान लगी॥५॥

देखि न परत एको चौदहो भुवन बीच,
मोंसो अधमाई लहि जौन पाप कामा सों।
तिन्हें परमेश वेगि तारे नहिं ल्याये बेर,
याही है भरोस जिय जानि कृपाधामा सों॥
एहो ब्रजराज तुम एक ही सुधारक हो,
लाखन सों मेरी गिनौ नीचता कुनामा सों॥
पतित प्रधान व्याध नीच हौं अजामिल लौं,
द्रुपद सुतासों खीन दीन हौं सुदामा सों॥ ६॥

देवकिनन्दन होय अहो भये नंद के नंदन फेर गुजेरो।
रास विलास को आनँद लै वर ज्ञानी भये परमेस जु हेरो॥
जानि परै न कछू महिमा गति की मति की मनमोहन केरो।
खीझत कंस को काल भये सोइ रीझत भे तेहि चेरी को चेरो॥७॥

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा की मृत्यु से हिन्दी संसार की विशेषतः बिहार की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति भविष्य में शीघ्र नहीं हो सकती। आप हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध लेखक और कवि थे। हास्य रस के तो आप अवतार ही थे। आपके ऐसे सहृदय व्यक्ति विरले ही होते हैं।

आपका जन्म सन् १८६४ ई० में आरा नगर में हुआ था। आप शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पं० शार्ङ्ग-धर मिश्र था। वे बड़े धार्मिक और प्रतिष्ठित पुरुष थे। जब आपकी अवस्था ७ वर्ष की थी तो आपके पूज्य पिताजी की मृत्यु हो गई। आपके चाचा पं० श्रीधर मिश्र जी ने आपकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया। आपकी माताजी का स्वर्ग-वास १६०६ ई० में हुआ था।

आपके चाचा और चाची आपको अपने पुत्रों से भी बढ़-कर प्यार करते थे। आपके दो चचेरे भाई हैं। वे लोग इस समय अच्छे अच्छे पदों पर कार्य करते हैं। वर्तमान हिन्दी गद्य के प्रवर्त्तक पं० सदल मिश्र आपही के पूर्वज थे। पण्डित जी का विवाह १६११ ई० में हुआ था। आपकी पत्नी अभी जीवित हैं। आपके चार कन्याएँ हैं जिनमें दो के विवाह हो चुके हैं। आप अपनी कन्याओं को बहुत मानते थे।

बिहार के नवयुवक हृदय

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

लड़कपन से ही आपकी शिक्षा आपके बड़े चचेरे भाई पं० गुरुदेव मिश्र बी० ए० की देखरेख में हुई। आरे से स्कूली शिक्षा समाप्त कर आप काशी के हिन्दूकालेज में भर्ती हुए। प्रसिद्ध प्रेम-मन्दिर पुजारी स्व० कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन तथा सरस्वती सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल साथ के सहपाठियों में हैं। अचानक बहुत बीमार पड़ जाने के कारण आपको स्कूली शिक्षा से हट जाना पड़ा।

पढ़ना छोड़ने के बाद आप आरे के 'कायस्थ-जुबिली एकेडेमी' हाई-स्कूल में हिन्दी-शिक्षक नियुक्त हुए। आप इसी स्कूल के विद्यार्थी भी थे। आप भाषण भी अच्छा देते थे। जिस समय आप एन्ट्रेन्स क्लास में थे, उसी समय से हिन्दी में खूब लेखादि लिखने लगे थे। आपका पहला लेख १६०६ मे 'भारतजीवन' मे छपा था। आपकी पहली पुस्तक चंद्र-कुमार' नामक एक उपन्यास है। इसका प्लाट आपने घर के मजूरिन के मुँह से सुनी हुई कहानी के आधार पर रचा था। इसके बाद आपने हिरण्मयी' नामक पुस्तक लिखी। पण्डित जी ने अपने जीवनकाल में लगभग ८०-६० पुस्तकें लिखीं। जिनमें मौलिक और अनुवाद दोनों शामिल हैं। आप बंगला, मराठी, गुजराती, संस्कृत और अंग्रेजी सभी भाषाओं से बड़ा सुन्दर अनुवाद करते थे।

क्या अनुवाद करने क्या मौलिक लिखने दोनों में आप सिद्धहस्त थे। एक बार जो लिख देते, उसे कभी नही काटते

थे। आप लिखने में बडे तेज थे, तथापि आपके अक्षर सुन्दर और सुडौल होते थे। आपकी भाषा सुन्दर, मुहारेदार और भावपूर्ण होती थी। आपकी स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी। आप जैसे विनोदी थे, वैसे ही प्रतिभाशाली।

१६१२ ई० में आपने आरे से सुप्रसिद्ध 'मनोरंजन' नामक सचित्र मासिक पत्र निकाला था। वह केवल दो वर्ष तक निकला था। पर इतने ही समय में उसकी खूब प्रसिद्धि हुई थी। इसके बाद कुछ काल तक पटने में 'पाटलिपुत्र' के सह-कारी सम्पादक रहे, फिर कुछ दिनों तक आप गया की 'लक्ष्मी' के सम्पादक रहे। साथ-साथ वहाँ की 'श्रीविद्या' का भी सम्पादन करते थे। पुन आप घर चले आये। इसके बाद आप पटने की 'शिक्षा' और आगरे के 'धर्माभ्युदय' का सम्पादन करते रहे। इनमें से अधिकांश पत्र आजकल बन्द हो गये हैं।

लगभग तीन बर्ष 'धर्माभ्युदय' मे रहने के बाद आप कलकत्ते की हरिदास कम्पनी में चले गये। वहाँ भी दो अढ़ाई वर्ष रहकर वही के बर्मन प्रेस मे जा पहुँचे। उक्त प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामलाल वर्मा से आपको ऐसी घनिष्ठता हो गई कि अन्त तक आप वही रहे। उक्त वर्मा जी ने जब 'हिन्दू-पंच' निकाला तो आप ही उस के सम्पादक रहे। आपके एक ही वर्ष के सम्पादनकाल में 'हिन्दू-पंच' ने बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली। 'पंच' का सम्पादन करते हुए गत २२

जुलाई १९२७ ई० को कलकत्ते ही में अचानक दो तीन घंटे की बीमारी से आपकी मृत्यु हो गई।

आप खर्च बहुत करते थे, परन्तु कमाते भी खूब थे। वर्मा जी के यहाँ रहते हुए भी कुछ ही घंटे 'महेश्वरी पंचायत' में काम करने के लिये लगभग दो वर्ष तक आप को २००) मासिक मिलता था। खाने पीने में आप का अंधाधुंध खर्च था। इसी कारण आपके पास सदैव रुपयों का टोटा रहता था। हँसना हँसाना आपका रात दिन का काम था। नाटक में भी आप खूब भाग लेते थे। हास्य रस के पार्ट में तो कमाल कर देते थे।

आप कविता भी अच्छी करते थे। व्यंग्य-विनोद-भरे पद्य आप खूब लिखा करते थे। कलकत्ते के 'मतवाला' में बराबर आपकी हास्य रस की गद्य-पद्य मयी रचनाएँ निकलती थी। इधर 'हिन्दूपंच' मे तो आप खूब लिखा करते थे। आपके लिखे हुए नीति-शिक्षा-पूर्ण सरस पद्यों का संग्रह 'सौरभ' नाम से छपा था; पर वह अप्रकाशित ही रह गया। व्यंग-विनोद-मयी पद्य रचनाएँ आपने स्वयं 'चना-चबेना' के नाम से प्रकाशित की थी। इधर 'कचालू रसाला' नामक एक गद्य-पद्य मिश्रित पुस्तक निकालनेवाले थे, परन्तु वह विचार मन ही में रह गया।

आपकी रचित मौलिक पुस्तकों में श्रीरामचरित्र, सीता, सूर्योदय (नाटक), रँगीली दुनिया (नाटक), सिपाही-विद्रोह,

पंचशर (गद्य-काव्य) आदि और अनुवादित पुस्तकों में उद्भ्रान्तप्रेम, अन्नपूर्णा का मन्दिर, इन्दुमती, प्रेमगङ्गा, प्रेमिका, जलचिकित्सा, आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। बंगला-हिन्दी-कोष और पंजाब-हत्या-काण्ड आपके बंगला ज्ञान के अच्छे नमूने हैं। गुजराती से आपकी अनुवादित पुस्तकें एक दूसरे जैन महाशय के नाम से प्रकाशित हुई है। परमात्मा शर्मा जी को स्वर्ग में शान्ति प्रदान करें।

कलियुगी सन्त।

कलियुगी बाबा-पण्डों की। महा मोटे मुसण्डों की॥
न लीला कुछ जानी जाती। बुद्धि है काम नहीं आती॥
मुफ्त का माल उड़ाते हैं। पाप का जाल बिछाते है॥
कभी रण्डी रखते दो-चार। उन्हीं पर दिखलाते हैं प्यार॥
कभी साध्वी सुन्दर नारी। दृष्टि में गड़ जाती प्यारी॥
उसी पर मन ललचाते हैं। किसी विधि उसे फँसाते हैं॥
स्वर्ग की सोल एजेन्सी ली। धर्म की खोल करेन्सी ली॥
सती के हेतु बने रावण। असनियों के है मन-भावन॥
बाबा से बाबू अच्छे हैं। कहीं बढ़-चढ़कर सच्चे हैं॥
दुरंगी चाल नहीं चलते। अन्त में हाथ नहीं मलते॥
छिपे रुस्तम हैं ये पण्डे। धर्म को मारें ये डण्डे॥
महन्थी पाकर मन्दिर की। चाल चलते हैं बन्दर की॥
नरक के कुत्ते बन जाते। काम औ लोभ-मोह-माते॥

न कोई पाप बचा इनसे । न कोई काम छुटा इनसे ॥
पिये हैं दारू, ताड़ी, भंग । लिये फिरते हैं रंडी संग ॥
गेरुए की टट्टी की ओट । भयानक कर जाते हैं चोट ॥
कभी जो खुल जाती है पोल । ढोल से नही निकलता बोल ॥
जूतियाँ चाँदी की चलती । आपदाएँ तब हैं टलती ॥
न कहता फिर कोई है बात । वही फिर दिवस वही फिर रात ॥
वही फिर रंग-रँगीला साज । वही जो कल था फिर है आज ॥
बचाओ राम ! महन्तों से । नरक के कीड़े सन्तों से ॥
लगा दो इनके मुँह स्याही । बना दो नरक-राह-राही ॥

अँखियाँ अँटकीं ।

(१)

देश-सुधार, समाज-सुधार की बातें करैं चटकी-मटकी ।
रङ्ग नवीन सदा बदलैं, दिखलावैं कला वे महा-नट की ॥
खद्दर-चद्दर, भेष दरिद्दर, देश की भक्ति भरैं टटकी ।
देश जहन्नुम जाय भले, चंदा-धन पर अँखियाँ अँटकी ॥

(२)

रूप जनाने बनाय करैं मरदाने सी बात सदा टटकी ।
मेल-मिलाप की बातैं करैं और घातैं वे खटापट की ॥
देखि निराले नये रँग-ढङ्ग रहैं सबकी मतियाँ भटकी ।
रङ्ग दुरंगे तजैंगे कबै, यह देखन को अँखियाँ अँटकी ॥

एकोऽहं द्वितीयो नास्ति ।

कविता की तोड़ूँ टाँग, महाकवि मै हूँ ।
भाषा की ले लूँ जान, सुलेखक मै हूँ ॥
मै छन्द बन्द का हाल न कुछ भी जानूँ ।
व्याकरण बिचारे को मै फिर क्या मानूँ ॥
गुण, अलंकार, रस, रीति नही है जानी ।
इनकी मेरे आगे मरती है नानी ॥
कविता के नियमो का मुझको न पता है ।
स्वाभाविक कवि बिरला ही हो सकता है ॥
कवि होकर निकला मातृ-गर्भ से मै हूँ ।
मुझ सा है जग में कौन ? एकता मै हूँ ॥
यदि काव्य-शास्त्र की बात चलाये कोई ।
यदि छन्द-शास्त्र का नियम पूछता कोई ॥
तो मुँह बा देता, आँख नचाता, हँसता ।
मै झटपट उससे अटपट बातें कहता ॥
बस गाल बजाना, बात बनाना आता ।
औरों पर झूठा रोब जमाना आता ॥
मै कवि हूँ, मै ही कवि हूँ,—लासानी हूँ ।
मै काव्य-जगत् का राजा औ रानी हूँ ॥
राजा बनकर मैं रोब जमाता फिरता ।
रानी बनकर मैं मटक मटककर चलता ॥

मैं अपना आसन सबके ऊपर जानूँ ।
कवियों का हूँ सिरताज, यही बस मानूँ ॥
मै कालिदास का छोटा भाई बनता ।
हिन्दी के कवियों को मैं क्या कुछ गिनता ?
सच पूछो तो मै चेला सबको जानूँ ।
गुण अपने अपने मुँह से नित्य बखानूँ ॥
इससे कितनों के दिल पर पडे फफोले ।
क्या चिन्ता है ? जिसको रोना है रो ले ॥
जब सरस्वती की खास मिहरबानी है ।
दुनिया मेरे आगे भरती पानी है ॥
जब तक हिन्दी के पत्रों की है छाया ।
तब तक तो मेरी बनी रहेगी माया ॥
मै साफ आँख मे धूल झोंक डालूँगा ।
कर सम्पादक से मेल, माल मारूँगा ॥

सुधरी हुई स्त्रियाँ ।

न कहना सास का माने, न स्वामी का कहा करती ।
है मन में जिस तरह आता, उसी ढँग से रहा करती ॥
है परदा दूर कर डाला, सभा में बोलती फिरती ।
है छोड़ा काम घर का, देश के हित है फिरा करती ॥
न भाती पाकशाला औ न भाता कूटना-पिसना ।
है भाता पाठ 'नावेल' का, कलम का रातदिन घिसना ॥

हटाकर जाल घूँघट का, मिटाकर आँख की लज्जा।
है सुधरी नारियों ने अब सजायी मेम-सी सज्जा॥
पुरुष से लड़ रही अधिकार के हित नारियाँ जग की।
भला क्यों चुप रहेंगी देवियाँ इस वृद्ध भारत की?
इसी से भूलकर प्राचीनता आदर्श की अपने।
यहाँ भी देवियाँ हैं देखती यूरोप के सपने॥
मगर भारत का रुतबा क्या बढ़ेगा ऐसे करतब से।
हमारी देवियो का मान बढ़कर है जगत भर से॥
हमारे ढंग निराले हैं, हमारी रीति न्यारी है।
हमें लखकर चकित होता सदा संसार भारी है॥
हमारा तो भला होगा, न भूलें रूप यदि अपना।
न छोड़ें रीति को अपनी, न देखें और का सपना।
पढ़ें सब नारियाँ, विदुषी बनें, कर्त्तव्य को पालें।
न सीखें किन्तु यूरप की निराले ढंग की चालें॥
बनें गृह-देवियाँ वे तो, कभी मत 'लेडिया' होवें।
किसी दिन भूलकर प्राचीन मर्यादा नहीं खोवें॥

लेख की माँग।

सम्पादक जी! नमो नमस्ते, पत्र आपका प्राप्त हुआ।
पढ़कर शोक समेत हर्ष का भाव हृदय में व्याप्त हुआ॥
फूल गया यह बात देखकर, लेखक मुझे समझते आप।
किन्तु लेख लिख देना होगा, सोच यही होता सन्ताप॥

लेखक क्या हूँ अनुवादक हूँ, गुपचुप लेख चुराता हूँ।
अदल-बदलकर इधर उधर से अपने नाम छपाता हूँ॥
किन्तु आप-से बहुभाषाविद् लोगों से मै डरता हूँ।
लेख आपके लिये लिखूँ क्या? सोच सोचकर मरता हूँ॥
यही नही केवल है कारण इसका और दिखाता हूँ।
लेख नही क्यों अब लिखता हूँ वह सब सत्य बताता हूँ॥
बिना टके का लेख माँगते आप नहीं शर्माते हैं।
लेखो के बदले में हम कुछ लेते हुए लजाते हैं॥
इससे तो है कही भला यह, असहयोग कर लें हम आप।
पत्र न भेजें आप मुझे फिर, देवें नही मुझे सन्ताप॥
नही चाहिये पत्र आपका, मुझे माफ कर दें चुपचाप।
राज़ी रहूँ इधर मै भी औ खुश रहिये अपने घर आप॥

बुद्धिनाथ झा कैरव

पण्डित बुद्धिनाथ झा 'कैरव' बिहार के एक प्रतिभाशाली नवयुवक हैं। निर्धन होते हुए भी आपने अपनी उन्नति और त्याग से यह प्रमाणित कर दिया है कि निर्धनता उन्नति में बाधक नही हो सकती।

आपका जन्म संवत् १९५३ वि० के आश्विन मास में संथाल-परगनान्तर्गत सनौर ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० भरोसी झा है। आपका परिवार अत्यन्त निर्धन है। पाँच वर्ष की अवस्था में आप गाँव की पाठशाला मे पढ़ने को बैठाये गये। आरम्भ ही से आप यत्नशील थे। पढ़ने और खेलने दोनों में आपका बड़ा मन लगता था।

सन् १९०६ ई० में आपकी प्राइमरी शिक्षा समाप्त हो गई। पाठशाला के गुरु पं० भैरव झा तथा भाई पं० जनार्दन मिश्र 'परमेश' को कविता करते देखकर बाल्यकाल ही से आपकी रुचि कविता की ओर झुकी। फलतः १९०९ के गोरक्षा-आन्दोलन के समय से आपका कविता युग प्रारम्भ होता है।

सन् १९०८ ई० में आपने मिडिल पास किया, पर पढ़ने का कोई समुचित साधन नही होने के कारण दो वर्ष व्यर्थ ही घर पर बैठ गँवाये। १९१० ई० में अपनी पूज्या सहोदरा के साथ आप डुमरिया गये और वही एक प्राइवेट स्कूल में आठ

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव' विशारद

मास तक अंग्रेजी पढ़ी। तत्पश्चात् आपने बाँका हाई स्कूल में अपना नाम लिखाया। वहाँ आपने अपनी प्रतिभा और सच्चरित्रता के बल से शिक्षक-समूह को मुग्ध कर लिया। फलस्वरूप आपका अध्ययन-शुल्क माफ हो गया और आप दूसरे लड़कों को पढ़ाकर अपना और सब खर्च चलाने लगे। इतनी असुविधा होते हुए भी, आप प्रायः सभी वर्गों में प्रथम होते रहे। पढ़ने लिखने के साथ ही साथ आप गेंद आदि के अच्छे खिलाड़ी भी हैं। सार्वजनिक कामों में एक विद्यार्थी कार्यकर्त्ता के नाते आप बहुत दिलचस्पी लेते थे। बाँका मैथिल-छात्र-समिति तथा स्कूल डिवेटिङ्ग क्लब के आप स्तम्भ-स्वरूप थे।

वहाँ के हिन्दी-अध्यापक पं० लोकनाथ झा ने आपको कविता करने को विशेष प्रोत्साहित किया। जन्मगत प्रतिभा थी ही, गुरु की प्रेरणा ने उसे और भी उद्बोधित किया १९१५ ई० मे आपने वहाँ से मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास की।

पुनः उच्च शिक्षा के लिये धन की समस्या उपस्थित हुई! पर टी० एन० जुबिली कालेज (भागलपुर) के तत्कालीन केमिस्ट्री के प्रोफेसर बाबू क्षितीशचन्द्र मुखर्जी की सहायता और निज के उद्योग से आपने दो वर्ष तक उक्त कालेज में अध्ययन किया। १९१७ ई० में आपने एफ० ए० परीक्षा पास करके अर्थाभाव के कारण पढ़ना छोड़ दिया।

उसी वर्ष आप रामपुरडीह (भागलपुर) मिडिल इंगलिश

स्कूल के प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ दो तीन वर्ष रहकर १६२० ई० मे असहयोग आन्दोलन के समय आपने उस पद से इस्तीफा दे दिया।

सन् १६२० ई० में आप नागपुर-कांग्रेस के बाद से आप-पर देश-सेवा की धुन सवार हुई। भागलपुर, खडगपुर आदि राष्ट्रीय विद्यालयों मे आप हिन्दी तथा अंग्रेजी के अध्यापक रहे। थोड़े ही समय में आपकी गणना प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं में होने लगी। चर्खा-सम्मेलन के अवसर पर पटने में आप बारीक सूत कातने में सर्व प्रथम हुए थे। इस उपलक्ष्य में महात्मा गांधी ने यंग इण्डिया मे आपकी प्रशंसा की थी। उसमें आपको पदक और पुरस्कार मिले थे।

इस समय आप राजपुर मि० ई० स्कूल में प्रधानाध्यापक हैं। संवत् १६८३ की हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा आपने सर्व प्रथम होकर पास की। इसलिये गत भरत-पुर सम्मेलन में आपको एक स्वर्ण-पदक मिला। कवि-सम्मे-लन में सुन्दर कविता सुनाने के लिये भी आपको एक रौप्य-पदक तथा कई पुरस्कार मिले।

आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। जिनमें 'आगे बढ़ो' तथा 'पश्चाताप' छाप गई है। खादी की उपयोगिता, दिव्य-दर्शन, निहोरा, ध्वनि, खादी-लहरी आदि पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं। आप गद्य और पद्य दोनों अच्छा लिख लेते हैं। माधुरी, चाँद, राम, आदि हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में

आपकी रचनाएँ छपती है।

आप परिश्रमी, सीधे-सादे, मिलनसार और नम्र स्वभाव के हैं। ईश्वर आपके द्वारा हिन्दी साहित्य और हिन्दुस्तान का हित साधित करे।

कामना

बिहँस उठे चुम्बन से कलियाँ ऐसा सुखद समीर बनूँ।
विश्व-वाटिका को नहलाऊँ जीवनदायक नीर बनूँ॥
सो न बनूँ तो पृथवी रज वा विस्तृत नभ का तीर बनूँ।
कुछ न सही तो ज्वलित आग की प्रबल लपट बेपीर बनूँ॥
किसी भाँति इस बन्धन से होकर के पार वहाँ जाऊँ।
जीवन के संवरण-बहाने चिरजीवन को मै पाऊँ॥

विषाद

जलन! जल चुका भीतर छोड़ो अब बाहर ही आजा तू।
सूखा काठ पड़ा है आकर क्षण मे इसे जला जा तू॥
हृत्प्रदेश के निर्भर! बढ़कर आओ मुझे बहा जा तू।
प्रलय-पयोधि भले आओ अपने में मुझे डुबा जा तू॥
ढक दे अंचल मौत! आज लो, सब कुछ अर्पण करती हूँ।
जीवन की जो शेष घडी हैं, तुम्हें समर्पण करती हूँ॥

अनुनय

मै कब से हूँ यहाँ बैठकर तेरा ही पथ हेर रही।
जरा ठहर जा प्रबल अनिल! अब केवल थोड़ी देर रही॥
क्यों? यह भले समझ सकते हो, ज्वालाएँ घर घेर रही।
मै न रहूँगी, जब देखोगे, शेष राख की ढेर रही॥
तब तुम करना यही उड़ाकर उस विभूति को बतलाना।
पहुँचे जिससे उन चरणों तक अपने सँग लेते जाना॥

प्रतिसमवेदना

क्यों निकालती हो ये मोती? यों घर को सूना न करो।
मत रोओ मेरी खातिर, यों रोकर दुख दूना न करो॥
मुझे हुआ है क्या? तुम नाहक अपना मन ऊना न करो।
भले ध्यान में बैठी हूँ मै उसको तुम नूना न करो॥
बुरी चेतना! जब तक थी सँग वह भी मुझसे न्यारा था।
उधर भगाया मैने उसको झट आया जो प्यारा था॥

विकसित प्र न

छीन विश्व की सकल माधुरी मोहकता के रँग में भूल।
किसे न आज मुग्ध करता है उपवन का यह सुरभित फूल॥
भरी हुई मादकता इसमें अद्भुत सुषमा की है खान।
पंचवाण का गिरा कहीं से आकर है यह कोई बान॥

नव पौधे में क्यो उग आया है यह अति अनुपम युवराज।
देव-मुकुट का कही बिखरकर गिरा रत्न यह कोई आज॥
क्या सुरपति के उर पर की वह मणिमय माल गयी है टूट।
जिसका सबसे सुन्दर दाना छिति पर आकर गिरा अटूट॥
नन्दनकानन की मनमोहक शक्ति बसी पृथवी के बीच।
तभी न लोहे से चित को भी बरबस लेता है यह खीच॥
जाओ कही खिन्नमन से वा दुखितहृदय हो बने उदास।
यह हँसने का मौन निमन्त्रण झट भेजेगा सबके पास॥
जडता मे चेतनता का शुचि लाता है सम्मुख सन्देश।
यह निसर्ग की सुन्दरता का सबको देता है उपदेश॥
वाह्य चक्षु है नही सही, पर खुली हुई है अन्तर्दृष्टि।
जग की चेतनता में इसको दीख रही है जड़ की सृष्टि॥
विधि की सब निर्म्माण-क्रिया में निहित देख अनिवार्य विनाश।
हृदय खोलकर विहँस रहा यह जग का करता है उपहास॥
मूक इशारे से उर में यह पहुँचाता है अपनी बोल।
सुने नही ये कान भले पर है वे बात बड़ी अनमोल॥
"समझ रहे हो यों तुम जिसको जग की सुन्दरता का सार।
उसकी सभी निराली शोभा यहाँ अतिथि है दिन दो चार॥
कहाँ रंग आकार कहाँ है वेष कहाँ शुचि सरस अनूप।
तेरे मन के खेल सभी हैं सब कुछ है यह तेरा रूप॥
जिसकी खातिर यों तुम सबके सम्मुख बनते बड़े उदार।
भिन्न रूप में सब तू ही है जिनसे बनता है संसार॥

तेरे मृदुल हास का हूँ मै प्रगटित जग मे सुन्दर रूप।
माया की दीवार हटा दो, तेरा हा मै हूँ अनुरूप" ॥

तेरा व्यापार

कठिन है, कैसे होवे ज्ञात ? कहाते हो तुम सदा अकाम।
नही है यद्यपि कुछ भी हेतु, निरन्तर करते तो भी काम ॥
बनाकर बड़े यत्न से आप, मिलाते हो जग में तुम मेल।
जहाँ कुछ जी का बदला भाव, मिटा देते यह सारा खेल ॥
तिमिर का आगे परदा डाल, जगत की आँखों से हो ओट।
भले रचकर नित नव परपंच, सदा करते तुम लोट पलोट ॥
कही हँसने का हुआ हुलास, उजेला जग मे तुरत पसार।
निरखने लगते हो चुपचाप, भटकता है कैसे संसार ॥
जगे यह जग—जो हुआ विचार, घनी निद्रा में पड़ा विभोर।
तुरत इस जगत-जलधि के बीच, उठा देते अद्भुत हिलकोर ॥
अभी था विचलित प्रबल अशान्त, कहाँ से भेजा सुखद समीर।
सुलाया जग को जिसने वाह, बना पहले-सा शान्त गँभीर ॥
लखा, होती है कही अनीति, बढ़ा है कुछ भी अत्याचार।
जगत की रक्षा के हित शीघ्र, वहाँ करने लगते उपचार ॥
घने घन आये भरे अकाश, लगी गिरने यह शीतल धार।
निरखकर दुखियों के सन्ताप, मनो तुम रोते आँसू ढार ॥
सिमिट लेने की होती चाह, जभी मिट जावे यह संसार।
प्रलय की वंशी की मृदु तान, सुनाते हो तुम अन्तिम बार ॥

लगे क्या मुझको इसकी थाह, तुम्हारी महिमा अगम अपार।
नहीं कोई कर सके बखान, तुम्हारा है अद्भुत व्यापार॥

सौन्दर्य

प्रविश कर नयनों के दो द्वार, पहुँचते हो मन मन्दिर बीच।
अशुचि भावों का गदला नीर, स्वकर से पहले उसे उलीच॥
विमल नव नेह को तब डाल, जलाते हो अनुराग-प्रदीप।
सुखद जिसका है रुचिर प्रकाश, लुभा जो तेरे गया समीप॥
हटाकर नीच वासना-जाल, बढ़ाते हो उज्ज्वल अभिलाष।
सजग हो उठती है ततकाल, मिलन की झटपट तुमसे आस॥
हृदय के भीतर परदा खोल, जगाते हो निर्मल अनुराग।
पढ़ाने लगते हो शुचि पाठ, किसे कहते है सच्चा त्याग॥
तुम्हारी प्रकट प्रभा के बीच, महज फीका लगता संसार।
तभी तो सबने माना आज, तुम्ही हो ईश्वरता का सार॥
नही है जी मे मुझको चाह, तुम्हारा करे अन्य गुणगान।
प्रशंसा के तुम हो उस पार, नही है जग में तुम-सा आन॥
जगत के कोलाहल हट दूर, सुनो अब करो नही आघात।
मुझे रहने दो अब निश्चिन्त, निरत पूजा में यों दिन रात॥
तुम्हारे चरणों पर सब काल, सभी करते न्यौछावर प्रान।
लगा हो तुझपर मेरा ध्यान—यही दो मुझको बस वरदान॥

ब्रजभाषा की रचना

अंत में ये दुख देखनो जो न थे नेह लगाइबे को करती क्यों।
'कैरव' छोह बढ़ाइ कहौ किन यह असमंजस में परती क्यों॥
आस बिसास गमाइ सबै जुरि आँच हिये महँ यों बरती क्यों।
वे बिसराइहैं भूलिहूँ कै न कबौं यह भाव भनै भरती क्यों॥

वा निरमोही को नाम कबौं कहूँ भूलिहूँ कै अब लीजियो ना।
लाख करै किन सौंह भली पर बातनि वाकी पतीजियो ना॥
है अति ही दुखदायक री मन को बस आन के कीजियो ना।
चाहति हौ हित आपनौ तौ कहूँ काहू कबौं चित दीजियो ना॥

कोउ चाहै वा चाहै नहीं किन पै हमको तो यही अब चाहनो है।
दुखबारिधि में अब लै बुड़की नितही हमको अवगाहनो है॥
सब आपनो भागको है परिनाम न काहू सों मेरी उराहनो है।
सजनी अब सोचको काज नहीं अब तो दिन यों ही निबाहनों है॥

अब तो कोउ लाख कहौ किन पै नहि एकहू सो उर आनिहैं री।
घरु कोटिक ये घहराइन कों बिन मोल की बात सो जानिहैं री॥
चल दै उपराग हजार तिन्हैं नहिं काहू सों रार सो ठानि हैं री॥
जब स्वाद सुधाको मिल्यो इकबार तो क्यों फिर मोमन मानिहैं री॥

जिय सों जिय लागन देरी सखी अरु हानि न बैन सों बैन लगै ।
मन सों मन लागै हजार भले जिय चाहै तो सैन सों सैन लगै ॥
सिगरै बरु अंग लगै सब अंग सों साज सबै दिन रैन लगै ।
पर देखनो भूलिहू ते न कबौं कहूँ काहू के नैन सों नैन लगै ॥

कोउ तुम्हैं बरजै न लला अब नाम हमारो लै टेरे फिरौ जनि ।
'कैरव' छूटति है कुलकानि सुगैल गली मँह हेरे फिरौ जनि ॥
खेलनि बोलनि डोलनि में लगि साथ हमैं अब घेरे फिरौ जनि ।
आइबे जाइबे ठौर जितै उत आजु ते साँझसबेरे फिरौ जनि ॥

यों मग में तकरार मचाइहौ तो परिनाम बुरो तुम पाइहौ ॥
नाहक छेड़ि हमैं छल सों निज मायरु बाप को नाम हँसाइहौ ॥
है न सबै अति भोरी सुभावकी जो उनसों तुम यों उरझाइहौ ।
डाँट डरावनि सो परि है कि लिये मुँह आपनो गेह सिधाइहौ ॥

रामप्रकाश शर्मा

डाक्टर रामप्रकाश शर्मा का जन्म विक्रम संवत् १९५३ के ज्येष्ठ मास में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय पं० गुदरी ठाकुर शर्मा बनैली राज्य में तहसीलदार थे। आप भारद्वाज गोत्रीय भूमिहार ब्राह्मण हैं। आपका वास-स्थान पूसारोड स्टेशन से तीन मील उत्तर दरभंगा जिलान्तर्गत बथुआ ग्राम है। यह वही ग्राम है, जो बथुआ आम के लिये प्रसिद्ध है। आप अपने ग्राम के सुप्रसिद्ध जमीन्दार और एक लब्धप्रतिष्ठ चिकित्सक हैं।

ग्राम-पाठशाला की शिक्षा समाप्त कर आपने मुजफ्फरपुर के एक हाई स्कूल में नाम लिखाया। उसी समय से आपके हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम अंकुरित हुआ। छात्रावस्था में ही आपने वहाँ से 'भरोसा' नाम की एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकाली थी। थोड़ी थोड़ी कविता भी आप तभी से करने लग गये थे। प्रवेशिका परीक्षा पास करने के पूर्व ही आपके पूजनीय पिताजी का स्वर्गवास हो गया। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण गृहस्थी का झंझट असमय ही आपपर आ पड़ा।

प्रवेशिका-परीक्षा पास करने के बाद आपने पटना मेडिकल स्कूल में नाम लिखाया। प्रारम्भिक परीक्षा में सर्वप्रथम होने के कारण आपको सरकार की ओर से छात्रवृत्ति मिली।

बिहार के नवयुवक हृदय

श्रीरामप्रकाश शर्मा

हिन्दी से उत्कट प्रेम होने पर भी आपका यहाँ पर एक प्रकार से हिन्दी से विछोह हो गया। अतः आपने बिहार मेडिकल क्लब की स्थापना की। पीछे आपने कार्यकर्त्ताओं में मतभेद हो जाने के कारण न्यू मेडिकल स्टूडेन्टस् लाइब्रेरी की स्थापना की। इस संस्था के द्वारा आपने बंगाली, पंजाबी, तथा मुसलमान विद्यार्थियों में हिन्दी-प्रचार का कार्य किया। हिन्दी-प्रेम के साथ ही साथ लोक-सेवा की लगन भी आपमें कम न थी। अतः आपने बिहार प्रान्तीय सेवा-समिति के रुग्न-सेवा-विभाग का कार्य-भार ग्रहण किया। यह संस्था उसी साल कतिपय बिहार के नेताओं के सहयोग से कायम हुई थी। आप जब तक पटने रहे, तब तक सेवा-समिति के कार्यों में प्रमुख भाग लेते रहे। यही नहीं, यथासम्भव आप दीन विद्यार्थियों की सहायता भी किया करते थे। अपने स्कूल में सर्वप्रथम छात्र होने के कारण आपको परीक्षा पास करने पर विलायत जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की पूरी सम्भावना थी। पर सन् १९२० ई० में असहयोग आन्दोलन ने देश में हलचल मचा दी। आप भी अपने स्कूल के प्रतिनिधि रूप से नागपुर के अखिल भारतीय छात्र सम्मेलन में सम्मिलत हुए और असहयोग का प्रस्ताव पास होने पर सरकारी स्कूल से सम्बन्ध तोड़ लिया। असहयोग करने के पश्चात् आपने घूम घूमकर कांग्रेस के आदेशानुसार कार्य किया। दो वर्ष तक निरन्तर कठिन परिश्रम करने के कारण आपकी आँखें

खराब हो गईं और चिकित्सकों की राय से आपने घर पर कुछ दिनों के लिये विश्राम लिया। इधर लगभग चार पाँच वर्षों से आपने अपने ग्राम में ही डाक्टरी आरम्भ कर दी है, अपने विषय का पूरा अनुभव होने के कारण आसपास में आप की काफी ख्याति है।

महात्मा गांधी के खद्दर-आन्दोलन और ग्राम-संगठन के कार्य मे आपका पूर्ण विश्वास है। आप स्वयं खद्दरधारी है और बराबर जनता में इसके प्रचार की चेष्टा किया करते हैं। असहयोग आन्दोलन से पूर्व ही, जब आप मेडिकल स्कूल में पढ़ते थे, आपने अपने ग्राम मे पंचायत स्थापित की थी।

सम्प्रति आप दरभंगा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के निर्वाचित सदस्य हैं। इसके पूर्व भी आप समस्तीपुर लोकल बोर्ड के सदस्य की हैसियत से तीन साल तक जनता की सेवा कर चुके है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा, खद्दर-प्रचार, हिन्दी-प्रचार इत्यादि के लिये आप सतत् प्रयत्नशील रहते है।

आप विद्यार्थी-अवस्था से ही कविता करते है। आपकी कविताएँ देश, महावीर आदि पत्रों में छपती हैं। इश्वर आपको दीर्घ जीवन का वर दे।

कृष्ण चेतावनी

अरे नराधम स्वार्थ भृत्य क्या गर्व भरा है।
लाज नही है राजदण्ड ले अकड़ खड़ा है॥

अमल क्षात्र-कुल-विधु-कलंक तूने प्रकटाया।
पूज्य पिता का स्वत्व छीनकर मार भगाया॥
गुरु-शिशु-वध सब ही किया, स्वार्थ साधने के लिये।
अबला को बन्दी किया, नीति न्याय सब खो दिये॥
कूट-नीति से दुष्ट प्रजा को फाँस लिया है।
उसके बल फिर राजमुकुट ले नाश किया है॥
शिष्ट प्रजा ने न्यायनिष्ठ तुझको जाना था।
इसी हेतु निर्भीकचित्त निज प्रभु माना था॥
पटाक्षेप पर हट गया, रक्षक अब तक था बना।
भक्षक निकला अन्त में, कैसी दैव विडम्बना॥
ऐ नृशंस मदमत्त तुझे जो भावे कर ले।
न्याय शील को पकड़ शीघ्र जेलों को भर ले॥
जो हो हिय में बसा सभी कर साध पुरा ले।
प्राण-दण्ड दे भक्त जनों का हृदय जुड़ा ले॥
जिसके हिय अणुमात्र भी, पर-हित का संचार है।
यमपुर सीधे भेज दे, पशुबल की भरमार है॥
जितनी तुझमें शक्ति सभी अब शीघ्र दिखा दे।
सत्य धर्म का मार्ग कंटकाकीर्ण बना दे॥
दुखियों को दे दुःख निबल को खूब सता ले।
रहे न कुछ अब शेष निरंकुशता सब ढा ले॥
दीप-शिखा अवसान में, प्रज्वलित होती है यथा।
कुटिल चक्र को फेर दे, भभके दमनानल तथा॥

जो करना हो शीघ्र करो अब समय नही है।
पाप घड़ा भर गया तुझे निस्तार नही है॥
प्रजामात्र का रक्त चूसकर बड़ा बना है।
पर उसकी जड़ खोद फेंकने हेतु तना है॥
प्रजा-प्रपीड़न-पाप से उपजी है विष-वेलि जो।
क्या फल लावेगी नही, रोक सके वह कौन जो॥
डटा खड़ा है देश आज निज हक लेने को।
कोटि यत्न अब करो नही पर है हटने को॥
शूली फाँसी जेल उसे क्या घबरावेगा।
टूक टूक तन करो नही कच्चा खावेगा॥
नजरबन्द मुखबन्द कर, अग्नि-शिखा में डाल दो।
पर उसको अब भय कहाँ, तप्त तेल भी ढाल दो॥
अमरात्मा है अजर इसे क्या भय तू देगा।
जो सत्पथ पर सुदृढ़ सभी आपत्ति सहेगा॥
यदि गुरु बालक वृद्ध कोई आततायी है।
बिना विचारे हतो यह कथित मनु न्यायी है॥
तुझ-सम शठ को अन्त में, यह होना परिणाम है।
अभी समय है चेत जा, हो सकता तव त्राण है॥
मुरा बकासुर गये कोई सहयोग न देगा।
नौकरशाही गयी नहीं अब धाक सहेगा॥
खल ने पाकर प्रजा-शक्ति अन्याय किया है।
साथ नही है कोइ नीच ने समझ लिया है॥

यदि हिय में अब भी बनी, इच्छा निज कल्याण की।
दे स्वतन्त्रता देश को, अभी मूरि जो प्राण की॥

रण-निमंत्रण से

परम भयंकर अधित्यका मे युवक एक मृगयातत्पर।
देखा गया विचरता मुदमय अति संकीर्ण उपल-पथ पर॥
ऊपर था जड़ उच्च शृङ्ग गिरि नीचे उसकी दुहिता थी।
घूम रही उन्मत्त वहाँ कल कल करती वह सरिता थी॥
एकाकी-वह नववयस्क माधुर्य रूप गुण का आकर।
मनसिज-सी आभा थी तनु की सौम्य शौर्य का था सागर॥
देह गठित प्रशस्त वक्षस्थल दीर्घकाय बलशाली था।
कुंजर-कर-सम कर विशाल वह आरत-जन-बन-माली था॥
वीर-वंश-उद्भव-जैसा आकृति उसकी थी बतलाती।
दरिद्रता के अङ्क-पला पर शीघ्र धारणा हो आती॥
ढाल नही करवाल नही बस बर्छी मात्र हाथ में था।
उसके बल केवल न चला था क्षत्रिय-शौर्य साथ में था॥
ज्यो मृगेन्द्र-शिशु बलशाली मदमत्त मतंगज-झुण्डों के।
मध्य अभय विचरित विदीर्ण कर पीता शोणित कुम्भों के॥
वीर-वेश में वीरहृदय निर्भीक विकट-पथ-गामी था।
शस्त्र-निक्षेपण-क्रिया कुशल असि-परिचालन में नामी था॥
जलप्रपात गिरि खोह अगम वन प्रकृति-राज्य का वह प्रेमी।
परम उपासक स्वतन्त्रता का स्वागत हित अविचल नेमी॥

गतवैभव मेवाड़-भूमि की करुणा से कातर होकर।
शान्ति-दान व्याकुलचित को देता था पर्वत पर आकर॥
अक्षय कीर्त्ति पूर्वजों की विद्युत नस मे दौड़ाती थी।
मातृभूमि की दीन दशा त्यों विचलित उसे बनाती थी॥
शान्ति कहाँ उसको भूतल पर जो परतंत्र बना जग में।
पद पद पर ठोकर खाता है काँटे चुभते हैं पग में॥
अक्षत तनु वह कौन पुरुष जो जंगल मध्य चला जावे।
सम्भव नहीं झटिति गति से वायू भी वहाँ निकल पावे॥
क्षणिक शोक में पड़ा युवक यह देख शीघ्र पर सजग हुआ।
क्षिप्र वेग से बर्छी के बल कूद उपल पर खड़ा हुआ॥
पदाघात-ध्वनि क्रुद्ध प्रताड़ित शैल-समान एक शूकर।
झपटा तुरत प्रकंपनवत् उस मृगया-कुशल युवक-ऊपर॥
डोला नहीं नेक वह तोभी अविचल धीर प्रकृतिवाला।
तनिक सँभलकर श्याम सर्प-सा कासू छोड़ दिया काला॥
लगी शक्ति वह उछल गया बस दन्त मात्र कुछ दूर हुआ।
बर्छी जाकर रुका शिला पर तोड उसे वह चूर हुआ॥
भीमाकृति पुनि घोर नाद कर दौड़ युवक पर चढ़ आया।
बढ़ा वीर भिड़ जाने को पर रिक्त हाथ अपना पाया॥
संकट में लख प्राण युवक के एक दयाशील नारी।
लोहित वस्त्र हाथ में वीणा ईश-ध्यान-रत बनचारी॥
घबराकर आगत भय से वह शैल-शृङ्ग से दौड पड़ी।
चिल्ला उठी बचाओ हे सर्वेश नृपति पर विपति पड़ी॥

युवक झपटकर पद-तल से पत्थर का टुकड़ा एक लिया ।
वीर भाव से प्रेरित हो तत्क्षण वराह पर फेंक दिया ॥
चोट लगी गिर पड़ा पुनः वह द्विगुण वेग से आ झपटा ।
तीक्ष्ण तीर इतने में आकर फाड़ कलेजा से लपटा ॥
मृत वराह गिर पड़ा युवक तब एकलिङ्ग की जय बोला ।
ईश-ध्यान में मग्न हुआ पुनि हर्षोत्फुल्ल नयन खोला ॥
किसने प्राण बचाये इसकी उत्कंठा ने आ घेरा ।
बना कृतज्ञ ज्ञात करने हित चारो ओर नयन फेरा ॥
बहुत खोज की हो अधीर पर चित्त अन्त में ऊब गया ।
नहीं किसी को देख वहाँ विस्मय-सागर में डूब गया ॥
बैठ शिला पर लगा सोचने किसने की रक्षा मेरी ।
हृदय-व्यथा बढ़ती जाती थी होनी थी ज्यों ज्यो देरी ॥
कियत् काल पश्चात् निकट हो तपस्विनी को देख लिया ।
चिन्ता-वायु-विक्षिप्त हृदय को शीघ्र शान्ति संतोष दिया ॥
युवक दौड़कर नम्र भाव से साञ्जलि उसे प्रणाम किया ।
जय होवे भावी राणा की उसने शुभ वरदान दिया ॥
रोमाञ्चित गद्गद शरीर उसका उस क्षण किञ्चित् डोला ।
भक्तिपूर्ण संपुटकरद्वय वह युवक विनीत वचन बोला ॥
प्राण-दान-दात्री देवी तूने रक्षा की है मेरी ।
दर्शन दिया पुनीत किया यह अनुकम्पा अतिशय तेरी ॥
विस्मित व्यथित युवक को लखकर प्रेमपूर्ण शब्दों द्वारा ।
दे सान्त्वना दयाशील ने दिया उसे परिचय प्यारा ॥

देवी नहीं मानवी निशिदिन सेवा-वृत्ति हमारी है।
जन्मी खेली पली जहाँ मेवाड़-भूमि वह प्यारी है॥
ग्राम गली गिरि खोह अगम बन नदी तीर हम फिरती है।
मोहग्रसित निज देश-बन्धु की नींद वीणा से हरती हैं॥
नर-शरीर पाकर भी जिसने सेवा की न जन्म-भू की।
कुत्ता भी उससे अच्छा है भला चाहता निज प्रभु की॥
वीर-कीर्त्ति पूर्वज की गाकर रण-उन्मत्त बनाती हैं।
पतित देश के गतवैभव की गाथा घूम सुनाती है॥
हमसे कुछ भी हो न सका, वह वीर वलैचा-कन्या है।
प्राण बचा मेवाड़-रत्न का आज हुई जो धन्या है॥
तुम्हें देख लहराती है उर-उपवन में आशा-लतिका।
प्रजा-प्रेम भी उमड़ चला स्वागत करने भावी पति का॥
उठो बढ़ो छोड़ो कायरता विजय-दुर्ग चित्तौर करो।
धोकर अशुभ कलंक-कालिमा जन्म-भूमि का ताप हरो॥
वीरकुलोद्भव अरि-सिंह का हो पुत्र पिता को याद करो।
समराहुत वे हुए भ्रातृ-सँग उनका कुछ मर्याद करो॥
है शरीर में अभी प्रवाहित रक्त गरम वप्पा-नस का।
हो विजयी अथवा अनुगामी पूज्य पितामह के पथ का॥
क्यों सोये हो उठो दगाबाजों ने मजहब लूट लिया।
माँ बहनें भी हुईं बेहुरमत क्षात्र धर्म पददलित किया॥
खून हमारा चूस चूसकर आज विदेशी माटे है।
अस्थि-चर्म-अवशिष्ट हुए हम बड़े भाग्य के खोटे हैं॥

शस्त्र बाँध अब चलो वीरवर आगे बढ़ो नीद तज दो।
मुर्दा नही चिन्ह जीवन का तुममें भी जग को कह दो॥
उठो दासता की बेड़ी को मिलकर चकनाचूर करो।
नस में शक्ति तुम्हारे भी है, माता का दुख दूर करो॥
दिल्लीपति का ले सहाय्य भी मालदेव क्या कर लेगा।
रणभेरी बज जाने पर मेवाड़ी मात्र साथ देगा॥
दुर्ग समर्पण कर भय से अन्यत्र उसे जाना होगा।
अगर नही तो खड्ग-घाट पर रक्त-नदी तरना होगा॥
दृढ़प्रतिज्ञ हो वत्स यहाँ से अभी कैलवारा जाओ।
पिता-समान पूज्य चाचा के संकट-समय काम आओ॥
प्राणाहुति दे बार बार जिसने स्वातन्त्र्य बचाया है।
उसी अजय सिंह वृद्ध वीर को मुञ्जा ने विचलाया है॥
बड़े ध्यान से सुना युवक ने रक्त नसों में खौल उठा।
सहसा उठा विचार हृदय में समझ उसे वह बोल उठा॥
मेरे प्राणों की रक्षा की देवी! जिसकी पुत्री ने।
क्या विद्रोह किया है सचमुच सम्प्रति उसी वीर नर ने॥
किन्तु अभी तक चाचा ने क्यों मुझे निमन्त्रण दिया नही।
नीच समझ मुझको छोड़ा है निर्विवाद है बात यही॥
पर क्षत्रिय हूँ दूध पिया क्षत्राणी के स्तन का मै ने।
जाऊँगा न घटाकर इज्जत कभी वहाँ रिपु से लडने॥
वे राणा है विज्ञ उपेक्षा पर मेरी उनने की है।
उसी वंश में जन्म लिया कुछ स्वाभिमान मुझमें भी है॥

बोली वीणापाणि वीर से "सदा धर्म की जय होवे"।
चन्दाओन दौहित्र वीर हम्मीर मान क्योंकर खोवे॥
धीरप्रकृति हो वीर किन्तु फिर भी तो नन्हे बालक हो।
विपद्काल क्या यही चाहिये सोचो नृपकुल-पालक हो॥
दूती बनी निमन्त्रण ले मै निकट तुम्हारे आयी हूँ।
हाथ बढ़ाओ, रण-कंकण लो, यही महाधन लायी हूँ॥
करो शंखध्वनि, बढ़ो वीरवर, चढ़ो कलहगढ़ के ऊपर।
हनो शत्रु को, दलो दुष्ट दल, वीरकीर्त्ति थापो भू पर॥
देखो वही बलैचा-कन्या निकली निविड़ निकुञ्जों से।
जय हो, पुनः मिलूँगा अब जाती हूँ इन तरुपुञ्जों से॥
युवक खड़ा था अटल चारणी तीर वेग से निकल गयी।
किन्तु स्वर्ण प्रतिमा-सी सुन्दर सम्मुख आयी मूर्ति नयी॥
निर्निमेष नेत्रों से वीर निरखने लगा बालिका को।
हुआ तरंगित प्रेमोदधि लख हेम-पुष्प की कलिका को॥

बिहार के नवयुवक हृदय

बाबू ज्योतिषचंद्र घोष बी. ए.

ज्योतिषचन्द्र घोष

बाबू ज्योतिषचन्द्र घोष का जन्म भागलपुर जिले के 'रूपसा' नामक ग्राम में सन् १८६७ ई० के अगस्त मास में हुआ था। आपके पिता का नाम फेकूलाल घोष है। आपके तीन भाई और थे। आपकी वृद्धा माता भी अभी जीवित हैं।

निर्धन कुल में जन्म लेने के कारण विद्योपार्जन में आपको बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ी थी। परन्तु पढ़ने में आप बड़े तेज थे। सदा अपनी कक्षा में प्रथम ही हुआ करते थे। आपको नीचे से ऊपर तक हरएक परीक्षा में छात्रवृत्ति मिलती गई। आप परिश्रमी भी खूब थे।

१९१६ ई० में आपने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद आपने पटना कालेज से १९१८ ई० में आई० ए० तथा १९२० ई० में बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके साथ साथ आपने संस्कृत, होमियोपैथी आदि विषयों की कई एक परीक्षा बड़ी सफलता के साथ पास की। विद्यार्थी-जीवन मे आपको प्रायः प्रतिवर्ष बिहारी छात्र सम्मेलन से हिन्दी तथा अंग्रेजी की लेख-प्रतियोगिता में प्रथम पारितोषिक मिले।

बी० ए० पास करने पर धनाभाव के कारण आपने पढ़ना छोड़ दिया। कुछ दिनों तक कर्णगढ़ मे प्रधानाध्यापक रहने

के बाद आप मारवाड़ी पाठशाला (हाईस्कूल) भागलपुर के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। नौकरी करते हुए भी आपने पढ़ना नही छोड़ा। संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा देने के लिये आपने कठिन परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया।

स्वास्थ्य पर ध्यान न देने के कारण और घोर परिश्रम से आपका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो गया। फलतः १९२५ ई० के मार्च में आपको राजयक्ष्मा-रोग हो गया। लगभग दो वर्ष तक इसी रोग से पीड़ित रहने के बाद ११ फरवरी १९२७ ई० के १०½ बजे दिन को आपके प्राण-पखेरू सदा के लिये उड गये। आपकी स्त्री भी उसी वर्ष आपकी अनुगामिनी हुई। इस समय आपकी एकमात्र सन्तान एक पाँच वर्ष की कन्या है। ईश्वर उस कन्या को दीर्घायु कर आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

बचपन ही से आपको हिन्दी पढ़ने लिखने का बड़ा शौक था। जब मैट्रिक में पढते थे तभी से आप अच्छी कविता करने लगे थे। आपकी कविताएँ हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ करती थी। १९२० में बी० ए० पास करने के बाद आपने चम्पानगर (भागलपुर) से 'सुरभि' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका भी निकाली थी; पर वह कुछ ही दिनों के बाद आपके अस्वस्थ हो जाने के कारण बन्द हो गई।

आपकी मृत्यु से बिहार का एक पुत्र-रत्न चला गया।

आपका स्वभाव बड़ा ही नम्र था। आपका रहन-सहन बड़ा सादा था; आडम्बर तो आपको छू तक नही गया था। आप हिन्दी-साहित्योद्यान की वह कली थे जिसपर हम भ्रमरों की आशा निर्भर थी; पर विकास के पूर्व ही कुटिल काल ने हमारी आशा पर पानी फेर दिया, जिससे कली की सुरभि का आस्वादन हम नही कर सके! 'सिकन्दर और पुरु' नामक एक खण्ड काव्य आपने लिखना प्रारम्भ किया था, पर वह आपके अस्वस्थ हो जाने से पूरा नही हो सका। यदि आप जीवित होते तो हिन्दी-मन्दिर के पवित्र पुजारियों में गिने जाते। ईश्वर आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

भाषा

मानव-हृदय के मध्य मे जो सहज भावोद्गार है,
भाषा उसी का शब्दमय कल्पित सरल आकार है।
मानव-हृदय के मध्य में जो भावमय सीतार है,
भाषा उसी का शब्द से सम्पन्न सुन्दर तार है।
मानस-सरोवर-तीर में जिस हंस का अवतार है,
भाषा उसी के नूपुरों के नृत्य का झंकार है।
सम्बद्ध दोनों हैं परस्पर प्रेम का संचार है,
इनमे सदा ही एक का बस दूसरा आधार है।
ज्यों ज्यों हमारे भाव का होता विशद विस्तार है,
त्यों त्यों बढ़ा जाता स्वभाषा का विपुल व्यवहार है।

आदर्श-विद्या-ज्ञान-गुणगण का यही भाण्डार है,
स्वर्गीय-कविकुल-गानमय यह रम्य पुण्यागार है।
इसके बिना संसार में जीवन गगन का फूल है,
यह जाति का है प्राण,उन्नति का महादृढ़ मूल है।
अतएव आओ हे सखे! निज शीश पर इसको चढ़ा,
साहित्य-सेवा से स्वभाषा-गौरवों को दें बढ़ा।

मर्मवाणी

शान्ति हमको हाय! क्यो मिलती नही?
दीखते आनन्दमय सब है जहाँ—
चित्त चञ्चल नित्य रहता है वहाँ;
हाय! क्यों मन की कली खिलती नही?
ज्योति तेरी सामने जलती नही,
मै निशा में नाथ! जाऊँगा कहाँ?
मै जहाँ, क्या तू न है प्यारे वहाँ?
क्यों अरी आँखो! अभी खुलती नही?
दूर होती है न हिय की दाह है;
शान्ति पाने की तुम्ही में चाह है।
मै निराशा-स्रोत में जाता बहा;
निज कृपा की नाव में अब ठाम दो।
चक्र में पड़ हाय! डूबा जा रहा!
हे दयालो! दीन का कर थाम लो!!

अभिलाष

श्यामघन दे नवजीवन दान ॥

शान्ति-सुधा की सुखद वृष्टि से शीतल हो मन प्रान ।
हृदयासन पर सुमति विराजे, टूटे कुमति कृपान ॥

स्नेह-सलिल मे स्नान करें सब सुख से सुजन सुजान ।
विश्व-वाटिका-बीच सुशोभित हो नर-नीति-निधान ॥

सुमधुर सन्त-वदन-विधु-वरषित उपदेशामृत-पान ।
मनोमधुप का प्रभु-पद-पङ्कज पर अविचल हो ध्यान ॥

कवि कूजे जग-कुञ्ज-भवन में हो कलकण्ठ-समान ।
प्रेम-पगे स्वर से गावे नित हरि-गुण-गौरव-गान ॥

प्रार्थना

दयालो ! दीन को मत भूल ।

जग-जलनिधि में डूब रहा है, नहीं दीखता कूल ॥

आपद-आँधी के झकोर से रक्षित मानस-फूल ।
डरा रहा है निशिदिन जन को भव-भय-भीषण-शूल ॥

जीवन तेरा ही प्रसाद है देह धूल की धूल ।
कृपा करो करुणा-वरुणालय ! अभय-शान्ति-सुख-मूल ॥

आकांक्षा

मोहन ! पुनः आनन्दमय श्रुतिमधुर मुरली-तान हो,
जीवन-समर में शान्तिमय फिर पुण्य-गीता-गान हो।
म्रियमाण भारत को नवल स्वर्गीय जीवन-दान हो,
करुणा-सुधा के पान से जन का परम कल्याण हो॥
दारिद्र्य-दानव मनुज-शोणित से यहाँ है पल रहा,
सबको कुचलता चक्र दुख-दुर्भाग्य का है चल रहा।
घर घर कलह के रूप में फल फूट का है फल रहा,
औ द्वेष-दावानल मनोवन में भयंकर जल रहा॥
ये दूर हों—इनका प्रभो ! अब शीघ्र ही संहार हो,
सद्भाव से सुरभित सुखद यह स्वर्ण का संसार हो।
मानव हृदय औदार्य औ उत्साह का आगार हो,
निःस्वार्थ पावन प्रेम का सर्वत्र ही सञ्चार हो॥
गोपाल ! अपनी प्रिय धरा पर सदय शीघ्र पसीजिये,
केशव ! करुण क्रन्दन श्रवण कर कुछ कृपा अब कीजिये।
माधव ! मलय-मारुत समुन्नति का बहा फिर दीजिये,
हे राधिकारञ्जन ! स्वजन को शरण में रख लीजिये॥

सिकन्दर और पुरु

विश्व जिस सर्वेश की सत्ता सदा बतला रहा,
व्योम का नक्षत्रगण जिसका सुयश है गा रहा।

जो सभी सौन्दर्य औ आनन्द का शुभ धाम है,
प्रथम उस त्रैलोक्य-नायक को सप्रेम प्रणाम है॥
विज्ञ वाचक! मम मनोवन का कुसुम यह लीजिये,
स्नेह से निज काव्य-कण्ठाभरण में गुँथ दीजिये।
रस-सुधा जो मिल सके कृपया उसे ही पीजिये,
त्याग कर दूषण हृदय-भूषण गुणों से कीजिये॥
जिस समय का यह सुगौरव-गान गाया जा रहा,
ग्रीस निज साम्राज्य चारो ओर था फैला रहा।
सभ्य ग्रीकों का सदन सब भाँति से भरपूर था,
विभव-विद्या से, दुखद दारिद्रय उनसे दूर था॥
शौर्य में, ऐश्वर्य में औ एकता में भी कहीं,
ग्रीस-सम संसार में था देश कोई भी नहीं।
आज भी यूरोप में जिस सभ्यता का वाद है,
वह उन्हीं प्राचीन ग्रीकों का सुपुण्य प्रसाद है॥
तत्समय विज्ञात-वसुधा विजय करने के लिये,
औ विपुल 'बार्ब्बेरियन' धनधान्य हरने के लिये।
प्राच्य मणि रत्नादिकों से भवन भरने के लिये,
ग्रीकगण उत्सुक हुए जग में विचरने के लिये॥
मेसदन-साम्राज्य का स्वामी सिकन्दर शूर था,
वाश्यवत्सल था सदा प्रतिपक्षियों को क्रूर था।
भीम-सा था साहसी वह पार्थ-सम रणधीर था,
समर में वह था अचल औ सिन्धु-सम गम्भीर था॥

उस समय अवनीश के गुण का वही आगार था,
उस समय के श्रेष्ठ गुणियों का वही आधार था।
काव्य औ संगीत का करता बड़ा सत्कार था,
वह मनो संसार में औदार्य का अवतार था॥
उच्च आशा के सुनहले पक्ष पर चढ़ते हुए,
निज मनोबल पर विपुल विश्वास से बढ़ते हुए।
जब समूचे ग्रीस को इस युवक ने अपना लिया,
औ सभी नृप से नियत कर-दान का प्रण पा लिया॥
तब नये उत्साह से सब शक्तियों को वह जगा,
दिग्विजय की लालसा से सैन्य-सञ्चय में लगा।
सज सुशिक्षित औ परीक्षित ग्रीक वीरों की अनी,
पूर्व को प्रस्थान की वर कामना मन में ठनी॥
बस तुरत होने लगीं बहु भाँति की तैयारियाँ,
वीर पुत्रों को बिदा देने लगीं सब नारियाँ।
युवतियाँ जीवनधनों को साज पहनाने लगीं,
आह! कितनी भावनाएँ हृदय में आने लगीं॥

(अपूर्ण काव्य से)

कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय

कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय का जन्म संवत् १९५४ विक्रमीय के भाद्र मास की शुक्ल चतुर्दशी गुरुवार को दिन के लगभग दस बजे (कालीबाड़ी) छपरे में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० कालीकिङ्कर मुखोपाध्याय और माता का (स्वर्गिया) श्री विधुमुखी देवी है। जिस समय बंगाल के शूरवंशीय राजाओं ने कन्नौज से बंगाल में पाँच ब्राह्मणों को धर्म-प्रचार के लिये बुलाया था, उसी समय यह परिवार भी बंगाल में जा बसा था। परन्तु इधर प्रायः ढ़ाई सौ वर्षों से यह परिवार बिहार के छपरा शहर में बसा है। हिन्दी के वर्त्तमान युग के उषःकाल में जब कि बिहार में पत्र-पत्रिकाओं का कहीं नाम भी नहीं था, और छापेखाने का सर्वथा अभाव था, (यानी १९ वी शताब्दी के अन्तिम भाग में) स्वयं पण्डित कार्त्तिकेयचरण जी के पिता एवं पितृव्य (स्वर्गीय) श्रीभवानीचरण मुखोपाध्याय ने अपने उद्योग से यहाँ 'नसीम सारन' नाम से एक छापाखाना खोला था और भारतविख्यात पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के सम्पादकत्त्व मे 'सारन-सरोज' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। अब भी बिहार के किसी किसी प्राचीन हिन्दी-प्रेमी के पास इसकी प्रतियाँ मिल सकती हैं। कई वर्षों तक निकलने के बाद वह बन्द हो गया था।

बिहार के सुप्रसिद्ध वैष्णव कवि बाबा धरणीदास की दोहावलियों एवं अन्यान्य रचनाओं का एक उत्तम संग्रह भी यहाँ से प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त हिन्दी की और भी कितनी ही साहित्यिक पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हुई थीं, जो अब दुष्प्राप्य हैं। अतएव हिन्दी-साहित्य के साथ इस परिवार का पुराना प्रेम है। परन्तु पं० कार्त्तिकेयचरण जी ने हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र मे उतरकर अब तक जो कुछ किया है और कर रहे हैं, वह इनके पूर्वजों के हिन्दी-प्रेम से कहीं बढ़चढ़कर है।

बाल्य काल से ही हिन्दी साहित्य से इनका प्रगाढ़ प्रेम है। छात्रावस्था में ही आप हिन्दी लिखने का सफल प्रयास किया करते थे। आपके हिन्दी-प्रेम को परिस्फुट एवं विकसित करने में माँझी (सारन) के बाबू राजवल्लभ सहाय ने विशेष सहायता प्रदान की थी तथा उत्साहित किया था। हिन्दी के प्राचीन कवियों की रचनाओं का ये बड़े प्रेम से अध्ययन और मनन किया करते थे। हिन्दी के प्रति इनका विशेष अनुराग तथा बंगला के प्रति कुछ उदासीनता देखकर यदि कभी कोई वयोवृद्ध बंगाली सज्जन आपसे हिन्दी की निन्दा और बँगला की प्रशंसा करते तो आप तुरत उनसे तर्क करने को तैयार हो जाते और हिन्दी की प्राचीन महत्ता को प्रमाणित करके ही दम लेते थे। बंगाली होकर भी आप सर्वान्तःकरण से बिहारी हैं और हिन्दी से इतना प्रेम रखने के कारण एवं अनवरत

उसकी सेवा करते रहने के कारण आप हम बिहारियों के गौरव की सामग्री हैं।

हिन्दी से आपका जो प्रेम है, वह यहीं समाप्त नहीं होता। आप अपनी गृहस्थी के प्रायः सब काम हिन्दी में ही करते हैं। युवावस्था प्राप्त होने और उपार्जन कम होने पर आपने स्वयं अपने विवाह का आयोजन किया था, यद्यपि विवाह पिता और बड़े भाई की अनुमति एवं सम्मति से ही हुआ था। विवाह कर आपने अपनी स्त्री श्रीमती नलिनीबाला देवी को भी अच्छी तरह हिन्दी सिखाई और उनके मन में हिन्दी के प्रति यथेष्ट अनुराग उत्पन्न किया। उन्होंने दो ही तीन वर्षों में इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि 'सती शकुन्तला' जैसी सुन्दर पुस्तक लिख डाली। दोनों पति-पत्नी का साहित्य से प्रेम होने के कारण आपका दाम्पत्य जीवन बड़ा ही सरल, सुखद और शान्त है। पण्डित अमृतलाल चक्रवर्त्ती, बा० गिरिजाकुमार घोष, नलिनीमोहन सन्याल तथा इण्डियन प्रेस के प्रतिष्ठाता स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि के बाद यदि कोई बंगाली सज्जन हैं, जो हिन्दी से इतना प्रेम रखते हैं तो आप ही हैं।

आपने अब तक प्रायः ४०।४५ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से अधिकतर अंगरेजी और बँगला से अनुवादित हैं और वे कलकत्ते के बर्म्मन प्रेस से प्रकाशित हुई हैं। 'मुस्तफ़ा कमाल पाशा' 'सती सुभद्रा' 'मनीपुर का इतिहास' आदि आपकी मौलिक रचनाएँ हैं।

आपकी अवस्था इस समय ३० वर्ष की है। अध्ययन समाप्त कर आपको इस क्षेत्र में आये प्रायः ग्यारह वर्ष हुए। इन ग्यारह वर्षों मे प्राय पाँच वर्षों तक आपने कलकत्ते के (किसी समय) सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक भारतमित्र में सहकारी सम्पादक का काम किया था। सुयोग्य, अनुभवी एवं विद्वान सम्पादकों के सहकारित्व में रहकर आपने सम्पादन-कला में भी यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर ली है।

'भारतमित्र' का कार्य छोड़ आप कलकत्ते के सुप्रसिद्ध साहित्य-शिल्पी बाबू रामलालजी वर्मन के यहाँ पुस्तक-प्रकाशन-विभाग के 'इन-चार्ज' होकर पुस्तकें लिखने, अनुवाद करने, अन्यान्य लेखकों की पुस्तकों की पुस्तकों का संशोधनादि कार्य करने का काम बड़ी योग्यता के साथ करने लगे। आजकल आप इन सब कामों के साथ "हिन्दी दारोगा-दफ़्र" के सम्पादन और "हिन्दू-पंच" के निरीक्षण का कार्य करते हैं। स्वर्गीय पण्डित ईश्वरीप्रसादजी के जीवन-काल से ही 'पंच' के सम्पादन और प्रकाशन आदि समस्त कार्यों में आप विशेष मनोयोग के साथ सहायता करते रहे हैं और अब तो उसके सम्पादन का अधिकतर बोझ आपके ही सिर पर है।

आप शारीरिक और मानसिक परिश्रम अत्यधिक कर सकते हैं और काम करते कभी थकते नहीं। प्रायः गम्भीर विषयों पर ही आप निबन्धादि लिखते हैं। आपकी भाषा

सरल होने पर भी पुष्ट और प्रौढ़ होने पर भी प्राञ्जल होती है।

आप पद्य-रचना कम करते हैं; फिर भी एक बंगाली की इतनी चेष्टा कम प्रशंसनीय नहीं।

विरह

यद्यपि प्रातः काल मही का दृश्य मनोहर होता है।
पवन मन्द गति बह बह करके कुसुम सुरभि बहु होता है॥
बालातप की रश्मि-राशि भी नील गगन में छाती है।
जिन्हें देखकर कमल-कली निज ठंढी करती छाती है॥
मृदु कलरव से नदियाँ गाकर सिन्धु-मिलन को धाती हैं।
नीड़ों से निज चिड़ियाँ उड उड़ गान मनोरम गाती हैं॥
सूर्य-किरण से पुष्प निचय के सूख अश्रु सब जाते हैं।
पाकर इष्ट हृदय का अपने सब आनन्द मनाते हैं॥
अलि-दल टूट टूट फूलों पर मधुमय रस ले जाते हैं।
भूँ भूँ स्वर से गा गाकर वे श्रवण सुधा बरसाते हैं॥
उठते हैं रवि को लख नभ में कार्यलीन नर होते हैं।
कृषकवृन्द तज आलस अपने खेत जोतते बोते हैं॥
दिन के श्रम से थके सूर्य फिर मातृक्रोड में सोते हैं।
सारा तेज प्रताप रश्मि-बल क्षण भर में सब खोते हैं॥
तारों और सुधाकर के सँग सती यामिनी आती है।
प्राणाधार चातकी पाकर सारा क्लेश भुलाती है॥

किन्तु मुझे हा! बिना तुम्हारे सुन्दर दृश्य न भाते हैं।
ठंढी वायु गरम लगती है प्राण व्यथित हो जाते हैं॥
नदियों, भ्रमरों और खगों की प्रिय बोली दुख देती है।
कुसुम-सुरभि यह बिना तुम्हारे सब धीरज हर लेती है॥

बिजली

निराधार इस नील गगन में,
क्यों बिजली! तू विहँस रही है?
अँधियारी इस अमा-निशा मे,
इतराती क्यों थिरक रही है?
मृगतृष्णा–सी मरीचिका-सी,
प्रवञ्चना क्या सिखा रही है?
श्रान्त पथिक की नयन-भ्रान्ति को,
पथ दिखला क्या भगा रही है?
या जलधर के वज्र-हृदय का,
परिचय जग को जना रही है?
गर्वोन्मत उन्मत्त जनों के,
क्या हृत्तल को डरा रही है?
श्रीमानों की श्री की क्या तू,
चञ्चलता को बता रही है?
या विरहिनि की सुप्त व्यथा को,
रह रह करके जगा रही है?

सन्ध्या

हँसाने आती तू कुसुमित कली को कुमुद की ?
रुलाने या आती कमल-कलिका के हृदय को ?
चकी को प्रेमी से बिलग कर देने विरह या—
नवेली आली को पति-भय दिलाने सु-उर में ?
डुबोने आती तू दिवस-मणि को क्या उदधि में ?
बनाने बाँकी या पति-मन-रिझानी युवति को ?
जगाने है आती मदन-मदपूर्णा तरुणि में ?
बहाने या आँसू विरह विधुराके नयन से ?

वर्षान्त

काल अनन्त अनन्त गति, अविरल-अविचल चाल।
आवै जो जावै वही, यही जगत को हाल॥
भूल विभव छल-छद्म में, रचता माया-जाल।
मानव मानस-मान महँ, जिमि विचरन्त मराल॥
रूप—सुधा—सरिता बढ़ै, पाकर यौवन-बाढ़।
सगरी सोभा मर मिटी, आय पड़यो जब गाढ़॥
रसना राम रटै नहीं, चाहै चाखन खीर।
पर कहँ पावै सुख कभी, मीन तजै जो नीर॥
देख इसे तज दो सभी, काम-क्रोध-मद-लोभ।
आया देखौ जात अब, वर्ष लिये मन क्षोभ॥

ललितकुमार सिंह 'नटवर'

ठाकुर ललितकुमार सिंह 'नटवर' हिन्दी भाषा के एक सुलेखक और सुकवि हैं। आप हिन्दी, हिन्दू, हिन्द के अनन्य भक्त हैं। पहले आप हम हिन्दुओं के भूले हुए भाई थे। आपका पहला नाम मौ० लतीफ हुसैन 'नटवर' था। गत १८ सितम्बर सन् १९२७ ई० को आप शुद्ध हो अपने पैतृक हिन्दू धर्म में आ गये।

आपका जन्म संवत् १९५५ वि० के जेष्ठ कृष्ण अमावस्या गुरुवार को हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर महादेव सिंह था जो महुआर ग्राम (थाना निमेज) जिला शाहाबाद के प्रसिद्ध उज्जैन राजपूत थे। मुजफ्फरपुर म्युनिसीपैलिटी में कुछ दिनों तक तहसीलदार थे। पीछे वहीं सब-ओवरसियर के पद पर नियुक्त हुए। इसी समय उनकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया। नटवरजी की माता मुजफ्फरपुर जिले के सिसौला ग्राम (थाना शिवहर) के शेख मदारू मियाँ, जो शिवहर राजा के यहाँ कर्मचारी थे, की लड़की थी। बचपन ही में ठाकुर महादेव सिह जी ने आपकी माता को किसी तरह अपने यहाँ लाकर उपपत्नी की तरह बड़ी प्रतिष्ठा से रखा; पर दोनों का अपने अपने घर और समाज से सम्बन्ध बना रहा।

बिहार के नवयुवक हृदय
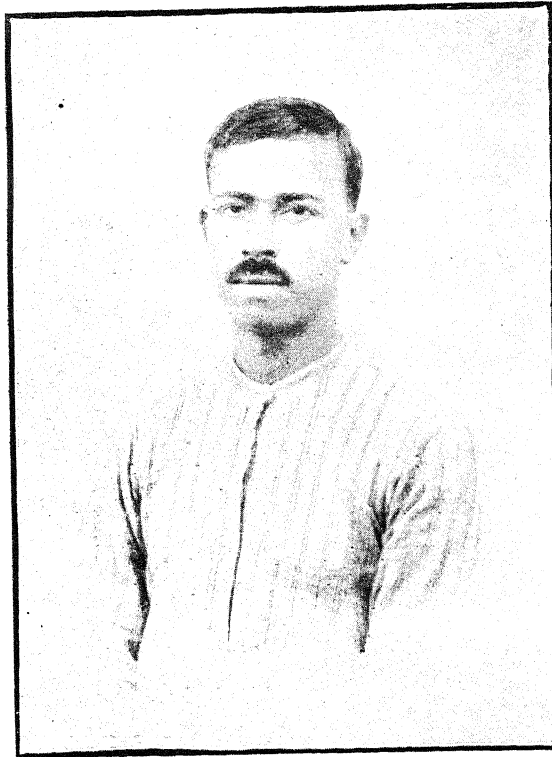
श्री ठाकुर ललितकुमार सिंह 'नटवर'

घरवालों के बहुत दबाव पर आपके पिताजी ने दूसरी शादी की जिससे उत्पन्न बालक श्री जगन्नाथप्रसाद सिंह अपनी माता सहित अब भी वर्त्तमान हैं। नटवरजी की शुद्धि में उन्होंने बड़े उत्साह से भाग लिया तथा सहभोज में भी सम्मिलित हुए थे। इनकी भी शिक्षा-दीक्षा हमारे नटवर-जी के साथ ही मुजफ्फरपुर में हुई थी। दोनों भाइयों में बड़ा सौहार्द और प्रेम है। १९१५ ई० के दिसम्बर में आपके पिता-जी की मृत्यु हो गई। इन सौतेले भाई और विमाता के अतिरिक्त आपके बाबू मथुरासिंह नाम के चाचा तथा कई चचेरे भाई भी हैं। वे लोग भागलपुर जिले के पीरपैंती नामक स्थान में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ गार्हस्थ जीवन व्यतीत कर रहे है। आपकी माता जब से आपके पिता के घर आई तब से उनका जीवन एक पवित्र हिन्दू स्त्री के समान रहा। दोनों शाम स्नान करना तथा पवित्र भोजन अन्त तक उनके जीवन का व्रत रहा। चार भाई और एक बहिन के स्वर्गवास हो जाने पर आपका जन्म हुआ। १९१९ ई० के नवम्बर में आपकी माता का देहान्त हुआ और वे कब्र में दफनाई गईं। इस समय आपके ममहर में कई ममेरे तथा मौसेरे भाई वर्त्तमान हैं।

पिता की संगति और माता की पवित्रता का आपपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। अखाद्य आपने कभी नहीं खाया और १९१३ ई० से आज तक निरामिषभोजी है। लड़कपन ही से

आपका जीवन एक पवित्र हिन्दू के समान रहा है। हिन्दू धर्म पर आपका अगाध प्रेम है। आप बड़े ही विनोदी तथा रसिक हैं। सहृदयता तो आपके घर की वस्तु है।

हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर कुछ दिनों तक आप मिडिल स्कूल मे पढ़ते रहे। स्कूल का पढ़ना छोड़ आप-ने स्वाध्याय द्वारा हिन्दी अंगरेजी, संस्कृत, बंगला, गुजराती और उर्दू का थोड़ा बहुत अध्ययन किया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे आप मुजफ्फपुर की हिन्दी-प्रचारणी-सभा के पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त हुए और पाँच वर्ष तक उसी पद पर रहे। उसी की सेवा ने आपके हृदय में साहित्य-प्रेम का बीजारोपन किया। फिर क्या था, आपकी रचनाएँ समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने लगी।

बिहार की पहली सेवा-समिति—भारतीय नवयुवक-समिति को आपने ही जन्म दिया और अब तक आप उसके प्रधान कार्यकर्त्ता रहे हैं। इसी समिति के अन्तर्गत एक नाट्य-समिति भी है जिसके आप ही प्रधान नाट्यकलाध्यक्ष हैं। आप सब रसों का पार्ट बडी उत्तमता से करते हैं, पर वीर रस और हास्य रस में आपको विशेषता प्राप्त है। सारांश यह है कि आप एक सफल अभिनेता हैं। आपके कविता पढ़ने का ढंग बड़ा ही मनोरञ्जक है। आप साहित्य-सम्मेलन और कवि-सम्मेलन के प्रायः सब अधिवेशनों में उपस्थित होते हैं। आप नगर-कांग्रेस-केमेटी, हिन्दू-सभा

और प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं में हैं।

आपकी बनाई अभी तक 'ललित राग संग्रह', 'गुल्लाल' (होली-सुधार की कविताएँ) और 'चतुरचर' (स्काउटिंग) नामक तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आपकी रचनाएँ माधुरी, प्रताप, हिन्दू-पंच, बालक आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती हैं।

सन् १९१७ ई० से १९१८ ई० तक रत्नाकर प्रेस मुजफ्फरपुर में, जहाँ से प्रसिद्ध मासिक पत्र निकलता था, आप सहकारी मैनेजर रहे। इसके बाद दो वर्ष तक स्थानीय वर्मन कम्पनी द्वारा प्रकाशित 'रमणी-रत्न-माला' के सहकारी सम्पादक और प्रबन्धक रहे। १९२२-२३ में आप 'किसान-समाचार' के संयुक्त सम्पादक का कार्य करते रहे। १९२५-२६ में आप मुजफ्फरपुर की प्रसिद्ध 'आशा' पत्रिका के प्रधान सम्पादक थे। इस समय फिर आप वर्मन कम्पनी के पुराने कार्य पर हैं। आपका सारा समय साहित्य-सेवा में ही व्यतीत होता है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें।

स्मृति या विस्मृति

सदियाँ बीती, किन्तु न बतियाँ उन दिनरतियाँ की भूली ;
जिनमें प्रकृति पिया रसिया की रँगरलियाँ पर थी फूली।

कला-कली विकसित हो जिसपर करती थी यौवन का दान;
उस नटखटी माधुरी-मुरली पर उत्सुक है अब भी कान।
सखी, सखाओं की वह क्रीडा; गैया, मैया का आह्वान—
करते हैं हिय-पट पर मेरे आँखमिचौनी के अनुमान।
ब्रज-बनिता की विरह-व्यथा से गूँज रहा अब भी आकाश!
किस छलिया की मधुर मूर्ति का आता है अभिनव-आभास?
जड, चेतन, वृक्षों, पत्तों में, रजकण में, एक गुप्त प्रकाश;
प्रकटित करता है हा! किसका छिपा हुआ उज्वल इतिहास?
री वृन्दा! तू सत्य बता दे क्या है यह सब माया है?
या स्मृति है? अथवा कवि की कल्पित विस्मृत छाया है?

है...!

प्यारे, हृदयेश्वर, प्रियतम, हे जीवन-लतिका के आधार!
अन्धे की लकड़ी, भवनिधि के डँवाडोल-नइया-पतवार!
मानस-मन्दिर की मनमोहनि मूरत, हृदय-स्वर्ग के इन्द्र!
आश-पपीहा के स्वाती-जल, कवि-कौतुक, चकोर के चन्द्र!
दीन हीन के लक्ष्मी धन, हे प्रेम-पुष्प के प्रणय-पराग!
मन-मधुकर के पावन पंकज, हे प्रेमी-अक्षय-अनुराग!
आलिङ्गन आधार, और चुम्बन-चुम्बक-अभिराम-विराम!
कामुक-रति, वासना-तृप्तिकर, हे तृष्णा-जल, रोग-निदान!
ध्यान-लक्ष, साधना-सुसाधन, तन-मन, हे संयोग-वियोग!
योग-इष्ट, हे योग-भोगफल, रस-रसिया, वियोग-संयोग!

गीता और नमाज़ी

'किशुन तेरी गीता' जगानी पड़ेगी।
'नमाज़ी की हस्ती' बचानी पड़ेगी।
तअस्सुब की भुतनी जो सर पर चढ़ी है।
उसे मार पिट के भगानी पड़ेगी।
य हिन्दू मुस्लमाँ असल में न दो हैं।
यह दुई खुद्गरज़ अब मिटानी पड़ेगी।
कुराँ जिसकी है, पाक गीता भी उसकी।
छिपी यह कहानी जनानी पड़ेगी।
'मुहम्मद' के कलमे में 'मोहन' की मुरली।
मधुर एक सुर मे बजानी पड़ेगी।
बने 'संग असव्द' के बुत हैं हरम में।
यह बन्दों को महिमा बतानी पड़ेगी।
अरब के मुसाफिर अब है हिन्दवासी।
न गठरी यहाँ से उठानी पड़ेगी।
यही 'आवेज़मज़म' है गंगा की धारा।
उसी में डुबकियाँ लगानी पड़ेगी।

जीवन-वन

छिपी हुई आँखों से ही मैने उस ओर निहारा था;
किन्तु न यह थी ख़बर—कि इतने ही में सब कुछ वारा था।

आकर्षण ही था कुछ ऐसा, या मेरी आखों का दोष ?
अथवा इन्हीं खिड़कियों द्वारा लुटा दिया हिय ने ही कोष ?
किसका धुँधला चित्र अनोखा, हृत्पट पर दिखलाता है ?
कौन छली पर्दे से मुझपर मोहनमंत्र चलाता है ?
निराधार-जीवन की लतिका, है मुर्झाई पडी हुई ;
किसकी गुप्त ठोकरें उसको आह ! रौंदने खडी हुई ?
जा भाई, जा ! छेड़ न मुझको, योंही समय बिताने दे;
यौवन के इस नटवर शिशु को अभी खेलने खाने दे ;
उधमी उधम करेगा, इसको योंही जी बहलाने दे ;
अरे चिकौटी काट नहीं, यह मचल पड़ेगा जाने दे ।
बुझी, तरुणाई-चिता-भस्म में खेल, भभूत लगा तन में—
अभी भटकने दे—इसको, योगी बनकर जीवन वन में ।

मुसीबत ही दवा हो जाती !

उन्हें बेचैन करने की कोई तदबीर हो जाती ।
तभी बिगडी हुई—मेरी—भली तक़दीर हो जाती ।
जिसे हाथों में लेकर वे, बहाते खून बैठे है ।
मदद पर—ढाल हो—मेरी, वही शमशीर हो जाती !
मुझे बेकस बना, जिसमें जकड रक्खा है जालिम ने ।
खुदाया ! हार की सूरत वही ज़ंज़ीर हो जाती ।
सताते, ज़ुल्म करते हैं, चिढ़ाते हैं, रुलाते हैं ।
ज़रा उनको भी मेरी ही तरह गर पीर हो जाती ।

दिले बिस्मिल की हालत सुन, न यों वे अनसुनी करते।
अगर नज़रों में उनके भी, वही तसवीर हो जाती।
यही है आरज़ू 'नटवर' कि अब भी उनमें रहमत हो।
नहीं तो, बस, मुसीबत ही दवा अकसीर हो जाती।

दुखिया का पावस

अन्न बिना पेट, देह वस्त्र से विहीन हाय !
सर्दी बेदर्दी ह्वै बरछी सम चुभति है।
टूट्यो खाट, सड्यो टाट, गूदड़ी पुरानी सबै—
सराबोर ह्वैगे, टूटी मड़िया चुवति है।
बालम, बेगारी मे बाबू-घर खटत ह्वैहैं,
दुधमुही बच्चिया, दूध बिन मुवति है।
पावस की रात भले जग सुखदायिनी है,
हमैं तो कालरूप डायिनी सी लगति है

बसन्त

ढीली-सी हो रही नसें थीं, हृदय चूर था।
वह आशा उत्साह बहुत हो रहा दूर था।
सूख गया था रक्त, मुखों छाई पियराई।
असमय मे ही हाय, झुर्रियाँ-सी पड़ आई।
ठंढक ऐसी छा गई, अंग शिथिल-से हो गये।
अवयव संचालन-नियम, मानो थे सब खो गये।

होकर उष्ण-विहीन, दुखित थे वृक्ष-लताएँ।
बनी हुई थी मूक, विहंगम-वर-बनिताएँ।
इसी तरह से अन्य जीव-गण भी आकुल हो।
शीत-त्रास से छिपे हुए-से थे व्याकुल हो।
पर इस काल-कुनाट्य का दृश्य हो रहा अन्त है।
जड़, चेतन में, जीव मे, छाया पुनः बसन्त है।
पपिहा, पिया गुहार, कुइलिया, धुन से प्यारी।
थिरक थिरक गा रही आज फिर डारी डारी।
स न न न किन्तु मन्द वायु की गति भी न्यारी।
पुष्पों के ढिग नाच, जा रही बारी बारी।
तरु-लतिकाएँ, लह लही, हरी भरी दिखला रही।
कलियाँ विकसित हो, अहा! यौवन-सुरभि लुटा रही।
रक्त खलबला उठा, नसों में बिजली धाई।
पीलापन मिट रहा, मुखों पर लाली आई।
नव-उत्साह, उमंग, हृदय मे फिर है छाई।
जभी, बसन्ती-सुछबि-'मोहनी' पुनः लखाई।
रे बसन्त, बस अन्त कर घड़ी, हेमन्त-कुराज की।
सुखद-छटा छिटका यहाँ, अपने सरस-स्वराज्य की।

कुमार श्री गंगानंद सिंह, एम. ए.,
एम. एल. ए., एम. आर. ए. एस., एफ. आर. एस. ए.

कुमार गंगानन्द सिंह

कुमार गंगानन्द सिंह बिहार के उन कर्मवीरों में से हैं जिनपर केवल बिहार को ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्ष को गर्व है। राजघराने में उत्पन्न होकर भी देश, समाज और साहित्य की सेवा के लिये आपने जितना परिश्रम और त्याग किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

आपका जन्म २४ सितम्बर १८९८ ई० को पूर्णियाँ जिले के श्रीनगर नामक स्थान में हुआ था। आपके पिताजी का नाम साहित्य-सरोज कविकुलचन्द्र राजा कमलानन्द सिंह था। वे हिन्दी तथा संस्कृत के एक नामी विद्वान् थे। आपके घराने में बहुत पहले से कवि तथा साहित्य-प्रेमी होते आये हैं। इसी लिये आरम्भ ही से आपको साहित्य से अगाध प्रेम है।

आपकी शिक्षा उचित समय पर आरम्भ हुई और उसमें कभी किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई। लगभग तीन वर्ष मुंगेर जिला स्कूल में पढ़ने के पश्चात् १९१० में आपका नाम पूर्णियाँ जिला स्कूल में लिखा गया। वहाँ से आपने १९१५ ई० में मैट्रिक परीक्षा पास की। तत्पश्चात् आप प्रेसिडेन्सी कालेज (कलकत्ता) में पढ़ने चले गये। वहाँ से १९१९ ई० में आपने बी० ए० तथा १९२१ ई० में एम० ए० परीक्षा पास की। आप वहाँ कानून भी पढ़ते थे। पढ़ने में साधारणतः

अच्छे थे। हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य से आपको विशेष प्रेम था।

आप सार्वजनिक कार्यों में खूब भाग लेते हैं। आप देश तथा विदेश के कई एक साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक सुप्रसिद्ध संस्थाओं के सदस्य हैं। भारतीय व्यवस्थापिका सभा में १६२४ ई० से आज तक बराबर सदस्य रहे हैं। बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप स्थायी उपसभापति हैं। १६२६ ई० में बिहार प्रान्तीय कवि-सम्मेलन के आप सभापति हुए थे। यह आप ही के उद्योग का फल है कि स्टाम्पों पर अब राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भी दर्शन होने लगे हैं।

आपकी लिखी हिन्दी तथा अंग्रेजी की कई पुस्तकें हैं। आपके लेख बालक, गल्पमाला, महावीर, हिन्दू-पंच, अभ्युदय, तेज आदि अनेक सामयिक पत्रों में निकलते हैं। आपकी बनाई अधिकांश पुस्तकें कलकत्ता-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुई हैं। इधर तीन चार वर्षों से सार्वजनिक कार्यों में विशेष रूप से संलग्न रहने के कारण आप साहित्य-सेवा पूर्ण रूप से नही कर सकते। फिर भी, आप जो करते हैं वही कुछ कम नही है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें।

सागर-कूल

सागर! तेरे निकट बैठकर मन चिन्ता से ग्रस्त हुआ।
ज्ञान ध्यान या जो था जी में सब चकराकर पस्त हुआ॥

गुण विरोध को तेरे तन में देखा ज्योंही जुड़ा हुआ।
पाया औ फिर मैं ने उनको नीर-क्षीर-सा मिला हुआ॥
तेरे अति गंभीर नाद के भीतर हास्य छिपा रहता।
जब तू मानव-जीवन को है अति क्षणभङ्गुर बतलाता॥
फिर जब कर आकृति तू भीषण अपना गौरव दिखलाता।
होगा फिर विनयी-सा नीचा सपने में भी क्या आता॥
तेरे वक्षस्थल पर नदियाँ जब आकरके गिरती हैं।
कृष्ण-प्रेम में पगी गोपियों की-सी तो वे लगती हैं॥
उन्हें मिलाकर निज शरीर में जग को तू है सिखलाता।
अन्तकाल यह जगत् समूचा ब्रह्मदेह में मिल जाता॥
क्या होती यह बात ज्ञात तब तू भी क्रोधित होता है।
जब तूफान ताल ठोक आ तेरे सम्मुख अड़ता है॥
क्या होता मालूम किसी को लाखों नाविक मरते हैं॥
जो पतङ्ग से आकर तेरे क्रोध-अग्नि में जलते हैं॥
आकांक्षा क्षण भर मे तेरी चन्द्र सूर्य को छूने की।
हो जाती है क्यों ठंढी फिर बिना युक्त कारण के ही॥
था ऐसा करके सिखलाता निष्फलता दुःसाहस की।
विश्व-निकट लघुता था अपनी दिखलाता बिन बोले ही॥
क्या तू हिंस्र जन्तु का पालक या दायक है मोती का।
विस्तृत है तू या सकुचा है द्वीपों के बिच दबा हुआ॥
एक रूप है या अनेक है मै कुछ नहीं समझ सकता।
कहो चिन्त्य हो या अचिन्त्य हो पार कहो क्या पा सकता॥

सूर्य-किरण जब आकर करती क्रीड़ा तेरी कणिकों से।
या सुधांशु है रास मचाता तेरे ताल तरङ्गों से॥
तेरा सिंह-नाद क्या इसके है कुछ भी उपयुक्त कहो।
या तू वर्जन करता उनको वैसा रङ्ग मचाने को॥
सब से अनुपम गुण यह तेरा मेरे मन में भाता है।
यद्यपि भरा हुआ शैलों से तू तो तरल दिखाता है।
बुरे भाव घुस सकते हैं जी नही कभी अन्दर तेरे।
देख सिधाई यद्यपि तेरी दौड़े आते बहुतेरे॥
भाव उपजते मन मेरे जो करता उनको वर्णित लेख।
पर रहस्य नीलार्णव! तेरा समझ न सकता तुझको देख॥
क्या मैं तेरे तीर बैठकर कभी उसे भी जानूँगा।
तेरे ही सा उच्चनाद से ईश्वर का यश गाऊँगा॥

आशा

कहाँ ले चलेगी मुझे कुछ भी खबर नही,
किस किस रूप से मुझे ललचायेगी।
कब से घूमता रहा हूँ मैं तेरे सङ्ग,
फिर भी कहती नही कब तू ठहर जायेगी।
शिथिल शरीर हुआ जी की न प्यास बुझी,
कातरचित कवि को तू कब तक जलायेगी।
कह दे मायाविनी है गूढ़ अर्थ इसका क्या,
प्राण न रहेगा मेरा जब तू हट जायेगी॥

"See, see this smooth and lovely glade
Which flowering trees encircling shade ,
Do thou, beloved Lakshman rear
A pleasant cot to lodge us here.
I see beyond that feathery brake
The gleaming of a lilied lake,
Where flowers in sun-like glory throw
Fresh odours from the wave below."—

—Griffith's Translations from the Ramayana

देखो जी तुम देखो सुन्दर चिकने इस वन-पथ को ।
फूले तरुवर छाया करने को घेरे हैं जिसको ॥
प्यारे लक्ष्मण, निश्चय तुम इस सुन्दर थल पर करना ।
खड़ी एक कुटिया सुरम्य, हो जहाँ हमारा रहना ॥
सघन पक्षसम उस झाड़ी के पार नजर जो आती ।
वह सरोज-शोभित सरसी है कैसी चमक दिखाती ॥
सूर्योदय शोभा धारण कर जहाँ फूल बहु भाते ।
नीचे की तरङ्ग से मिलकर नव सुगन्ध फैलाते ॥

"As long as in these firm set land
The stream shall flow, the mountains stand
So long throughout the world, be sure,
The great Ramayan shall endure.

While Ramayan's ancient strain
Shall glorious in the earth remain,
To higher spheres shalt thou arise
And dwell with me above the skies."—

—Griffith's Translations of the Ramayana.

जब तक निश्चल धरती पर है बहती नदियाँ।
शैल खड़े हैं जब तक गुरुतम अतिशय बढ़ियाँ॥
यह रामायण बची रहेगी भूमण्डल में।
संशय की है बात नहीं इसमें सच जानो॥
जब तक हैं यह गान पुरातन रामायण का।
पृथ्वी पर पूजित तब तक यह निश्चय होगा॥
तुम प्रतिदिन बढ़ पहुँच सकोगे उच्च लोक में।
मेरे सँग तुम बास करोगे ब्रह्म लोक में॥

भैरव गिरि

गोस्वामी भैरव गिरि का जन्म ७ मार्च १६०० ई० को हुआ था। आप सारन ज़िले के कुमना (पो० दाऊदपुर) नामक ग्राम के निवासी हैं। आपके पिताजी का नाम पं० श्रीदुर्वासा ऋषि विद्यावाचस्पति था, जो संस्कृत के नामी विद्वान थे। उनकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं।

पहले पहल घर ही पर अपने पिताजी से आपने संस्कृत और हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया। इसके बाद मुजफ्फरपुर के संस्कृत कालेज में आप पढ़ने चले गये। वहाँ रहकर आपने सन् १६१६ ई० में बिहारोत्कल-संस्कृत-समिति से 'काव्यतीर्थ' और सन् १६१८ ई० में 'सांख्यतीर्थ' नामक परीक्षाएँ पास की। १६२० ई० में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की।

इसके बाद आपने मुजफ्फरपुर कालेज में अपना नाम लिखाया। वहाँ लगभग दो वर्ष पढ़ने के बाद असहयोग-काल मे आपने कालेज से असहयोग कर लिया। इसके बाद आप कुछ दिनों तक 'मित्रम्' नामक संस्कृत पाक्षिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में रहे। फिर कुछ दिनों तक आप दैनिक 'भारतमित्र' और दैनिक 'स्वतन्त्र' के सहायक सम्पादक रहे।

'मित्रम्' के सम्पादन-काल मे राष्ट्रीय-संस्कृत-महाविद्यालय में आप प्रधानाध्यापक भी थे। संस्कृत कालेज के

प्रिंसिपल पं० अम्बिकादत्त शर्मा की आपपर बड़ी कृपा रहती है। १९१८ ई० में आपके पिता का देहान्त हो गया। आपके तीन भाई और हैं। बडे भाई मुजफ्फरपुर में नाज़िर हैं। दो छोटे भाई वहीं पर आजकल पढ़ते हैं। आप इस समय मुजफ्फरपुर के एक स्कूल में संस्कृत के अध्यापक है।

आपका स्वभाव शान्तिप्रिय है। हँसीमज़ाक से आप सदैव दूर भागते हैं। एकान्त में बैठकर आप कार्य करना पसन्द करते हैं। कविता आप बहुत अच्छी करते हैं, परन्तु नाम के आप भूखे नहीं है। इसलिये आपकी बहुत ही कम कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं। आपकी कुछ कविताएँ माधुरी और आयुर्वेद-प्रदीप में छपी है। इसके अतिरिक्त अपने मित्रों के अनुरोध से आपने 'मारुति-विजय' नामक एक खण्ड-काव्य लिखा है। आप छिपे छिपे बहुत-सा कार्य करते हैं जो दूसरों को प्रायः ज्ञात नहीं होता। आप एक सुयोग्य विद्वान् हैं। आपसे हिन्दी-साहित्य को बहुत कुछ आशा है। ईश्वर आपको दीर्घजीवी करें।

मारुति-विजय

तम व्योम व्यापी तब तक निशा का ठहरता,
दिशाएँ दीप्तात्मा जबतक न तिग्मांशु करता।
प्रयत्नोत्साहों की पवन यदि होवे भटकती,
घटा चिन्ताओं की हृदय-नभ में तो न टिकती॥

लखी थी वैदेही कुशल कपि ने यद्यपि नही,
उन्हें भासा तोभी दृगनिकट हो ज्यों यह कहीं।
छिपी भावी बातें हृदय दिखलाता विशद है,
क्रिया में उत्साही निपुण जब होता निरत है॥

प्रणम्यों का योंही प्लवगवर ने ध्यान धरके,
तजा प्राचीरों को उछल तनु-सङ्कोच करके।
बनी की दीवालों पर वह महावीर ठहरे,
जहाँ शोभा देते बहु विध लगे पादप हरे॥

अशोकों की शोभा निरख थकता लोचन न था,
अभिख्या[1] आमो की शिथिल कहने में वचन था।
छटा चम्पाओ की रुचिर बन में थी छहरती,
निराली आभा से अखिल जग का चित्त हरती॥

अनोखे पुष्पो से ललित लतिकाएँ झुक रही,
अनेकों ज्योत्स्ना में सुरभि कलिकाएँ खिल रही।
सुनाते थे भौंरे श्रुतिमधुर सङ्गीत बन को,
रिझाते वृक्षों को विकसित बनाते सुमन को॥

पिकों का आता था श्रुतिसुखद आलाप बन से,
मयूरों का रम्य स्वर बढ़ रहा पूर्ण घन से।
कुरङ्गों से शोभी, मुखरित पतङ्ग प्रभृति से,
शुकों की, भृङ्गों की उपवन भरा था विरुति[2] से॥

१ शोभा। २ शब्द।

कहीं जाती[1] भाती कुसुमित, कही हैं स्फुट जवा,[2]
कही मौलिश्री है सुरभित बनाती खिल हवा।
लखाता कुन्दों से सित[3], अरुण बन्धूक रुचि से,
बना था जूही से सुरभि बन बेला कुसुम से॥
चकोरी थी पीती तृषित नयनों से शशिकला,
शुकों से था जम्बू परिणत[4] हरा श्यामल भला।
विधुस्पर्द्धी[5] पुष्पों पर पतित नीहारकण थे,
जिन्हें मोती सीपीगत समझते हंसगण थे॥
नये देखे जाते अरुण तरु में, पल्लव कही,
कही शोभा देते मुकुल, खिलते कोरक कही।
कही पाये जाते हरित फल, पीले पर कही,
कही थे आरम्भ-प्रवण[6] अवसानोन्मुख[7] कही॥
सभी पाये जाते कुसुम फल थे सन्तत वहाँ,
बनी में जो होवे अधिगत न ऐसा द्रुम कहाँ।
कहो कैसे ऐसे रुचिर बन का निर्वचन[8] हो,
जहाँ भाती सारी सतत ऋतुएँ एकमन हो॥
द्रुमों से जाते थे प्लवग जब वृक्षान्तर कभी,
वहाँ निद्रा खोते चकित सहसा हो खग सभी।
उड़े वे पङ्खों से लग कुसुम नीचे गिर पड़े,
ढके फूलों से वे कपि अचल जैसे लख पड़े॥
करोंसे जो होते तरु तनिक भी धूत[9] कपि के,
धराशायी होते कुसुम, फल थे शीघ्र उनके।

---

१ चमेली। २ उरहुल। ३ सफेद। ४ पका हुआ। ५ सफेद। ६ करते हुए। ७ पकते हुए। ८ वर्णन। ९, कम्पित।

बनी ने था मानों प्लवगवर का स्वागत किया,
पदों में श्रद्धा से स्तबक[1] कुसुमों का रख दिया ॥
वहाँ थी चाँदी से धवलित कहीं भूमि बन की,
कहीं मुक्ताओं से रुचिर रचना थी भवन की।
कहीं पीताभा से मनहर हरी काञ्चन बनी,
कहीं थी रत्नों से निरतिशय आलोकित बनी ॥
लखाता था मेघोपम गगनचुम्बी शिखर से,
लता वृक्षों से जो रुचिरतर पाषाणवर से।
वहाँ था क्रीड़ा का गिरिविविध चित्राङ्कित बना,
सभी प्राणी होते लखकर जिसे हर्षितमना ॥
उसी से थी तन्वी[2] तरल तटिनी[3] एक निकली,
यथा कान्ता होवे तज दयित-अङ्कस्थल चली।
घिरा कुञ्जो से था शिशिरजलशाली ह्रद वहाँ,
लखे जाते भारी किरण छिटकाते गृह जहाँ ॥
वहाँ देखे छोटे विविध सर थे कीशवर ने,
पहाड़ों के खण्ड, प्रिय तरु, लता, कुञ्ज, झरने।
जहाँ मोती, हीरा, मणिगण भरे थे सब कहीं,
सुवर्णाम्भोजों[4] से रहित मिलता था ह्रद नहीं ॥
बन-श्री का लीलास्थल किशलयों से छन हरा,
विहङ्गों का क्रीड़ागृह पथिक-छायाश्रम बड़ा।
उठाये वृक्षों का पति शिर अशोकद्रुम खड़ा,
वहाँ था गम्भीराकृति कर रहा शासन कड़ा ॥

---

१. गुच्छा। २. छोटी। ३ नदी। ४ सोने का कमल।

उसी की शाखा पै कपिसुलभ-चाञ्चल्ययुत हो,
चढ़े वे तेजी से हरित घन में ज्यों तड़ित हो।
लगे चारो ओर स्थिरनयन हो दृश्य लखने,
लगी चिन्ताएँ ये हृदय-तटिनी में उछलने॥
यहाँ से सीता को सुखसहित हूँ देख सकता,
अभी जो जीती हैं, हृदय मम जैसा समझता।
दुखी हो आवेंगी प्रियविरहतप्ता वह यहाँ,
बनी के दृश्यों से तनिक बहलाने हृदय हाँ॥
खिली चम्पाश्रेणी, मलयज तथा ये बकुल हैं,
सरों में है पक्षी मुखरित, खिले पद्मकुल[1] है।
दिशाएँ हैं स्वच्छानल समय भी पुण्यमय है,
सदा निष्ठाप्रेमी जनकतनया का हृदय है॥
यहाँ प्रातःसन्ध्या प्रभृति करने राम-दयिता,
कहीं आवें साध्वी लख सलिल से पूर्ण सरिता।
इसी से आशा है यह उठ रही आज मन में,
उन्हें मै पाऊँगा ध्रुव इस अशोकोपवन मे॥
इन्हीं चिन्ताओं में कपि मन दिये वृक्ष पर थे,
पता में सीता के निरत उनके नेत्र पर थे।
अकस्मात् सोने के भवन पर दृष्टि लग पड़ी,
सहस्रों स्तम्भों से धृत चमकता जो हर घड़ी॥
सुदीर्घश्वासों से ग्लपित अधरश्री कर रही,
किसी चिन्ता से हो मलिनमुख शोभा धर रही।

---

१ कमलसमूह।

जटा से केशों की रुचिर शिर को रुक्ष करती,
प्रभासी अङ्गों की निविड तमसंभार हरती ॥
दुखों से स्वामी के अविरत निराहार रहती,
निरे क्षीणाङ्गों से मलिन दुख दुष्पार सहती।
गिराती आँखों से सतत जलधारा दुखमयी,
स्त्रियों में दैत्यों की सभय कर चिन्ता नित नयी ॥
सँभाले गात्रों को विधुरित अलङ्कारचय से,
गिराये गोदी में स्वतन जननी की प्रणय से।
विना देखे बन्धु, प्रियजन-सबों को तड़पती,
पतिप्राणा चिन्तातुर दयित का नाम जपती ॥
किये नीचा चन्द्रानन विपद, संकोच, भय से,
लिये नीला पीला सिचय लिपटा धूलिचय से।
उसी नामी चामीकर भवन में एक अबला,
दुखी हो बैठी थी अचल कमलातुल्य विमला ॥

(द्वितीय सर्ग से)

मनोरंजन प्रसाद

बाबू मनोरंजन प्रसाद हमारे बिहार के होनहार युवकों में हैं। आपसे देश और साहित्य को बहुत बड़ी आशा है। आपने अपने छात्रजीवन ही में अपनी प्रखर प्रतिभा से यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली है।

आपका जन्म कार्तिक कृष्ण द्वितीया संवत् १६५७ वि० को हुआ था। आप शाहाबाद जिले के सूर्यपूरा ग्राम के रहने वाले हैं, परन्तु आजकल डुमराँव ही में आपका निवासस्थान हो गया है। आपके पिता का नाम बाबू राजेश्वरप्रसाद था। वे सब-जज के पद पर थे। आपके दो बड़े भाई हैं। दोनों इस समय बड़े बडे पदों पर नियुक्त हैं। आपके परिवार का सम्बन्ध भी बड़े बड़े लोगों के साथ है।

शिक्षित परिवार में उत्पन्न होने के कारण आपकी शिक्षा ठीक रीति से तथा उचित समय पर प्रारम्भ हुई। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर आप ग्राम्य पाठशाला से अपने पिता के पास चले गये। उन्हीं के साथ रह कर आपने भिन्न भिन्न जगहों (मुजफ्फरपुर, हजारीबाग, छपरा आदि) के हाई स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की।

बारह वर्ष की अवस्था में आपपर तथा आपके बड़े भाई पर बाबू मैथिलीशरण जी के पद्यों को देख कर कविता करने

की धुन सवार हुई। बस क्या था, दोनों भाई रात दिन तुक-बन्दियाँ करने में लगे रहते थे। प्रयास में आप अपने भ्राता जी से बढ़ चढ़ कर निकले। इसी भाँति आप बराबर अपनी बाल्ययोग्यता के अनुकूल कविता बना बना कर अपने सह-पाठियों में नाम पाने लगे।

आपकी कविताएँ 'शिक्षा' और 'साहित्य-पत्रिका' (आरा) में प्रकाशित होने लगी। अब क्या था, आपका उत्साह दिन दिन बढ़ता गया। दो तीन वर्ष के बाद तो आप पाटलिपुत्र, प्रताप और मर्यादा आदि पत्र-पत्रिकाओं में स्थायी रूप से कविताएँ भेजने लगे। प्रताप सम्पादक श्रद्धेय विद्यार्थी जी ने आपकी प्रतिभा देख उत्साहित किया।

पढ़ने-लिखने में आप आरम्भ ही से तेज हैं। १९१६ ई० में आपने प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसके बाद आपका नाम मुजफ्फरपुर कालेज में लिखा गया। कालेज मे प्रविष्ट होने पर तो आप पूरे कवि बन गये। किसी भी सभा-समिति जिसमें आप उपस्थित रहते आपका एक गान होना निश्चित था। सो भी आप ही का बनाया हुआ। दो वर्ष कालेज में पढ़ने के बाद आई० ए० परीक्षा के समय स्वास्थ्य अच्छा नही रहने के कारण आप परीक्षा में सम्मिलित नही हो सके। इसी समय आप शिमला, हरद्वार, मंसूरी आदि स्वास्थ्यकर स्थानों में भ्रमण करने चले गये। इस यात्रा में आपने कई कविताएँ बनाईं जो बहुत ही अच्छी हैं।

सन् १९१९ ई० में आपने आई० ए० परीक्षा पास की। तत्पश्चात् आपने पटना कालेज के बी० ए० क्लास में अपना नाम लिखाया। यहाँ पर आपने लगभग दो वर्ष अध्ययन किया, पर परीक्षा के कुछ ही दिन पहले १९२० ई० के अक्टूबर में असहयोग का बिगुल बजते ही आप कालेज से हट गये।

असहयोग-काल के प्रसिद्ध 'फिरंगिया' नामक गीत के आप ही रचयिता हैं। इसकी बदौलत आपका नाम सर्वत्र फैल गया। उस समय आपने और भी कितनी समयानुकूल कविताएँ लिखी थी। उसी समय आपकी राष्ट्रीय कविताओं का एक संग्रह 'राष्ट्रीय मुरली' के नाम से प्रकाशित हुआ था। आपकी नियुक्ति गुजरात विद्यापीठ के हिन्दी अध्यापक के पद पर हुई थी, परन्तु उस समय काशी में अकस्मात् बीमार पड जाने के कारण आप वहाँ नही जा सके।

असहयोग का जमाना बीत जाने पर आप घर के लोगों की राय से वैद्यक पढ़ने लगे। आपका मन उसमें नही लगा। इसलिये वैद्यक पढ़ना छोड़ १९२४ ई० की जुलाई में काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में आकर बी० ए० क्लास में फिर से अपना नाम लिखाया।

विश्वविद्यालय का जीवन आपका बड़ा ही उज्ज्वल रहा है। बी० ए० की परीक्षा आपने हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य में आनर्स लेकर विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम होकर पास की थी। यहाँ तक कि हिन्दी के परीक्षक पं० श्यामबिहारी मिश्र

ने आपके उत्तरपत्र से प्रसन्न हो एक प्रशंसापत्र दिया था। इस साल एम० ए० परीक्षा मे आप सम्मिलित हुए हैं। ईश्वर करें, आप समुत्तीर्ण होकर देश और साहित्य की सेवा करने में लग जायँ।

अध्ययन में इस समय विशेष संलग्न रहने के कारण आपकी रचनाएँ इधर बहुत कम देखने में आती हैं। आशा है, अब आप विशेष रूप से साहित्य-सेवा कर हिन्दी-संसार का कल्याण करेंगे।

जय जगजननी

जय जय जय जय जगजननी।

ज्ञानकला विज्ञान-प्रसारिणि अखिल भुवनकर तमहननि!

प्रथम ज्ञानरवि उदित गगन तुव,
प्रथम प्रकाशित दिव्य भवन तुव,
प्रथम जगे जग माँझ सुवन तुव,
जयति जगत मङ्गलकरणि!

हिमगिरि तुव सिर मुकुट सँवारत,
सागर निशि दिन पाँव पखारत,
हरित वरण शुभ सेज सजावत,
शस्य श्याम शोभित धरणी॥

बहति गङ्ग तुव हृदयप्रदेशे,
बिहरति कालिन्दी तुव देशे,

गावत तव गुण देश विदेशे,
गिरि, वन, निर्भर, निर्भरिणी ॥
नव वसन्त तुव विटप सजावत,
मलय पवन नित विजन डुलावत,
कोकिल कुल कल गान सुनावत,
नृत्य दिखावत शिखि शिखिनी ॥
धन्य धन्य तू, धन्य सुवन तुव,
धन्य धन्य स्वर्गीय भवन तुव,
उठहु जननि, अब अखिल भुवन तुव,
जोहत पथ, हे अघहरणी ॥
उठहु, जननि, अब जगहि जगावहु,
चहुँदिशि नूतन ज्योति दिखावहु,
सत्य शान्त संदेश सुनावहु,
तरै जगत जीवनतरणी ॥

मालती

इस सुभग उद्यान में किस शान से,
आज तू फूली हुई है मालती।
चञ्चरीकों पर तथा नरवृन्द पर,
माधुरी अपनी सभी पर डालती।
मुग्ध भौंरा है तुझे अवलोक कर,
पास तेरे भनभनाता बार बार।

तेरे ही गहने पहन कर षोड़शी,
कर रही है सोलहो अपना शृङ्गार।
मालती यह मोहनी तव गन्ध है,
रङ्ग भी तेरा है चटकीला बड़ा।
ज्ञात होता है मानो इस बाग में,
हो पड़ा एक शुभ्र मोती का घड़ा।
याद रख पर मालती यह दिन सदा,
एक-सा रहता नही संसार में।
आज सुख का जिस जगह डेरा पड़ा,
दुःख होगा कल उसी आगार में।
आज तू फूली हुई है शान से,
है सुरभि चारो तरफ फैला रही।
कल वही मैं देख लूँगा बाग में,
चूमती है तू पड़ी रहकर मही।
जो भ्रमर था देख तुझको गूँजता,
भूल भी तुझको न पूछेगा वही।
जो पवन पंखा तुझे था झल रहा,
देखना कल धूल झोंकेगा वही।
रङ्ग चटकीला तेरा मिट जायगा,
और माली भी न पूछेंगे तुझे।
लात मारेंगे तुझे अब हाय सब,
यह धरा ही बस शरण देगी तुझे।

माँ धरा की गोद में रहकर पड़ी,
मालती हरदम कहेगी तू यही।
देख लो लोगो! जरा फैला नजर,
एक-सा दिन है सदा रहता नहीं।

तुलसी

"संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तजौ शरीर॥"
सावन शुदी शुभ सप्तमी को पुण्य दिवस बना गया।
तज अन्तवन्त शरीर वह अनन्त मध्य समा गया॥
मृतप्राय हिन्दू जाति को फिर एक बार जिला गया।
तुलसी नहीं नर था कभी सूर था अमर पद पा गया॥
हृत् पद्म थे सकुचे खड़े उनको विपुल विकसा गया।
हरि-भक्त-मत्त-मिलिन्द को मकरन्द-बिन्दु पिला गया॥
जन-कोक थे अतिशोक में उनका हृदय हुलसा गया।
तुलसी नहीं शशि था कभी रवि था कमल विकसा गया॥
रविकर-निकर-सम काव्य-कर से मोह-तम विनसा गया।
अज्ञान में अभिभूत थे उनको भी आज जगा गया॥
जग में पुरुषवर राम की निर्मल छटा दर्शा गया।
तुलसी नहीं नर था कभी सुर था सुधा बरसा गया॥
है हिन्दी का जब तलक, जग में नाम निशान।
तब तक होगा हिन्द में तुलसी का गुणगान॥

बिहार-गौरव

गुज़र गये दिन बिहार मेरा किसी समय मे जगा हुआ था।
सुकीर्त्ति-कलिका खिली हुई थी प्रताप-सूरज उगा हुआ था॥
धरम कला ज्ञान आदि सबकी सबक सभी को सिखा रहा था।
अँधेरे में जो भटक रहे थे—उन्हें उजेला दिखा रहा था॥
ज़माना था वह बिहार का जब प्रताप था चारो ओर छाया।
भला जगत में था कौन जिसने इसे नही शीश था नवाया॥
सुदूर देशों में जाके इसने ही धर्म्म-संदेश था सुनाया।
जपान वो श्याम चीन बरमा सभी को निज शिष्य था बनाया॥
अभी भी भूली नही है दुनियाँ हमारे नालन्द का ज़माना।
हजारों शिष्यों को कुलपति का बिना लिये शुल्क कुछ पढ़ाना॥
सुदूर देशों से शिष्य लाखों यहाँ थे शिक्षा के हेतु आते।
बिहार का वह पवित्र गौरव सकल जगत को प्रगट जताते॥
यहीं के पावन तपोवनों में मुनीन्द्र सोऽहम् जगा रहे थे।
यहीं पै विश्वा मुनी व गौतम परेश का गीत गा रहे थे॥
यही महावीर जैन प्रभु ने स्वधर्म्म-संदेश था सुनाया।
यही कुँवर शाक्यसिंह ने भी अपूर्व था बुद्ध भाव पाया॥
महामति नृप जनक सरीखे सुतत्त्वज्ञानी हुए यही पर।
परार्थ निज देह के भी दाता दधीचि दानी हुए यही पर॥
यही हुए शेरशाह जैसे चतुर सुनीतिज्ञ वीर बाँके।
यही कुँवर सिंह औ अमर से हुए अनेकों विकट लड़ाके॥

यही हुए वीर बाँकुड़े थे नरेन्द्र श्री चन्द्रगुप्त जैसे।
पवित्र धार्मिक दयालु नृपवर यही हुए श्री अशोक ऐसे॥
अभी भी वे धर्म्मलेख उसके जगह जगह पर गड़े हुए हैं।
हमारे गौरव के चिन्ह लाखों अभी भी जग में पड़े हुए हैं॥
यही की सेना के सामने से सुवीर ग्रीकों ने हार खाई।
यही के राजा के सामने से श्रीकृष्ण ने पीठ थी दिखाई॥
यही पै शस्त्रास्त्र की सुशिक्षा श्रीराम औ लक्ष्मण ने पाई।
यही पै छिप करके पांडवों ने भी शत्रु से जान थी बचाई॥
यही पै पैदा हुए थे आल्हा हुए थे गोविन्द भी यही पर।
अपूर्व विद्यापति सरीखे कविन्द्र भी थे हुए यहीं पर॥
यहीं पै चाणक्य ने जगत को नरेशों की नीति थी सिखाई।
बिहार-गौरव, बिहार-महिमा सकल जगत को प्रगट दिखाई॥
यही हुईं नारियाँ अनेकों स्वरूप सुन्दर सुभग पुनीता।
यही हुई थी सतीत्व गौरव पवित्र ललना ललाम सीता॥
यही हुई भारती सरीखी अपूर्व विदुषी पवित्र नारी।
कि जिसके सम्मुख हुए पराजित प्रचण्ड शङ्कर से ब्रह्मचारी॥
अपूर्व विद्वत्ता गार्गी की भला नहीं कौन जानता है।
हमारी विद्याकला का लोहा अभी भी संसार मानता है॥
अभी भी प्रकृति विहँस २ कर इसी के शुभ गीत गा रही है।
अभी भी नदियाँ उछल उछल कर इसी की महिमा सुना रही हैं॥
अभी भी वह कर्णदुर्ग राजा करण की बातें बता रहा है।
चिरान अब भी मरयूध्वज की पवित्र गाथा सुना रहा है॥

अभी भी रोहतासगढ़ हमारा खड़ा हुआ मुस्कुरा रहा है।
गया अभी भी सभी पितरों को मुक्ति का पथ दिखा रहा है॥
अभी भी वह सुभूमि सुन्दर अभी भी सुषमा सरस रही है।
अभी भी लहरा रही है गङ्गा अभी भी सरजू विहँस रही है॥
हमारे वीरों की शुभ कहानी अभी भी सब लोग गा रहे हैं।
हमारा गौरव, हमारी महिमा अभी भी गांधी बता रहे हैं॥
बिहारियो, उठ खड़े हो अब भी न मातु के दूध को लजाओ।
कमाई जो कीर्त्ति पूर्वजों ने न उसमें तुम कालिमा लगाओ॥
उठालो अब सत्य की पताका, करो न सङ्गति अधर्म्मियों की।
स्वदेश भाषा, स्वदेश सुन्दर, दिखा दो सब को छटा स्वदेशी॥
जगा दो भारत को आज अपनी स्वराज्यवीणा बजा २ कर।
बना दो दुश्मन को आज चर्ख़ा पवित्र चर्खा चला कर॥
कभी न भूलो बिहार-गौरव पवित्र थाती है पूर्वजों की।
सदा रहे ध्यान बस उसी पर कही जो 'रञ्जन' ने बात नीकी॥

नन्दकिशोर लाल 'किशोर'

पुण्यभूमि मिथिला प्रान्तान्तर्गत दरभंगा जिला के किशनपुर रेलवे स्टेशन से एक मील पूरब छतनेश्वर नामक एक ग्राम है। यह ग्राम प्रधानत चित्रगुप्तवंशीय कर्ण कायस्थों की आवास-भूमि है। इसी ग्राम में सन् १६०१ ई० में बाबू नन्दकिशोर लाल का जन्म एक प्रतिष्ठित कर्ण कायस्थ वंश में हुआ था। आपके पिता का नाम मुन्शी मनमोहन लाल है।

आपने बाल्यकाल की प्राथमिक शिक्षा ग्राम्य पाठशाला में समाप्त कर घर पर उर्दू, फारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। बाद अंग्रेजी भी पढ़ने लगे। सरकारी स्कूलों में नाम लिखाकर पढ़ना विशेष व्ययसाध्य होने के कारण आपके पढ़ने का क्रम बहुत दिनों तक इसी प्रकार जारी रहा।

निम्न श्रेणी की पुस्तकें समाप्त कर जब आप उच्च श्रेणी की पुस्तकें पढ़ने लगे तब आपके पिताजी ने आपको चाचा के साथ कर दिया। आपके चाचा उस समय मैट्रिक क्लास में पढ़ते थे। वे अपने अवकाश-काल में आपको पढ़ा दिया करते थे। आप कुछ महीनों तक उनके साथ रहकर पढ़ते रहे। परन्तु उनके कालेज चले जाने पर आपको पढ़ना छोड़ कर बैठ जाना पड़ा।

गाँव में व्यर्थ पड़े रहने से आपका जी ऊब गया। आप एक दिन भाग कर समस्तीपुर चले गये। वहाँ जाकर आप

श्री नंदकिशोर लाल 'किशोर'

किंग एड्वर्ड हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक से मिले। उन्होंने परीक्षा लेकर आपको मैट्रिकुलेशन क्लास में भर्त्ती कर लिया। सन् १९१७ ई० के मार्च मास में आपका नाम वहाँ लिखा गया और सन् १९१८ ई० में आप पास भी कर गये।

इसी समय कुछ पारिवारिक झंझट आ उपस्थित हुए; इस लिये आपको विवश हो उच्चशिक्षा-प्राप्ति का विचार त्याग संसार-क्षेत्र में प्रविष्ट होना पड़ा। आप उसी स्कूल में अध्यापक नियुक्त किये गये। सन् १९१९ में आप रानीगंज (बर्द्वान) मारवाड़ी सनातन विद्यालय में चले गये। अपनी योग्यता से थोड़े ही दिन में आप लोकप्रिय हो गये।

बंगाल में रहकर आपने बंगला-भाषा का अध्ययन किया। उक्त विद्यालय मे लालनजी नामक एक कवि भी अध्यापन-कार्य करते थे। उनकी संगति आपको विशेष प्रिय थी। यों तो बाल्यकाल ही से आपको हिन्दी से प्रेम था, परन्तु उक्त कविजी के संग रहकर वह प्रेम और भी दृढ़ हो गया। उसी समय से आप भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा कविताएँ प्रकाशनार्थ भेजने लगे।

आपकी रचनाओं से प्रसन्न होकर 'प्रेमपुष्प' नामक काव्यमय साप्ताहिक समाचारपत्र के सम्पादक ने आपको कलकत्ते बुला लिया। वहाँ पर आपने कुछ काल तक उक्त पत्र के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया। तत्पश्चात् अस्वस्थता के कारण आपको घर लौट आना पड़ा।

उस समय असहयोग का जमाना था। घर आकर आपने भी उक्त आन्दोलन में योगदान दिया। अपने ग्राम ही में आपने एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की और कुछ दिनों तक आप स्वयं भी उसमें अध्यापक रहे। तत्पश्चात् एक वर्ष के लिए आप हिन्दी के अध्यापक होकर समस्तीपुर राष्ट्रीय विद्यालय में चले गये।

पुनः अध्यापन कार्य्य छोड़ 'मिथिलामिहिर' के सहकारी सम्पादक होकर आप दरभंगा चले आये। इसी समय संवत् १९८१ वि० में आपने 'मैथिली' नामक अपनी स्वतन्त्र पत्रिका निकालना आरम्भ किया।

अपने अवकाशकाल में आप सदैव कानून पढ़ा करते थे। समय पाकर आप पटना हाईकोर्ट की मुख्तारकारी परीक्षा में सम्मिलित होकर उत्तीर्ण हुए और सन् १९२५ ई० की जुलाई से समस्तीपुर में मुख्तारकारी करते हैं।

आपकी बनाई हुई बहुतसी पुस्तकें हैं, जिनमें कुसुमकलिका, महात्मा विदुर नाटक, बालबोध रामायण, आरोग्य और उसके साधन तथा मुक्तिधारा आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं। आशा है वे निकट भविष्य में ही प्रकाशित हो जायँगी।

आपकी रचनाएँ चक्रवर्त्ती, विश्वमोहन, विश्व-विद्या-प्रचारक, प्रेमपुष्प, तरुणभारत, देश, नारद, मिथिलामिहिर और मैथिली आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी और

अब भी कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। आप बड़े ही नम्र और मिलनसार हैं। आपसे अभी बहुत कुछ आशा है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें।

अन्योक्तियाँ

"मधुप"

अली कली में फँसा प्रेम से मत्त बना है।
रस के वश में आज पड़ा सुधि भूल रहा है॥
रबि अस्ताचल चला भला अब भी तो चेतो।
अरे प्रिया को चूम घूम अपना पथ लेतो॥
पीछे अपने हाथ को, मल करके रह जायगा।
कमल-कली मुँद जायगी, निशि भर नीर बहायगा॥

"फूल"

मत इठला तू फूल ! न यह दिन सदा रहेगा।
नही सतत सौन्दर्य्य सुरभि से सजा रहेगा॥
कब तक तुझ पर मधुप मत्त हो भूल रहेगा।
कब तक शीतल मन्द पवन में झूल रहेगा॥
नही रहेगा चिह्न तक, वह दिन भी फिर आयगा।
तेरा यह अभिमान सब, चूर चूर हो जायगा॥

भारत-भूमि

जय जय भारत भूमि हमारी ॥
जय जग-वन्दित ज्ञान अखण्डित
सागर-सरित- लता-बन-मण्डित
सुषमा-सदन सुजन-अभिनन्दित
सुमिरत होत मोद मन भारी।
जय जय भारत भूमि हमारी ॥
सुरसरि पावनि कण्ठ-विहारिणि
तैंतिस कोटि सुवन-प्रतिपालिनि
आरति-हरणि जगत-हित-कारिणि
जय जग-मुकुट स्वर्ग-अनुहारी।
जय जय भारत भूमि हमारी ॥
जय अति सुन्दर सुषमा-कन्दर
कौशल-कला- वीरता-मन्दर
पूज्य परम गुण सकल धुरन्धर
सुरभित सुयश जगत विस्तारी।
जय जय भारत भूमि हमारी ॥
जय जग नागरि बुधि-बल-आगरि
प्रकृति मनोहर प्रेम-प्रजागरि
शोभा-सागर जगत-उजागरि
नन्दकिशोर प्राण बलिहारी।
जय जय भारत भूमि हमारी ॥

बसन्त-स्वागत

स्वागत ! स्वागत ! हे ऋतुराज ॥
ऋतु हिमन्त का अन्त कराकर
क्षिति में नूतन छवि छहरा कर
भर उमंग जग-जीव जगा कर
आओ ! आओ ! सहित समाज ।
स्वागत ! स्वागत ! हे ऋतुराज ॥
कुहु कुहु कोयल कुहुक सुनावें
कमल-कली पर अलि-कुल धावें
कलित ललित तरु-लता सुहावें
आओ ! साजो सुन्दर साज ।
स्वागत ! स्वागत ! हे ऋतुराज ॥
सुखद समीरण सुख सरसावें
कामिनि रभस-परस उमगावें
नन्दकिशोर बधावा गावें
हृदयासन पर करो विराज ।
स्वागत ! स्वागत ! हे ऋतुराज ॥

तदवीर करो

नहीं आलसी बन कर जग में दुःख भोगने आये हो ।
नर होकर कर्त्तव्य नरों का यहाँ पालने आये हो ॥

मुँह न फेर संसार-समर से जीवन-पथ पर अड़े रहो।
निर्भय बनो, विघ्न-बाधा में शूर वीर सम खड़े रहो॥
मन धीर धरो, सब पीर हरो।
मत नयन भरो, तदवीर करो॥
मत निराश हो, श्रम मत छोड़ो, रखो न पीछे पैर कभी।
साहसयुत उद्योग करोगे होगा जीवन सफल तभी॥
देखो अपनी ओर और फिर निज अतीत पर ध्यान धरो।
क्या का क्या हो गये अरे अब उठने का तो यत्न करो॥
मन धीर धरो, सब पीर हरो।
मत नयन भरो, तदवीर करो॥
उठो उठो अब कार्य्य करो मिल उन्नति-रवि को प्रकटाओ।
तुम पर ही अब आस लगी है निज पौरुष-बल दिखलाओ॥
इस प्रकार कर्त्तव्य पाल कर सुयशकिरण को फैलाओ।
सर्वमान्य गौरव स्वदेश का एक बार फिर दरशाओ॥
मन धीर धरो, सब पीर हरो।
मत नयन भरो, तदवीर करो॥

आँसू

राजमुकुट में मण्डित मणि की शोभा को हरने वाले।
कलित कामिनी के गलमुक्ता माला की छबि से आले॥
शिशिर कमल के दल पर जलकण से तुम अधिक छबीले हो।
नीरव नभ में तारे से भी बढ़कर सुघर सजीले हो॥

हे मेरी आँखों के आँसू निराधार के हे आधार !
उमड़े शोक-सिन्धु में बहती जीवन-नौका के पतवार ॥
पूर्व जन्म की कठिन कमाई दुखिया के दुर्लभ धन हो ।
मणि मुक्तादिक रत्नों से बढ़ एक एक जल के कण हो ॥
जग के तापों में जब तपकर उठता है अन्तर से दाह ।
बैठ बैठ एकांत जगह में भरता हूँ रह रहकर आह ॥
छिपे हुए कोने से आकर निज स्वरूप तुम दिखलाते ।
शान्तिसुधा की अविरल गति से अनुपम धारा बरसाते ॥
मेरे पापों के प्रायश्चित सत्पथ दिखलाने वाले ।
मुझे द्रवितकर भाव दया का उर में उपजाने वाले ॥
कितने ही भावों की स्मृति तुम हो मेरा जीवन-इतिहास ।
विषम समय में रहो जुड़ाते रक्षित रहकर मेरे पास ॥
हे आँखों में छिपने वाले आँखों में तुम छिपे रहो ।
समुचित अवसर पर ही निकलो बिना विचारे यों न बहो ॥
अपनी गौरवगरिमा देखो तजो न निज मर्य्यादा नेक ।
तुम्हें देखकर जगत नहीं कह बैठे अविचारी अविवेक ॥

आशे !

जग की ज्वाला में 'जब जलकर
लेता हूँ सुदीर्घ निःश्वास ।
करुण कहानी से भर जाता
मेरा जीवन का इतिहास ॥

उमड़ घुमड़ नैराश्य निशा मे
घोर घटा है छा जाती।
आँसू की अविरल धारायें
वर्षा सी है बरसाती॥
अन्धकारमय मन मन्दिर में
मच जाता है हाहाकार।
मर्मस्थल के अन्तस्तल में
उठता है दुख का हुङ्कार॥
विद्युत्-सी तब चमक चमक कर
फैलाती तुम हो आलोक।
मन्द मन्द मुसका मुसका कर
हर्ता हो तुम आकर शोक॥
होता अन्तर्ध्यान तुरत ही
मन-मन्दिर का तमविस्तार।
मधुर स्वरो में बज उठते हैं
मेरे हृत्तन्त्री के तार॥

कृष्ण-जन्म

(मैथिली)

राति भयावनि भादव मास।
घन सौं पूरि रहल आकाश॥

खन खन दामिनी दमकय जोर।
अविरल मेघ बहावथि नोर॥
विस्तृत कंसक राज अपार।
दुख सौं पीड़ित छल संसार॥
पृथ्वी त्राहि त्राहि कर शोर।
कंसक अत्याचार न थोर॥
मधुपुर में देवकी-वसुदेव।
कंसक बन्दीगृह काँ सेव॥
कोमल कर में लोहक बेरि।
परल सहथि दुख समयक फेरि॥
व्याकुल देवकी प्रसवकी पीर।
पृथ्वी पर छथि परलि अधीर॥
वसुदेवक चित चिन्ता घोर।
हायत कखन एहि विपतिक-भोर॥
हे हे प्रभो अनाथक नाथ।
अशरण शरण वीर ब्रजनाथ॥
अवइत छी हम अपनेक पास।
आब नई दुख सहि सक दास॥
भक्तक दीन रुदन सुनि कान।
द्रवित हृदय भेला भगवान॥
प्रगट कयल निज सुन्दर रूप।
जगमग जोति सुभेल अनूप॥

तड़ तड़ तड़ तड़ टूटल बेरि।
प्रमुदित मातु-पिता शिशु हेरि॥
बीतल दुःखक राति पहार।
सुखक उदय भेल हर्ष अपार॥
वृष्टि थमल भेल स्वच्छ अकास।
झिल मिल तारा कयल प्रकास॥
पुष्प-वृष्टि नभ भेल अथोर।
जयति जयति जय नन्दकिशोर॥

श्री श्यामधारी प्रसाद 'श्याम' 'साहित्य-भूषण'

श्यामधारी प्रसाद 'श्याम'

बाबू श्यामधारी प्रसाद का जन्म मुजफ्फरपुर जिले के भगवानपुर (बीरबल) नामक ग्राम के एक धनी परिवार में संवत् १९५८ वि० में हुआ था। आप श्रीवास्तव्य कायस्थ जाति के हैं। आपके पिताजी का नाम बाबू वासुदेव नारायण है। आपके दो भाई और हैं। आपके बड़े भाई बाबू रामधारी प्रसाद जी बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री हैं।

असहयोग-काल में ही आप तीनों भाइयों ने स्कूल तथा कालेज से अपना अपना सम्बन्ध त्यागा था। आपने बिहार विद्यापीठ से सन् १९२० ई० में प्रवेशिका परीक्षा में सफलता प्राप्त की थी। इसके बाद से आप घर ही रहते हैं। उसी समय मुजफ्फरपुर तिलक राष्ट्रीय विद्यालय से आप साहित्य-भूषण की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए थे।

आपका प्रथम विवाह डालटेनगंजनिवासी बाबू युगलकिशोर जी मुंसिफ की विदुषी कन्या श्रीमती शिवकुमारी देवी से हुआ था। आपकी उक्त पत्नी की लिखी हुई 'सावित्री' नामक एक पुस्तक हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय से प्रकाशित हुई है। वह बहुत थोड़े काल तक जीवित रही। परन्तु उनके कुछ ही दिनों के सहवास ने आपकी प्रतिभा

को और भी विकसित कर दिया। आपको केवल एक ही वर्ष उक्त पत्नी के साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

उक्त पत्नी के विछोह से आपके साहित्यिक जीवन पर बहुत कुछ बाधा पहुँची है। आपकी दूसरी शादी से एक पुत्र और एक पुत्री हैं। आप सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में 'विक्षिप्त' 'श्यामधन' 'श्याम' और 'श्रीश्याम' नाम से पद्य और 'मन्द-मलयानिल' नाम से गद्य लिखा करते हैं।

आप बिहार के एक उदीयमान कवि हैं। आपसे भविष्य में हिन्दी-सेवा की बहुत कुछ आशा है। ईश्वर आपको चिरायु करें, ताकि आप अधिकाधिक मातृभाषा का हित कर सकें।

कहो करोगे अब क्या श्याम ?

बालक था कुछ ख्याल नहीं था क्या सुख दुख कहलाता है।
धन किसको कहते हैं और नर कैसे उसको पाता है॥

सदा सुखी था बन्धनहीन।
नहीं बिलपता था बन दीन॥

अकस्मात् शैशव ने जब निज सारा साज समेट लिया।
यौवन ने सज्जित होकर फिर मुझ पर धावा बोल दिया॥

रहा न भोलेपन का नाम।
पड़ा दुसह झंझट से काम॥

तब जाना इस अगम सिन्धु में जीवन नाव चलाना है।
अपने ही हाथों के बल से खेकर पार लगाना है॥
एक रहेगी केवल साथ।
जिसका हूँ मैं जीवन नाथ॥

उसको लख कर मेरे मन में साहस का संचार हुआ।
नौका का अति क्षुद्र भवन ही मेरा स्वर्गागार हुआ॥
बढ़े हाथ में ले पतवार।
लक्ष्य वही—जाना उस पार॥

एक दूसरे को लखते थे गाते तथा बजाते थे।
हिल मिल कर बातें करते थे अधिकाधिक सुख पाते थे॥
न थी हृदय में धन की चाह।
था मैं मस्त न थी परवाह॥

ज्योंही मध्य उदधि में पहुँचे त्योंही घिर आया बादल।
आँधी चलने लगी ज़ोर से लगा उछलने वारिधि-जल॥
बैठा हृदय करों से थाम।
देख दैव की यह गति बाम॥

तट था दूर वायु प्रतिकूल दिग का ज्ञान न होता था।
निरख नीर नौका में आते हृदय धीरता खोता था॥
हुए दंपती संज्ञा हीन।
नौका हुई उदधि में लीन॥

कब तक रहा अचेत दशा में इसका है कुछ ज्ञान नही।
होश हुआ एकाकी था मैं जन्म संगिनी थी न कहीं॥

विहँस रहे थे रजनी काना।
व्याकुल प्रकृति हुई अब शाना॥
ढूँढ़ा बहुत नही पर पाया थका नयन से नीर बहा।
ताना के शब्दों में विधु ने हँस कर मानो यही कहा॥
"गयी तुम्हारी वह छबि धाम।
कहो करोगे अब क्या श्याम"॥

काल-रात्रि

न भूली जाती तेरी घात।
आह! उस दिन की आधी रात॥
खेल कूद में व्यस्त मस्त मैं बिता रहा था काल।
फँसा उधर अवलोक काल ने बिछा दिया था जाल॥
अचानक सर पर वज्र निपात।
आह! उस दिन की आधी रात॥
क्षुद्र खाट पर लेटी वह थी कोने में था दीप॥
हृदय करों से थामे मैं जा बैठा तुरत समीप॥
दशा लख हुआ अश्रु-कण-पात।
आह! उस दिन की आधी रात॥
मुझको सम्मुख देख मुदित हो परम प्रेम के साथ।
मन्द, किन्तु, अति मधुर स्वरों में कहा "बिदा दो नाथ"।
न आगे कही और कुछ बात।
आह! उस दिन की आधी रात॥

उसकी अन्तिम बातें सुन कर गिरी शीश पर गाज।
मुख से सहसा निकल पड़ा हा! मिटा आज सुख-साज॥
बाम विधि! यह कैसा उत्पात।
आह! उस दिन की आधी रात॥
जिसके कोमल कुसुम अंग को निरख स्नेह के साथ।
आनन्दित हो आलिङ्गन हित बढ़ते थे ये हाथ॥
वही जो अग्नि समर्पित गात।
आह! उस दिन की आधी रात॥
दुःख वेग जब थम न सका तब बहे नेत्र से नीर।
किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ और होकर कहा अधीर॥
न होगा सुख का अब सुप्रभात।
आह! उस दिन की आधी रात॥

हृदयधन से

देव! तुम्हारे दर्शन के हित यह परिश्रान्त पथिक आया।
बहुत दिनों का भूला भटका आज पता तेरा पाया॥
इन दुखिया आँखों की आशा अभिलाषा परिपूर्ण करो।
गुण अवगुण को भूल देव! मेरे भावों पर ध्यान धरो॥
एक बार निज रूप दिखाकर,
मेरी आँखें देना फोड़।
जिनसे निरखूँ तुझे उन्हें
लखने अन्य न देना छोड़॥

पूर्व स्मृति

पूर्व-स्मृति ! क्यों कोमल हृद् पर भीषण घातें करती हो।
मधुर विगत बातों को रह रह कानों में क्यों धरती हो॥
मंगलमयी प्रेम प्रतिमा के संग बिहरने की बातें।
बार बार मत याद करा तू प्राण हमारे अकुलाते॥
जगदीश्वर जब किसी जीव की
है प्रिय वस्तु हड़प लेता।
अच्छा होता आजीवन-हित
तुम्हें बिदा भी कर देता॥

करले अत्याचार

अरे खल ! करले अत्याचार।
चून चून कर साधुजनों से भरले कारागार।
योंही पाप कोष भरने दे।
निरपराध जन को मरने दे॥
तब देखेगा आँख खोल तू कैसी होती हार॥
शस्त्रहीन शासित पर गोली।
ओफ ! क्रूरता की हद होली॥
बाकी हो सोभी करले हम सहने को तैयार॥
यहाँ भेद का नाम नहीं है।
वहाँ न्याय से काम नहीं है॥

अनाचार परिपूरित नैया होगी कैसे पार ॥

अब नव जाग्रति ज्योति जगी है।
भेदभाव औ भीति भगी है ॥

धारा पलटी रोक धाम का श्रम तेरा बेकार ॥

तुम्हारी याद

श्याम जलद की गोदी में लख चपला का मृदु मुसकाना।
उसे निरख मोरों के दल का नाच नाच हिय सरसाना ॥

कभी चन्द्र का जलद जाल के बाहर आना छिप जाना।
मुक्त वदन लख निज प्राणेश्वर का चकोर का सुख पाना ॥

कभी तीव्र औ कभी मन्द गति से घन का जल वर्षाना।
भीम वज्र का गर्जन सुन नारी का पति से लिपटाना ॥

ये सब उद्दीपन सामग्री किसका चित्र नहीं हरती।
किसकी आँखें नहीं जुड़ाती किसको मस्त नहीं करती ॥

किन्तु अभागा मुझसा जिसने निज सर्वस्व गँवाया है।
प्यारी ! दुख को छोड़ जगत में क्या उसने सुख पाया है ॥

इन शोभा के साजों को लख सुध बुध भूली जाती है।
विकल हृदय हो रो देता है याद तुम्हारी आती है ॥

विपंची से

विपंची ! रस में विष मत घोल।
हृदय-हीन जग सम्मुख अपने मन की बात न खोल॥
सुन कर तेरी व्यथा मूढ़ नर करते हैं परिहास।
कौन सान्त्वना देगा तुमको है झूठी यह आस॥
छोड़ सभी ममता सुरलय की छिन्न भिन्न कर तार।
व्यथित हृदय का मूक भाव से करो व्यक्त उद्गार॥

विलंब से

रो रो कर जब इन आँखों ने सारी शक्ति गँवा डाली।
रक्त मांस भी सूख गया जब रही शेष हड्डी खाली॥
घोर निराशा से लड़कर जब आशा तरु का नाश हुआ।
सांसारिक कोमल बंधन मेरे हित जब यम पाश हुआ॥
तब तुम हँस संवाद भेजते आकर हृदय लगाऊँगा।
अरे छली ! भरमाकर मुझको अब कहते हो आऊँगा॥

श्री ठाकुर मंगलप्रसाद सिंह

गोविन्दलाल झंगर 'आर्य'

पं० गोविन्दलाल झंगर का जन्म सं० १९५८ वि० में हुआ था। आप गयावाल ब्राह्मण हैं। आपका निवासस्थान गया शहर के कृष्णद्वारका नामक मुहल्ले में है। आपके पिता का नाम पं० बालाजी झंगर है। हैदराबाद दक्खिन के कई राजा आपके यजमान हैं। इन्ही राजे-महाराजो से वार्षिक वृत्ति के रूप में आपको पूरी आमदनी हो जाती है।

आपके तीन भाई और हैं, जिनमें दो बड़े और एक छोटे हैं। छोटी अवस्था में ही आपकी माता जी का स्वर्गवास हो गया था। तब से आपके पिता जी ने ही आपको पाल-पोस कर बड़ा किया।

सात वर्ष की अवस्था में घर ही पर आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। परन्तु शिक्षक की मृत्यु हो जाने के कारण आपकी पढ़ाई एक प्रकार से बन्द हो गई। फिर भी आपने अपने उद्योग और अध्यवसाय से थोड़ा बहुत पढ़ना लिखना सीख लिया। आपको समाचारपत्र पढ़ने की चाट थी।

बहुत से पत्र के आप ग्राहक और कुछ के संवाददाता हो गये, जिससे पत्र-पत्रिका पढ़ने में सुविधा हो गयी। पत्र-पत्रिका के पढ़ने से ही आप में हिन्दी-प्रेम का सूत्र-पात हुआ। फिर अंग्रेजी पढ़ने की उत्कट इच्छा से आप स्थानीय स्कूल

में भर्ती हो गये। परन्तु किसी कारणवश आपने कुछ ही दिनों में स्कूल छोड़ दिया। घर में ही आपने अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत का थोड़ा बहुत अध्ययन किया।

सन् १९२१ ई० में गया के कई साहित्यिक महानुभावों के उद्योग से वहाँ एक 'साहित्य-सभा' की स्थापना हुई। वहाँ स्थानीय कवियों का सदैव समागम हुआ करता था। वहाँ कवियों के सत्संग से आपमें काव्यानुराग का बीज अंकुरित हुआ। थोड़े ही समय के परिश्रम से आप अच्छी कविता भी करने लगे।

उसी समय उक्त सभा से 'साहित्यमाला' नामक एक छोटी मासिकपत्रिका निकलने लगी। उसी में आपने पहले पहल लिखना प्रारम्भ किया। सुप्रसिद्ध कवि पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी' से आपका साथ हुआ। उनके सत्संग से आपकी कविता में विशेष उन्नति हुई। उन्ही से आपने बंगला भाषा का ज्ञान भी प्राप्त किया। यों तो थोड़ा थोड़ा बंगला आप पहले ही से जानते थे। ईश्वर आपको शक्ति दें कि आप अपने उद्योग और अध्यवसाय से हिन्दी की अधिकाधिक सेवा करें।

अभिसारिका के प्रति

कहाँ चली जाती है हाथों में यह मृन्मय दीप लिये।
किसे ढूँढ़ने निकली है तू यह अद्भुत शृङ्गार किये॥

किस अजान से नाता जोड़ा किसपर किया हृदय विन्यस्त।
इस अँधियाली रजनी में जब सोया है संसार समस्त॥

काले काले कुन्तल तेरे हृदय-हार-सा बना हुआ।
कलित केली करती है कैसी कुच कोरों पर घना हुआ॥
मधुर हास्य की रेखाओं से उद्भासित करती जाती।
विमल वीथि पर मंथर गति से धीरे धीरे इठलाती॥

इस कुटिया को परित्याग कर किसे आज अपनायेगी।
किसके सुर मे कलित कंठ को आज मिला तू गायेगी?

× × × ×

किसके लिये बढ़ेगा तेरा मृदु मृणाल सा सुन्दर हाथ।
मुझे बता दे कौन वियोगी को करने तू चली सनाथ॥

अवरुद्ध द्वार

बढ़ो बढ़ो वह द्वार खोल दो बहुत दिनों से है वह बंद।
बहुत बार बाहर ही उसके रह कर आह मचाया द्वंद॥
किन कठोर हाथों ने इसमें जड़ कर छोड़ा यह ताला।
खोल इसे दो देर न होवे रहने दो न इसे डाला॥

तड़प उठेगा विश्व-हृदय फिर भड़क उठेगी आग अचानक।
हलचल सी मच जावेगी क्यों व्यर्थ दिलाते क्रोध भयानक॥
खुलने दो घाटा इसमें क्या अनिल प्रकंपन लगने दो।
अंधकार मिटने दो इसमें दीप जाल फिर जगने दो॥

क्षुब्ध विश्व के हाथों से आशीष तुम्हें मिल जायेगा।
पुनः तुम्हारे एक इशारे पर जग चक्कर खाजायेगा॥

छलिया

चली गयी क्यों बिहँस बतादे इस कुटिया से उस दिन आह।
तेरे पीछे क्या बीतेगा इसकी तनिक न की परवाह॥
आँख मिचौनी के मिस भागी यह तेरी कैसी है चाल।
भेंट चढ़ाने वाला ही था आशा की यह सुन्दर माल॥

निष्ठुर है निर्दय भी है तू तेरा कैसा व्यवहार।
केवल छू ही लेता इसको कर लेता इसको कुछ प्यार॥
धोखा देकर निकल भागना यह तूने कब से जाना।
छल कर के छलिया भागा जब, गया न तेरा वच माना॥

सून सान रजनी थी कैसी अनिल प्रकम्पन होता था।
हृदय-भार हलका करने को दुखिया दुख से रोता था॥
मंत्रमुग्ध-सा विश्व खड़ा था जादू की छड़ियो माता।
चलो चलो हो गया समय है दूर छिपा कोई गाता॥

वीणा वायु बजा देती थी थपकी देती थी नदियाँ।
तेरी आशा में ना जाने बीत गयी कितनी सदियाँ॥

× × ×

अश्रु-प्रपूरित इन आँखों को जी भर कर फिर हँसने दे।
उजड़े हुए हृदय को छलिया एक बार फिर बसने दे॥

कवि

गूँथ रहे हो भावों की लड़िया यह कब से हँस हँस कर ?
निर्निमेष नयनों से किसको निरख रहे हो तुम जी भर ?
किस के गुण पर मुग्ध हुए हो किसका गाते हो तुम गान ?
किस अव्यक्त अजान देश में गुँजा रहे हो अपनी तान ?

अवगुंठन को खोल खोल कर झाँक रहे हो किसका रूप ?
अलसानी आँखों की मदिरा किसकी पीकर आज अनूप ?
थिरक रहे हो बार बार तुम रख कर सब से यह अज्ञात ।
किस वियोगिनी की आँखो में बसकर करते अश्रू पात ?

किसके सुमधुर अधर लाल का करते हो सुन्दर रस पान ?
कौन षोड़शी मानवती का तोड़ रहे हो रुचिकर मान ?
किसकी कृश कटिको लख कर तुम भगा रहे हो यह मृगराज ?
वार रहे हो इस कुंजर को किस की मंथर गति पर आज ?

किस के कानों से सट सट कर प्रेम-मंत्र सिखलाते हो ?
किसके कंबु कंठ से लगकर जी की जलन मिटाते हो ?

पतंग

इसे न छेड़ो रंचमात्र भी वायु-विकंपन है अनुकूल ।
उड़ने दो सुन्दर पतंग यह इसमें करो न अब तुम भूल ॥

खींच रहे क्यों बढ़कर इसका इतनी जल्दी हे गुणवान?
ढीले ही रहने दो गुण को उसे न लेना अब तुम तान॥

टूट जायगा क्षणभर मे ही बिगड़ जायगा सारा खेल।
छूट जायगा कुसुम-करों से देगा उसको वायु ढकेल॥

बिहार के नवयुवक हृदय
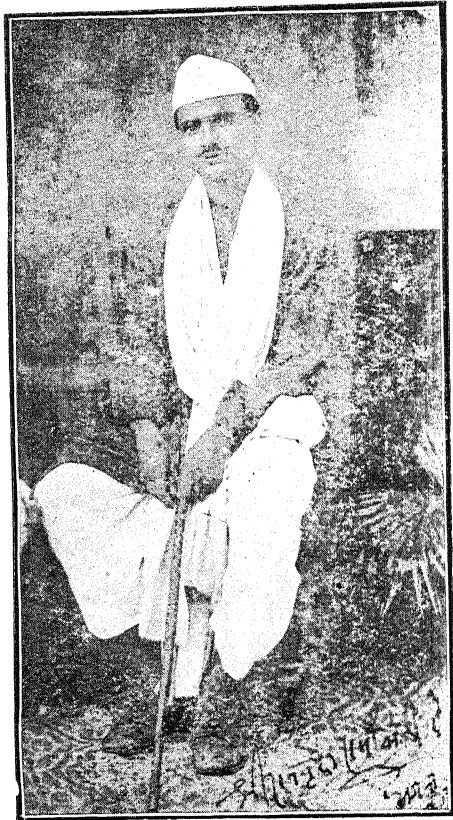
रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'

रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी बिहार के कर्मवीर नवयुवक साहित्यिकों में हैं। आप अपनी धुन के पक्के हैं। जिस काम में लग जाते हैं, उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। आपसे हिन्दी को बहुत बड़ी आशा है।

आपकी अवस्था इस समय लगभग २६ वर्ष की है। आपका घर मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुरी (पोस्ट रूनी-सैदपुर) नामक ग्राम में है। आपके पिता का नाम बाबू फुलवन्त सिंह था। आप भूमिहार-ब्राह्मण हैं। जब आप ४ वर्ष के थे तब माता का और ६ वर्ष की अवस्था में पिता का भी स्वर्गवास हो गया।

बचपन में आप बड़े नटखट थे। मारपीट करना आपका नित्य का काम था। पिता की मृत्यु के बाद आप अपने मामा के यहाँ चले आये। वहीं आपके मामा बाबू द्वारका सिंह ने आपकी शिक्षा का प्रबन्ध किया और अन्त तक वे ही आपको पढ़ाते रहे। अब भी वे आपको पुत्रवत् मानते और जानते हैं।

घर पर कुछ दिन पढ़ने के बाद आपका नाम एक पाठशाला में लिखा गया। एक वर्ष में आपने लोअर पास कर लिया। इसके बाद दो वर्ष तक आप रामायण और उर्दू पढ़ते

रहे। तत्पश्चात् आपके बहनोई बाबू प्रदीप नारायण ठाकुर आपको अंग्रेजी पढ़ने के लिये अपने साथ ले गये।

पढ़ने में आप बड़े तेज थे। सर्वदा प्रथम ही होते थे। परन्तु स्कूल में आप हाजिर बहुत कम रहा करते थे। आपका अधिक समय समाचारपत्रों तथा बाहरी पुस्तकों के पढ़ने में व्यतीत होता था। समाचारपत्रों में 'प्रताप' और 'विद्यार्थी' तथा पुस्तकों में रामायण और भारत-भारती आपको विशेष प्रिय थी। कोर्स की किताबें आप बहुत कम पढ़ते थे। इसके लिये कई बार मास्टर से पीटे भी जाते थे, फिर भी आदत से लाचार थे।

तीन वर्ष में मिडिल पास कर आप मुजफ्फरपुर आये। यहाँ भूमिहार ब्राह्मण कॉलेजियट स्कूल मे आपका नाम लिखा गया। यहाँ पर जब आप आठवी कक्षा में थे तब मध्यमा (विशारद) परीक्षा पास की। इसी से आपकी हिन्दी की योग्यता का पता चल जाता है। मैट्रिक क्लास में आने पर आपने असहयोग के नियमानुसार स्कूल छोड़ दिया।

बचपन ही से आपको कविता करने का शौक था। पहले पहल अपने मास्टर, गाँव के स्कूल, तालाब आदि पर कविता करते थे। मिडिल स्कूल मे आने पर स्वागत-गीत आदि भी बनाने लगे। जब मुजफ्फरपुर आये तो बाबू ललितकुमार सिंह 'नटवर' आदि की देखा-देखी कविता बनाने और समाचारपत्रों में देने लगे। आपकी पहिली कविता "साँवरे, पुनः

तुम्हें यदि पाऊँ" 'बीसवी सदी के श्रीकृष्ण' शीर्षक से 'प्रताप' में छपी थी। 'प्रताप' से वह कविता उस समय दर्जनों पत्रों में उद्धृत हुई थी, यहाँ तक कि हाल ही मे एक सज्जन ने वह कविता अपने नाम से 'महारथी' में छपवाई थी जिसका भंडाफोड़ 'मतवाला' में किया गया था। एक बालक-कवि के लिये यह कम गौरव की बात नहीं है। फिर तो आपकी कविताएँ सामयिक पत्रों में खूब ही छपने लगी।

असहयोग करके आपने कुछ दिनों तक प्रचारकार्य किया, फिर 'तरुण-भारत' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। बँगला आप पहले ही से कुछ कुछ जानते थे, यहाँ गुजराती भी सीखी। उस समय आपकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। 'तरुण-भारत' के बाद आपने 'किसान-मित्र' का सम्पादन-भार लिया। किसान-मित्र मे रहते समय ही आप-को 'काशश्वास' को बीमारी हुई। इस बीमारी से आप मरते मरते बचे।

अच्छे होने पर बैठना बेकार समझ बाबू शिवपूजन सहाय जी की सहायता से पटने के 'गोलमाल' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। इसके बाद आप हिन्दी-पुस्तक-भण्डार के साहित्यिक विभाग में काम करने लगे। यहीं से आपने सुप्रसिद्ध बालकोपयोगी पत्र 'बालक' का निकालना प्रारम्भ किया। इस दो वर्ष के बालक-सम्पादन-काल में आपने कई एक बालोपयोगी तथा साहित्यिक पुस्तकें लिखी हैं। आपकी

पुस्तकों में विद्यापति की पदावली, बिहारी सतसई की टीका, बगुला भगत, सियार पाँड़े, बिलाई मौसी, तोता मैना, शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह, विद्यापति, बाबू लंगट सिंह आदि विशेष प्रसिद्ध है।

इस समय आपने कविता करना प्रायः छोड-सा दिया है। फिर भी प्रान्तीय सम्मेलन के अवसर पर लोगों को केवल हँसाने के लिये—नहीं लोटपोट करने के लिये—अभी भी हास्य-रस की कविताएँ करते हैं। आपका हँसना और हँसाना एक खास काम है। आप कहा करते है—

"प्रभुवर, दो बरदान, यही मैं लुक्कड होऊँ।
हँसू-हँसाऊँ, कवि न कहाऊँ, तुक्कड़ होऊँ॥"

दूरस्थित दीपक के प्रति

अपनी झिलमिल झलक दिखाकर,
अब न अधिक भटकाना दीपक।
आ पहुँचे आ पहुँचे कर मत,
खन्दक मे अटकाना दीपक॥
अगम मार्ग, साथी से सूना,
नाम ग्राम का भूला दीपक।
व्यथित थकित हम भूल रहे हैं,
भ्रमवश आशा-भूला दीपक॥

द्रुत गति से है पैर बढ़ाते,
तुझे शीघ्र पाने को दीपक।
अधिक अधिक भगता जाता तू,
हमको कलपाने को दीपक॥
आँखें कभी चौंधिया देता,
कभी साफ बुझ जाता दीपक।
"प्रेत-दीप" का भ्रम उपजाता,
भेद-गाँठ उलझाता दीपक॥
सारी रात भटकते बीती,
पड़े शिथिल सारे अँग दीपक।
ऊषा हुई दया कर तज अब,
भूल-भुलैया का ढँग दीपक॥
देख, दिवाकर शीघ्र उगेंगे,
पावेंगे निज-पथ हम दीपक।
अपयश-वश तव ज्योति जगमगी,
होगी क्षीण-क्षीणतम दीपक॥

सन्ध्या

(बसन्त-सन्ध्या)

सांध्य पवन सनन्न् सनन्न् कर सुखद बह रही।
चिड़िया चहक चहक कर चित का चैन कह रही॥

चटक चटक कर कली, हृदय को चटकाती है।
भ्रमरावलि भन भन कर मन को भटकाती है॥
ऋतु बसन्त, सन्ध्या समय, सुन्दर उपवन कुञ्ज।
अपना प्यारा पास में, यही—स्वर्ग-सुख-पुञ्ज॥

(ग्रीष्म-सन्ध्या)

तपन-देव! वन्दे—मत फिर आना इस भू में।
आह! जगत को किया अधमरा तू ने लू में॥
सन्ध्यादेवि! आ, हृदयासन पर आ जा तू।
मृतवत् जग पर सुधा-बिन्दु आ बरसा जा तू॥
निज प्रिय सखि यामिनि-सुन्दरी को भी लाना साथ मे।
उड़गण-आभूषण गात मे चन्द्र चन्द्रिका माथ में॥

(वर्षा-सन्ध्या)

काले बादल बने सप्तरङ्गी रवि-कर से।
घर घर से निकले धूएँ धूमिल जलधर से॥
हल काँधे पर धरे, कृषक गाते घर आते।
कृषक-पुत्र बैलों के हित हैं नाँद चलाते॥
पनघट पर पनिहारिनों की जमघट है दीखती।
कवि-बुद्धि निरख उनकी अदा, काव्य कल्पना सीखती॥

(शरद्-सन्ध्या)

शरद सूर्य निज तीखे कर से जर्जर तन—
अन्त चल बसा, हिमकर का अब हुआ पदार्पण ॥
जग को सुधा-सरोवर मे इसने नहलाया।
ऊब-डूब दो घूँटन पीना किसको भाया ॥
घन के घूँघट में छिप रही, अब तक थी जो चाँदनी।
वह मुस्काती रोती खड़ी, रसिक-हृदय-उन्मादिनी ॥

(हेमन्त-सन्ध्या)

पके धान पर सांध्य किरण ने यों छवि छाई।
धानी साड़ी पर ज्यों ओढ़ी लाल रजाई ॥
उधर सूर्य निज किरण-जाल को सिमट सिधारे।
इधर कृषक निज हँसिया ले ले स्वगृह पधारे ॥
घर घूर जला, परिवारयुत, बैठे गपशप कर रहे ।
हेमन्त-शीत के दाय को, सङ्गशक्ति से हर रहे ॥

(शिशिर-सन्ध्या)

पत्रहीन तरु-शिखर पर चढ़ी किरण बालिका।
रक्त-रञ्जिता, मानो, खड़ी शतभुती कालिका ॥
थमी पश्चिमी पवन, पथिक ने डेरे डाले।
लगे बरसने (कृषक भाग्य पर ?) ओले-पाले ॥

"दुई" दैव ने दूर की, नही 'रुई' का नाम।
"मुई" बनी विधवा निरख-"हुई" शिशिर की शाम॥

सौंदर्य !

प्रभो ! क्यों किया क्षणिक सौंदर्य ?
खिला था उस उपवन मे कैसा सुन्दर फूल !
मलय-पवन थी प्रेम-मत्त हो उसको झूला झुला रही।
भ्रमर-बधू उस पर हो न्यौछावर, निज प्रियतम भुला रही।
सुनाती उसकी 'गुन-गुन' गान,
मत्त थी बनी, लगाती तान।

और—

रङ्ग-बिरङ्गी साड़ी पहने—
प्यारी तितली अपने पंखो के पंखे थी डुला रही॥
किन्तु दो घडी बाद उसे जाकर अवलोका—
खोकर सुरभि, स्वरूप सुमन अब चाट रहा है धूल !!
प्रभो ! क्यों किया क्षणिक सौंदर्य ?
'चंचला' 'चपला' जो चाहो धर दो उसका नाम।
सघन श्याम गगनांगन मे वह करती कैसी क्रीडा ?
दौड़ती, लुकती-छिपती, प्रगटित होती
भोली बालिका-सी
आँख-मिचौनी खेल रही है लाती तनक न व्रीडा॥

काले बादल जिसके हास्य-स्पर्श से, स्वर्ण बदन होते।
भादो की भयावनी रजनी के युग सम वे पल
पलभर के हित, शरद्-पूर्णिमा से भी बढ़ कर,
रसिक दर्शक के मन खोते॥
किन्तु वह 'क्षण-प्रभा' है क्षण में अन्तर्द्धान हो गई,
मटिया मेट हो गये हा हा! सारे दृश्य ललाम
नयनाभिराम॥
प्रभो! क्यो किया क्षणिक सौंदर्य?

चिते!

चिते! क्यों धक धक जलती है?
हो किस पर यो क्रुद्ध निष्ठुरे! आग उगलती है?

(१)

नव कलिका-सी कोमल औ सुकुमारी।
प्रेम-पुष्प-पंखड़ी, शील की क्यारी॥
अभी थी भोली भाली—
देख न पाया, कुछ दुनिया का रंग।
यौवन-जनित-उमंग, प्रेम का ढंग॥
किसको कहते है 'सुहाग की रात,' बनाती है पागल कैसे—
'काम-करताली'॥
अचानक निष्ठुर विधि ने—

पोंछ दिया उसका लह लह करता सीमन्त-सिंदूर।
हा! हा! हो गये सब-वांछायें,
सुन्दरता, यौवन, मन-चकनाचूर॥
प्रियतम के ही साथ साथ में—
क्यों न उसे तू डायन! आकर शीघ्र निगलती है।
चिते! क्यों धक धक करती है?

(२)

देख! वह छोटा सा है, कैसा प्यारा बच्चा।
कोमल जैसा मोम, और क्षणभंगुर जैसा
घड़ा हो मिट्टी का कच्चा॥
माँ मर चुकी थी, पिता ही माता था।
दुनिया में बस एक इसीसे इसका सारा नाता था॥
किन्तु, क्या कर बैठी तू—
उसके एक मात्र आधार, पिता को भी उदरस्थ किया।
आह! क्रूरता की अवतार, पसीजा तेरा नही हिया॥
यह तेरी दुर्नीति कॉंट सी मुझको खलती है।
चिते! क्यो धक धक जलती है?

(३)

रो रही बुढ़िया माता, पीट पीट छाती।
वृद्ध पिता की करुणा वाणी, आर्त्त-गिरा
सुनी नही जाती॥
जितने हैं आत्मीय खड़े सबकी आँखों से

फूट रही है आह ! अश्रुधारा।
चारो ओर उमड़ते हुए शोक सागर का
नही दीख पड़ता है कही किनारा ॥
निर्मम, तू फिर भी
अपनी धुन मे मस्त चिलकती है और बलती है।
चिते ! क्यों धक धक जलती है ?

(४)

जिसके क्रूर कर्म के भारी बोझ से
पृथ्वी दबी चली जाती।
जिसकी रोदन-ध्वनि सुन, मारे क्षोभ के,
गगन की फटती है छाती ॥
जिसके निष्ठुर अट्टहास के नाद से
बहती गंगा भी थर्रा उठती है।
जिसका, दीर्घोच्छ्वास परस कर
शीतल मन्द सुगन्ध पवन बन कर विषाक्त
जग को व्याकुल करती है।
उन्हें ही अपनी अग्नि-गोद में—
लेकर क्यों न अग्नि जा ! जग में शान्ति बितरती है
मत्त हो धू धू करती है !!
चिते ! क्यों धक धक जलती है ?
हो किस पर यों क्रुद्ध, निष्ठुरे ! आग उगलती है ?

बीसवीं सदी के श्रीकृष्ण

साँवरे पुनः तुम्हें यदि पाऊँ
पूरा जेन्टिलमैन बनाकर सारी कसक मिटाऊँ ॥ १ ॥
कटि काछनी केसरिया जामा हीरा हार हटाऊँ ।
बूट सूट नेकटाई ऊपर चश्मा चेन चढ़ाऊँ ॥ २ ॥
प्यारी वंशी छीन अधर पर चुरुट सिगार जलाऊँ ।
कलंगी मुकुट गोपिका मोहन फेंक हैट पहनाऊँ ॥ ३ ॥
लकुट तोड़ दे केन लचीला ठुमुक चाल चलवाऊँ ।
गीता के वर वैन भुलाकर गिटपिट बोल बुलाऊँ ॥ ४ ॥
दधि माखन मिश्री का भाजन यमुना में भसिआऊँ ।
लेमनेड सोडा विस्की प्याऊँ बिसकुट केक खिलाऊँ ॥५॥
अबला गोपी जानि सतायो पर अब कहत डराऊँ ।
सबला लेडी साथ करूँ मै सारे छक्का छुडाऊँ ॥ ६ ॥
रंज न हो जैसा दे रखा वैसा साज सजाऊँ ।
टाँग पसार स्वर्ग मे सोते उसका मजा चखाऊँ ॥ ७ ॥

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री जयनारायण झा 'विनीत' विद्यालंकार, विशारद

जयनारायण झा 'विनीत'

पं० जयनारायण झा 'विनीत' बिहार के एक होनहार और प्रतिभाशाली कवियों में हैं। आप निर्धन हैं। आरम्भ ही से निर्धनता आपके उन्नति-पथ में बाधक होती आ रही है। यही कारण है कि आप अभी तक पूरी ख्याति लाभ नहीं कर सके हैं।

आपका जन्म दरभंगा जिले के बहेड़ा थाने के अन्तर्गत 'बैगनी-नवादा' नामक ग्राम मे सं० १९५९ वि० के आश्विन मास में हुआ था। आप मैथिल ब्राह्मण हैं। आपके पिताजी का नाम पं० रघुनन्दन झा था। आपके एक भाई और हैं। उनका नाम पं० एकनारायण झा है। इन्हें भी हिन्दी से प्रेम है। ये आपसे छोटे हैं और अभी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

आठ वर्ष की अवस्था में आप पढ़ने के लिये ग्राम की पाठशाला में बैठाये गये। यहाँ से आपने छात्रवृत्ति लेकर लोअर परीक्षा पास की। इसके बाद आप अपने पिताजी के साथ पढ़ने के लिये दरभंगा चले गये। आपके पिताजी वहीं एक अपर प्राइमरी पाठशाला के प्रधानाध्यापक थे। दुर्भाग्य-वश एक ही वर्ष के बाद आपके पिताजी का देहान्त हो गया। इसलिए आपकी पढ़ाई में भी विघ्न उपस्थित हुआ, पर अपनी माताजी के उद्योग से आपके पढ़ने की सुव्यवस्था हो गई।

दो वर्ष पश्चात् आपकी एकमात्र शुभचिन्तिका माता जी की भी मृत्यु हो गई ! अब आप अपने चाचा पं० दुखहरण झा के आश्रय में रहने लगे।

माताजी की मृत्यु से आपकी शिक्षा लगभग दो वर्ष के लिये बन्द हो गई। परन्तु विद्या की ओर विशेष अभिरुचि रहने के कारण आप लहेरियासराय जाकर प्राइवेट ट्यूशन द्वारा अपने पढ़ने का खर्च निकाल कर सरस्वती हाई स्कूल में पढ़ने लगे। इस प्रकार अपने उद्योग से चार पाँच वर्ष तक आप उक्त स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते रहे। इसी बीच जब आप हाई स्कूल की दशम कक्षा में थे तब असहयोग का युग आरम्भ हुआ और आपने स्कूल से सम्बन्ध तोड़ दिया।

कुछ काल पश्चात् उक्त स्कूल भी राष्ट्रीय हो गया और पुनः आप उसमें पढ़ने लगे। इसी समय आपने पिंगल और अलंकार का विशेष रूप से अध्ययन किया। बालकपन ही से हिन्दी-साहित्य, विशेषतया पद्य, की ओर आपका विशेष झुकाव था। प्रवेशिका कक्षा मे ही आपने 'भारत-दुर्दशा, नाटक के आधार पर एक 'दुर्दैव-दमन' नामक नाटक लिखा। इसी समय 'पूर्णिमा' नाम्नी एक छोटी पद्य-पुस्तिका भी आप-ने लिखी। पर दुख है कि असावधानी से उक्त दोनों पुस्तकें खो गईं।

प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण होकर आप पटना राष्ट्रीय महा-विद्यालय मे पढ़ने चले गये। वहाँ आपने विशेषतया राजनीति,

अर्थशास्त्र और इतिहास का अध्ययन किया। आपने राज-नीति की तीनों स्नातक परीक्षाएँ पास कर 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की। इसी बीच आपने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा पास कर 'विशारद' की उपाधि प्राप्त कर ली।

महाविद्यालय के अध्ययनकाल में आपको बड़े बड़े लोगों का सत्संग हुआ। माननीय श्रीरामदासजी गौड़, एम० ए० का शिष्य रहकर आपने बहुत लाभ उठाया। सारांश यह कि महाविद्यालय ही में आपके जीवन का पूर्ण विकास हुआ। यहाँ पद्यरचना की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति झुकी। आपकी रचनायें समय समय पर 'देश', 'महावीर', 'माधुरी', 'चाँद,' 'वीरसन्देश,' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं।

आजकल आप समस्तीपुर राष्ट्रीय विद्यालय में अध्यापन-कार्य करते हैं। आप सार्वजनिक कार्य्यों में विशेष भाग लेते हैं। आपके विचार से एक ऐसे 'संयमी अविवाहित नवयुवक दल' की जरूरत है जो आदर्श ब्राह्मण चरित्र का पालन कर क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करे और अपने आपको समाज, देश और संसार के मंगल के लिये न्यौछावर कर दे। इसी ध्येय को मन में रख कर अभी तक आप विवाह-बंधन से मुक्त हैं।

सार्वजनिक कार्य्यों में भाग लेते हुए भी आप साहित्य-सेवा यथासाध्य करते ही रहते हैं। आपकी बनायी अभी तक

सात आठ पद्य की पुस्तकें हैं। जिनमें 'घननादबध,' 'दूत श्रीकृष्ण', 'वीर-विभूति' और 'महिला-दर्पण' सम्पूर्ण तैयार हो चुका है। ये पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित होंगी। 'कुज' और 'माला' नाम से आपके दो पद्य-संग्रह हिन्दी-साहित्य-कार्यालय, लहेरियासराय से प्रकाशित हुए हैं। आप हिन्दी-संसार के एक छिपे रत्न हैं। ईश्वर आपको दीर्घायु करें।

दूत श्रीकृष्ण

नृपाल शोच आप चित्त में न अल्प लाइये।
सहर्ष दुन्दुभी सदर्प युद्ध की बजाइये॥
कराल काल वा त्रिलोक पक्ष ले जुटे भले।
तथापि एक भी चले न दाल शत्रु की गले॥
तजे कृशानु ताप सूर्य शैत्य ले उगे भले।
हिमांशु उष्म हो अदह्य अम्बु से तथा जले॥
उड़े पहाड़ फूक से मृगेन्द्र को मृगा दले।
तथापि कर्ण लक्ष से न अन्तलो कभी टले॥
भली लगे हमें न आत्म-शौर्य की वृथा कथा।
स्वधर्म वीर पालते न डींग मारते यथा—
मृगेन्द्र गर्जना करे न दन्ति दर्प से जगा।
विदारता सगर्व शीश वीर रौद्र में पगा॥
कभी कहीं न भूप! कर्ण भूल भेद मानता।
स्वबाक्य का स्वप्राण से विशेष मूल्य जानता॥

तरे समुद्र में शिला उड़े अनन्त में धरा।
तथापि भेद नेम में कर्ण के घुसे जरा॥
सदैव भूप! कर्ण आपके निमित्त अस्तु है।
समृद्धि स्नेह गेह देह प्राण कौन वस्तु है॥
कहे विशेष और क्या ध्रुवेव आप मानिये।
करे न मूल्य मोक्ष का कदापि आपके लिये॥
अमोघ अस्त्र शस्त्र वस्त्र भूप प्राप्त है हमें।
सभी जिन्हें अभेद्य उग्र जानते त्रिलोक में॥
सजीव लौट जायँगे न पांडवादि युद्ध से।
बचायँगे न शक्र चक्रपाणि कर्ण क्रुद्ध से॥

× × × ×

यदपि है बहु कष्ट मिला इन्हें, तदपि बारिज बृत्ति बनी रही।
सुतरु सा फल छाँह प्रदान से, सुखित कौरव को करते रहे॥
हम सभी अब यत्न करें यही, मिल सके इनका निजभाग, ये—
दुखित हों नित यों गृह मान के, अब नहीं वन ही वनहीन सा॥
लस रहे सर हेम किरीट हों, विबुध से बुध से बहु सेव्य हों।
रुचिरता चिर ताप विनाशिनी, नित रसातरसा सुर को लसे॥
परम हीन महीन बनी रहे, अनय का न यकायक हाथ हो।
विनय पै नय पै नियमादि पै, उचित है चित में हम ठान लें॥
अजय पांडव कौरव शक्ति को, विलखते लखते बुध मित्र हैं।
रवि समान शमाँ न चिराग़ की, निरखते रखते नर दृष्टि जो॥

उचित है चित तोष धरें ज़रा, हम नहीं मनहीन करें अभी।
यदपि है खलती खलतीव्रता, पर परन्तप आप पयोधि हों॥
पतित घातक घात करे नहीं, स्वजन का जब दारुण दुःख से।
तब मिले इनको सुख क्यों भला, मरण में रण में निज बंधु को॥
स्वजन को हतना झट सोचना, इन नरोत्तम को न विधेय है।
कमल से मल से परिपूर्ण हो, पवन का चलना अति हेय है॥
कुजन का जनकादि स्वअंग भी, विलगता लगता जब पाप में।
कपट के पट के बल और को वह सता हँसता जब आप है॥
मलय का लय कारण हों भले, कल कुठार कृशानु किरात, पै—
वह स-वास स-द्रव्य बना उन्हें, जगत की रति, कीरति जीतता।
सुजन को जन कोऽपि न कष्ट दे, अपर का पर काम सम्हालता॥
सुकृति की अपनी कल कीर्ति की, अमरता, मरता जग में जमा॥
हड़पना हक नाहक और का, पतन को तन कोटि प्रमाद में।
सधन बंधु समूल विनाश को, विरचना प्रलयानल जाल है॥
यतन अंतिम हो अब की यही, मिल रहें युगपक्ष स्व-अंश ले।
विदित हो उनको यह भी तथा, हित नहीं तनहो यदि जायँगे॥
समद कौरव का रव कान में यदि पड़े तव भी रण के लिये।
सदल पांडव ये यम सा उन्हें कर समूल विनष्ट स्वराज लें॥
नृपति हैं जितने इस ठौर ये, तव इन्हें अपना सहयोग दें।
जगत भी समझे तव दुष्ट को, निज कुकर्म कृशानु विनाशता॥

(अप्रकाशित महाकाव्य से)

वीर की बान

अचल उन्नत मस्तक कर वीर ! जगत को दे दो यह संदेश ।
शूर सच्चे की शक्ति समीर, सदा करता सर्वत्र प्रवेश ॥
भयंकर कानन अब्धि अपार, अगम गिरिवर पवि गर्जन घोर ।
सुमन वन, गो-पद, रज, झंकार, आप होते उसको सब ओर ॥
अनल हो जाता शीतल नीर, प्रभंजन भीषण मलय समीर ।
फूल की वर्षा होती तीर, अमर यश, विजय हार समशीर ॥
दिशाओं में फैली नभचूम, दुसह दावानल लपट कराल—
तुमुल तम में कज्जल गिरिधूम, उगलता अनल गरल खल व्याल ॥
काल के क्रूर कर्म का हास, विघ्न बाधाओं के भंडार ।
न कम कर सकते वीर प्रयास, बढ़ाते बल्कि और उद्गार ॥
शक्ति वह करती उसमे वास, मृतक पा जाता जिससे प्राण ।
भीरुता करती भैरव हास, प्रलय-रण करती लिये कृपाण ॥
कुसुम को करता कुलिश कठोर, धूल को शैल, तूल को शूल ।
क्रान्ति कर देता जग में घोर, बनाता आब हवा अनुकूल ॥
कुसुम से देता हीरा छेद, उड़ाता फूक-मात्र से शैल ।
कहीं कुछ कभी न पड़ता भेद, सदा है साफ वीर की गैल ॥
असंभव भी है कोई काम, मानता वीर कदापि कहीं न ।
कोष ही में पाता यह नाम, लक्ष्य में अपने रहता लीन ॥
सु-दिन, दुर्दिन मे एक समान, ध्येय पर वह रखता है ध्यान ।
साधता मरकर भी निज आन, यही है वीर वंश की बान ॥

(अप्रकाशित वीरविभूति से)

निछावर

हमारे रहते हुये
कौन माई का लाल,
करेगा उन्नत भाल,
तुम्हारा करने को अपमान
जननि !
सुषमा, सुख, शान्ति-निधान !
मिटा देंगे हम उसका नाम ।

तुम्हारा जहाँ ज़रा अपमान,
हमारा वहाँ पूर्ण बलिदान,
बहेगी शोणित नदी
महा उत्तुंग तरंग,
तटों को करती भंग,
मचाती भीषण हाहाकार
पाट देगी सारा संसार
शान्ति का होगा काम तमाम ॥

मचेगी जग में भीषण क्रान्ति,
करेगी तांडव नृत्य अशान्ति,
प्रलय के सजते साज,

सृष्टि को देते त्रास
काल कर भैरव हास,
बुभुक्षित, तृषा-विकल विकराल,
खोल देगा निज गह्वर गाल,
मचेगा त्रिभुवन में कुहराम।

शारदा श्री, किरीटिनी मूर्त्ति,
तुम्हारी, हम को दे सो स्फूर्त्ति,
रखे जो हम को श्रेष्ठ
जगद्गुरु हम हो जायँ
जगन्नायक पद पायँ
स-दलबल,—मा!—सर्वस्व समेत
निछावर हों तुम पर, साकेत—
बना दें सर्वसेव्य अभिराम॥
(अप्रकाशित सन्देश से)

घननाद-बध

यज्ञांश भोगी अजय अद्भुत तेज से मंडित हुए,
वैभव विपुलयुत देव गण से सब तरह वंदित हुए।
वसुधा-धरों का गर्व खर्वक वज्रधारी इन्द्र भी,
जिसके समर में धैर्य धारण कर सके तिल भर न भी॥

मारुत सदृश अवरुद्ध जिसकी गति न होती थी कही,
जिसका कही पैदा हुआ था अब तलक प्रतिभट नही।
चढ़ एक रथ जिसने बिजय था दशदिशाओं को किया,
श्री शूरता श्यामा सुलोला को स्वबश में कर लिया॥

जिस शूर पावस का युगल कर मास श्रावण भाद्र था,
जिसका तुणीर घमण्ड घन था बाणदल सलिलार्द्र था।
संग्राम मद मारुत चलित कर गर्जना संघर्षता,
अरि अर्क को दलता बरस रणक्षेत्र को था पाटता॥

पाताल में जयकेतु जिसने जा उडायी थी कभी,
लघु से सयाने नाग जिससे समर कर हारे सभी।
होकर विमुग्ध विलोक जिसकी अति अलौकिक बीरता,
नागेंद्र ने दी ब्याह रमणी-रत्न दुहिता सद्व्रता॥

कल्पान्त में मारुत प्रबल से कर परस्पर घर्षना,
करता यथा है सघन अतिही भयंकर गर्जना।
जो जनमते ही कर उठा भीषण तथा ही नाद था,
निज नाम धन्य पराक्रमी वह पुत्रबर घननाद था॥

× × × ×

मध्यस्थिता, सबसे यथोचित नाग-जा करके बढ़ी,
सानन्द सौरभ द्रब्य से विरचित चिता पर जा चढ़ी।
ले अंक में निज नाथ को ध्यानस्थ वह ज्योंही हुई,
ज्वाला पुनीता आग से प्रकटित परम त्योंही हुई॥

आनन्द रव करते हुये सुर पुष्प बरसाने लगे,
गंधर्व किन्नर पत्नियों सह नाचने गाने लगे।
"जय जय सती" "जय" "धन्य" ध्वनि सब ओर से आने लगी,
बैठी हुई वह शान्ति से शोभा परम पाने लगी॥

मानो स्वयं ध्यानस्थ कमला लाल कमलासीन है,
निज प्राणवल्लभ को सुलाये गोद में तल्लीन है।
वा साधनाओं में सुशोभित रक्त-वसना सिद्धि है,
पूरक मनोरथ सफल फल धारे हुए स-समृद्धि है।

स्वाहा स्वयम् है नाथ को अथवा लिये निज गोद में,
वा अरुणिमास्थित मंगला है मग्न मंगल मोद में।
वा है सुराष्ट्र प्रताप में पौरुषसहित सुख सम्पदा,
अथवा लिये कैवल्य यह पद्मासना है शारदा॥

अथवा गिरा गंगा तरणिजा-सलिल संगम है भला,
मणि मंजु मंचासीन है ले ज्ञान विमला कोमला।
वा यज्ञ को ले है तपाभा मध्य शाखा साम की,
है सघन घन में वा सुशोभित राशि विद्युधाम की॥

औषधि अमित में है लिये निज नाथ को वा रोहिणी।
या मधुर आकर्षण लिये सुषमास्थिता है मोहिनी॥
वा शेष फणि पर माधवी है धैर्य को धारण किये।
है दीप्ति में अथवा महा श्रृंगार को शोभा लिये॥

वा हृदय भावुकतास्थिता सह स्नेह निस्पृह प्रीति है।
अथवा विचक्षणता स्थिता सुविवेक संयुत नीति है॥
वा राष्ट्र-सेवक राजप्रभुता में विजय सह दण्ड है।
वा गुण-ग्राहकता स्थिता प्रतिभा सकोष अखण्ड है॥

ऋतुराज ले वा है बसंत-श्री प्रसून पलास में।
रति स-पति ऋतुपति वाटिका वंजुल विलास निवास में॥
वा है उषा में भैरवी लेकर प्रभात पुनीत को।
वा कुमुदिनी में कौमुदी ले सुखद तोयधि तात को॥

आतिथ्य तन धारी लिये वा सिद्ध-वाला सुन्दरी।
सिंदूर शिखरासीन है शुचि शान्ति, सुख, सुषमाभरी॥
वनदेव सह है वन्य-देवी वा अतूल विलासिनी।
दावाग में वा योगिनी सह योग मोह विनाशिनी॥

देखे गये वे दिव्य तन धारे हुए आकाश में।
मिलते हुए अतुलित अलौकिक दिव्य पुण्य प्रकाश में॥
"जय, जय सती की" सुखद-रव से सृष्टि सारी भरगई।
शुभ-सुमन-वर्षा से हुई वह भूमि शुचि सुषमामयी॥

(अप्रकाशित काव्य से)

बहता बेड़ा

लगा था करने में शृंगार
छवि की मादकता में विस्मृत

हुये अन्य व्यापार
न करने पाया तनिक बिचार।

सका कर स्वागत का न विधान
जुटाया नही जरा सामान,
व्यस्त रहा सजने की धुन मे
भूल गया संसार
सका न हो समुचित आचार
लगा था करने मे शृंगार

स्वयम् राजन्! कितने ही बार
पधारे अब तक मेरे द्वार
शून्य भवन मे मुझे व्यस्त लख
चले गये हर बार
नही हो सका ज़रा सत्कार।

मगर मेरे सारे अरमान
हुये अबलो नभ सुमन समान
अलंकार ये साज न बेड़ी
कड़ियों के है तार
मोह खल का अमोघ हथियार
यह शृंगार न स्वर्ण सदन है
भीषन कारागार
महा माया का रौरव-द्वार।

बिहार के नवयुवक हृदय

समझकर हूँ बे समझ अजान
अभी भी है प्रिय परम अरमान
जो है अन्तर डाले बाधक
मिलने में सुख-सार
उन्हें ही करता अब भी प्यार

करो अब आ खुद ही उद्धार,
पूर्णकर अभिलाषा सुकुमार
नाथ ! पहन लो बरबस मेरा
आत्म- समर्पण- हार
लगा दो बहता बेड़ा पार ॥

बिहार के नवयुवक हृदय

मोहनलाल महतो

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

पं० मोहनलाल महतो बिहार के उन रत्नों में हैं जिनपर हिन्दी-संसार को गर्व हो सकता है। आपकी अवस्था केवल २५ वर्ष की है। परन्तु इतनी छोटी अवस्था ही में आपने अपनी कविता और व्यंगचित्र कला के बल काफी प्रतिष्ठा और नाम प्राप्त कर लिया है।

आपका जन्म संवत् १९५८ वि० के कार्तिक मास की शुक्ला षष्ठी सोमवार को हुआ था। आपके पिता जी का नाम पं० श्यामलाल जी महतो है। आप गयाधाम के पंडा हैं। आप गया शहर के ऊपरडीह महल्ला में रहते है। पटियाला, फरीदकोट, नाहन आदि के कई एक राजे महाराजे आपके यजमान हैं। इन राजाओ से आपको यथेष्ट वार्षिक आय होती है। आपको धन की कमी नही है, अतएव आपकी साहित्य-सेवा धनोपार्जन के लिये नही होती।

आपकी शिक्षा किसी स्कूल-कालेज में नही हुई। घर ही पर आपने हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत का अध्ययन किया। बीस बर्ष की आयु तक आपका पढ़ना जारी रहा, परन्तु कोई नियमित रूप से नही। अपने परिश्रम और अध्यवसाय से आपने इन सभी भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। बंगला में भी आप अच्छी योग्यता रखते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र

के आप अनन्य उपासक हैं। अपनी सौतेली माँ से आपने मराठी भी सीख ली है। इससे आपकी प्रतिभा तथा श्रम-शीलता का पूर्ण परिचय मिल जाता है।

जब आप केवल छः वर्ष के थे तभी आपकी माता की मृत्यु हो गई। लड़कपन में आपकी माता आपको खड़िया से जमीन पर चित्र खींच-खींच कर खेलाती थी। माता की मृत्यु के पश्चात् भी आप खड़िया से आँगन तथा दीवारों पर लकीरें खींच कर खेला करते थे। यही लडकपन का संस्कार आज इस रूप में विकसित हुआ है कि व्यंगचित्र बनाने में हिन्दी-संसार में आपका स्थान बहुत ऊँचा है।

आप केवल कवि तथा चित्रकार ही नहीं, वरन् सुलेखक भी हैं। छोटी छोटी कहानियाँ आप बहुत लिखा करते हैं। वे छोटी होने पर भी बड़े मार्के की होती हैं। आप बड़े से बड़े भावों को बहुत कम तथा सरल शब्दों मे प्रकट कर सकते हैं। इसीसे आपकी लेखन-शक्ति की उत्कृष्टता मालूम हो जाती है। छायावाद के कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आप कविता में रवीन्द्र तथा कबीर के अनुगामी हैं। आपकी कविताएँ हिन्दी के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में निकलती हैं। हाल मे 'निर्माल्य' तथा 'एकतारा' नाम से आपकी कविताओं के दो सुन्दर संग्रह प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी-संसार ने आपकी इन दोनों पुस्तकों का बहुत आदर किया है। बड़े से बडे विद्वानों तक ने मुक्त कण्ठ से आपकी

प्रशंसा की है। यही आपकी सफलता का सब से बडा प्रमाण है।

आपने कुछ दिन 'राम' का सम्पादन किया था। इस समय भी आप महारथी के सरस साहित्य के सहायक सम्पादक है। आप बडे मिलनसार स्वभाव के हैं। सहृदयता तो आपमें कूट कूट कर भरी है। धन के साथ साथ आपमें नम्रता और शील मौजूद है जा बहुत कम लोगों में पाया जाता है।

शारीरिक निर्बलता आजकल अधिकांश साहित्यिकों में पाई जाती है। परन्तु आप एक पहलवान हैं। लडकपन मे आप बहुत कमजोर और दुर्बल थे। अपने परिश्रम और व्यायाम द्वारा आपने काफी शक्ति प्राप्त कर ली है। आपके चुटकियो मे इतनी शक्ति है कि बात की बात में आप पैसे और अठन्नी को दबा कर टेढ़ा कर देते हैं। आपके फौलादी पंजों मे इतना बल है कि बड़े बड़े हट्टेकट्टे लोगों की हथेली पकड़े जाने पर मुर्दे की हथेली-सी सफेद हो जाती है। आपने अपने उदाहरण से यह प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि एक अत्यन्त निर्बल बालक भी थोड़े से नियमित व्यायाम के द्वारा मानसिक परिश्रम करते हुए भी यथेष्ट बलवान हो सकता है।

ईश्वर आपको दीर्घजीवी करें जिससे अपनी साहित्य-सेवा द्वारा आप हिन्दी-संसार का मुख उज्ज्वल करें।

आँसू

हे मेरी आँखों के आँसू ! हे इस जीवन के इतिहास !
छलक पड़ो मत, रहो अन्त तक, उमड़े इस दुखिया के पास।
हे करुणा के चिन्ह ! अहो अभिलाषी की नीरव-भाषा !
मत छलको है टँगी हुई, तुमपर ही मेरी शुभ आशा।
हृदय-वेदना के परिचायक ! निराधार के हे आधार !
अन्तस्तल को धोनेवाले ! हे मेरे सुमूक उद्गार !
हे मेरी असंख्य भूलों के मूर्तिमान सच्चे अनुताप !
शीतल करते रहो सदा इस दग्ध-हृदय का भीषण ताप।

हे कितनी घटनाओं की स्मृति ! हे मेरी आँखों की लाज !
क्या जानें क्या तुम्हें छलकता देख कहेगा क्षुब्ध समाज ?
कितने स्नेह, शोक के हो उपहार-तुल्य तुम मेरे पास।
बात-बात मे यों मत छलको उठ जावेगा फिर विश्वास।
बल न उठे जिससे सहसा वह, बना रहे सुखदायक शान्त।
रक्खा है प्रज्वलित प्रेम को तुममे डुबा, अहो उद्भ्रान्त !
बार-बार इस नीरस जग को अपना रूप न दिखलाओ।
उषाकाल के तारागण-से इन नयनों मे छिप जाओ।

हे मेरे इस जीवन भर की कठिन-कमाई ! छिपे रहो।
आवश्यकता नही तुम्हारी आई, भाई, छिपे रहो।

नही सफाई देने की बारी आई है छिपे रहो।
नही झलक अब तक प्रियतम ने दिखलाई है छिपे रहो।
यों ही ढलक पड़ोगे तो मिट्टी मे मिल जाओगे यार !
"लोचन जल रहु लोचन कोना" यही विनय है बारंबार।

विराट् आह्वान

नाथ ! रहा हूँ तुम्हे पुकार।
इस कोलाहल पूर्ण देश मे, क्षीण कण्ठ से दीन वेश में,
सिर पर ले असत्य गुरु भार, नाथ ! रहा हूँ तुम्हें पुकार।
सुख-दुख,हँसी और रोदन में, जाग्रत, जीवन, स्वप्न,मरण में।
सभी दशा में कर चीत्कार, नाथ ! रहा हूँ तुम्हें पुकार।
अर्थ-हीन भाषा में खग-दल, अस्थिर पवन हो महा विह्वल।
आठो पहर घोर गर्जन कर, अन्त-हीन कल्लोलित सागर।
मूक भारती में गिरि,तरुवर,तटिनी,निर्झर नित कर झर झर।
कर्म चक्र में बँधे हुए नर, महा उदार अटल नीलाम्बर।
रवि, शशि युग युग घूम घूमकर, घोर शून्य मे मेघ नयनभर।
नाथ ! रहे हैं तुम्हें पुकार।
आओ हे जीवनदाता ! पोषणकर्त्ता !! अन्तक !!! कर्त्तार !
निराधार जग के आधार !!

चित्रपट से

[१]

संलाप

बोल बोल क्यों मौन स्वप्न-सी, छाया-सी सुषमा-सी;
कवि की सुखद कल्पना-सी; मुसकान और उपमा-सी ?
सुरसरि की तरंगमाला पर, नृत्यमान शशिकर-सी
जीवन की गति-सी, नीरव रोदन-सी अचल अधर-सी ?
किस अज्ञात हृदय-धन का करती हो नीरव-आराधन,
किस छलिया के हाथ हारकर बैठी हो तन, मन, यौवन ?
किस अलक्ष्य को देख रही हैं ये तेरी अ-पलक आँखें ?
किसके स्नेह-मधुर-मधु में मधुकर की आज फँसी पाँखें ?
किस सुदक्ष की कुशल-तूलिका ने बन्दिनी बना डाली;
या इस नव-कलिका को बरबस छोड़ गया वह वनमाली ?
भय है शाप-ताड़िता तू वह देवि अहिल्या हो न कहीं ,
क्या प्रिय-चिन्ता-मग्न-चित्रवत् तू शकुन्तला नहीं-नहीं !
फिर क्या यक्ष-प्रिया है, क्यों अपने को यों खो बैठी है :
जग से नाता तोड़ बता तू अब किसकी हो बैठी है ?
फिर तू कौन, मरुस्थल की है मृग-मारीचिका, माया-सी ,
या उस भुवन-मोहिनी की तू परम मोहिनी छाया-सी ?
ऋतु-बसन्त की मलय-पवन-सी, दुखिया की आशा-सी ,
बोल-बोल तू कौन प्रेम-योगी की अभिलाषा-सी ?

आह ! विश्व के युग-युग की तू कौन साधना-सी है,
या वियोगिनी हर-कोपानल-दग्ध-पंचशर की है!
आ, कवि की वीणा की स्वर-लहरी पर जरा नृत्य कर जा;
है अनुरोध हमारे इस खाली प्याले को फिर भर जा।
कर प्रवेश कल्पना-लोक में कविता-उत्स प्रवाहित कर;
एक बार अमृत—हैं ऐसी बात; न हूँगा, प्रिये अमर!
जीवन-मरण-भट्टियों में अपने को खरा बना लूँगा;
फिर तेरी इस रूप-राशि पर निज को अर्पित कर दूँगा।
है अधिकार भानु का नयनों पर मन पर प्रभुवर का;
क्रूर समय का यौवन पर तन पर उस काल अमर का।
धन, जन पर है भाग्य-देव का वाणी का रसना पर;
तथा कल्पना पर तेरा, भव के अधिकारी शंकर।
पर यह हृदय-हारिणी कविता मेरी है—मेरी है।
अतः हृदय के शब्द यही हैं "तेरी है—तेरी है।"
अनाघ्रात सुमनों की अंजलि ले हाँ—बोल, बोल तो दे।
मेरे जीवन के प्रभात का बन्धन खोल—खोल तो दे।

\+ + + + + + + +

\+ + + + + + + +

ले सुस्थिरता अम्बर से पावनता ले सुमनो से;
ले करुणा से सिक्त सुखद-सहृदयता दीन जनों से।
लेकर रूप आदिकवि की कविता से, गुण वसुधा से;
ले अमरत्व स्वर्ग से, शिव से, सुर से, सत्य, सुधा से।

ले मनसिज से मादकता, कामलता इन्दीवर से;
ऋतुपति से यौवन सोहाग सुख छीन रमा के कर से।
ले प्रभात से प्रभा, सुधाकर से शीतलता, शान्ति अपार;
लज्जावती-लता से लेकर लज्जा का सुमधुर-उपहार।
यहाँ हुई अवतीर्ण ग्रहण कर रेखाओं का सुस्थिर भेष;
धन्य कला वह, जिससे सीमित हुआ आज सौन्दर्य अशेष।
आ उस शुष्क चित्रपट से इस निभृत प्रेम–आदर-घर मे
हो विकसित जीवन-सुवास ले जलज सरिस अन्तर-सर में।
मेरे भावों के निकुञ्ज मे हो वसन्त का प्रादुर्भाव;
अश्रुकणों के पत्र झरें, मलयानिल का पड़ रुक्ष प्रभाव।
कोयल बने भारती मेरी कूक उठे कविता-स्वर में;
ऊथल-पुथल मच जाय गगन में, बसुधा में, अन्तरतर में।
नयन-वियोगी बने बरौनी बने पंचशर के खर-बीर,
ढके पड़े हों पलक–वस्त्र से जल में क्षत-ज्वाला से धीर !
देख नयन की दशा हृदय हा ! तड़प तडप रह जाता हो;
तेरा ध्यान सुधाकर स्मृति के अंगारे बरसाता हो।
प्राण बने चकोर जीवन अम्बर में आह ! धूलि छा जाय;
चिर-संगिनि-गायिका निराशा आ वैराग्य-गान गा जाय।
तेरे प्रेम-देव के मन्दिर पर मैं अलख जगा आऊँ,
जिससे उसका आसन हिल जावे, मैं वही गीत गाऊँ।
निकल पड़े यदि बाहर अपना कम्पित कर फैला दूँगा;
जो वह हँस कर मुझे भीख देगा वह रोकर ले लूँगा।

\+ + + + + + +
\+ + + + + + +

तू मेरी है वह वीणा जो बजती है करुण स्वर में;
तू मेरी है वह आशा जो जागृत है उर-अन्तर मे।
तू मेरी है अभिलाषा है जो साधन का आधार,
तू मेरी है वह प्रसन्नता है जो सुख का पारावार।
तू मेरी है वह सुन्दरता है जो जीवन-ज्योति समान;
तू मेरी है वह कलिका है जो सुमनस की गौरव-खान।
तू मेरी है वह विभावरी जिसे सुकवि करते हैं प्यार;
तू मेरी है वह संध्या है जो अम्बर का शुभ शृंगार।
तू मेरी है वह निहारिका जिससे होता जग निर्माण;
तू मेरी है वह वासन्ती वायु विश्व का है जो प्राण।
तू मेरी है वह पीडा जो तेरी याद दिलाती है;
तू मेरी है वह उसास, जो पत्थर को पिघलाती है।
बोल-बोल है शलभ खडा, ऐ दीपशिखे! कुछ भी तो बोल;
हो जाऊँ पल में न्योछावर हा-हा तनिक पलक तो खोल।
हो जाता नीरस जीवन वसुधा का यदि होता न बसन्त;
होता जो न चन्द्र तो रजनी के यौवन का होता अन्त।
होती जो न लताएँ तो दिखलाते वृक्ष वियोगी-से;
होते जो न कहीं पादप तो गिरि दिखलाते योगी-से।
होती जो न कहीं चपला तो मेघ धूम्र सा दिखलाता;
होता जो न ग्रीष्म तो जीवन जीवन का पद क्यों पाता?

होता जो न प्रेम तो होता हृदय मरुस्थल क्रूर मसान,
होती जो कविता न कहीं तो होते हम-सब यंत्र-समान।
मोर चन्द्रिका-सी आँखें होतीं यदि होता शील नहीं;
होता जो न अभाव इस तरह, बढ़ती जग में चाह कहीं?
होता जो न "वियोगी" तो कह? करता कौन तुझे यों प्यार;
होता जो न प्यार तो क्यों तू करती उसपर अत्याचार?
फिर आग्रह से तिरस्कार का गँठ-बन्धन तक भी होता;
मेरा भाग्य निराशा के पर्दे में छिप न कभी सोता।
थी इच्छा क्या विश्वदेव का बाहर हो जग का कंकाल;
रचा उन्होंने इसी काम के लिए वियोग, प्रेम का जाल।
जिसमें फँस जाने ही से बस, जीवन का निस्तार नहीं,
यही सोच कर अपने तक को करता था मैं प्यार नहीं।
किन्तु समय ने पलटा खाया देखा तेरा सुन्दर चित्र;
देखा उसमे रूप अनूठा देखी उसमें प्रभा पवित्र।
आह, नयन ने, मन ने, सखा हृदय ने भी विद्रोह किया;
नव-बसन्त के मलयानिल ने उन्हें पूर्ण साहाय्य दिया।
इन विद्रोही वीरों ने हलचल भी खूब मचा डाली,
इनसे लड़ने में संयम का हुआ तूण-अक्षय खाली।
जीवन को संग्राम-क्षेत्र में परिणत कर ये शान्त हुए।
इधर भाव भी नीरवता का त्याग परम उद्भ्रान्त हुए।
प्रकट हुए वे दूती बनने के हित ले कविता का भेष;
सुनना प्रिये! कहेंगे वे ही मेरी आहों का संदेश।

+ + + +

+ + + +

प्रियतम से

पूछो, शलभो से क्यों जलते हैं दीपक में जा-जा कर ?
पूछो, पंकज क्यों खिलता है, सह दिनकर की किरण प्रखर ?
पूछो, भ्रमरों से क्यों चलते है बन-बन में वे मारे ?
पूछो, जरा चकोरों से क्यों खा लेते है अंगारे ?
पूछो, सूर्यमुखी से क्यो वह सारा दिन तप करती है ?
रवि की चारो ओर भाँवरे यह धरनी क्यों भरती है ?
पूछो नाथ ! पपीहो से तुम उनके अन्तर-तम की बात,
क्या-क्या बीत रही है उनपर, सहते है कैसे आघात ?
यदि सहृदय हो तो फिर क्या मै तुम्हें खोलकर बतलाऊँ ?
हृदय-हीन हो तो फिर कैसे कथा हृदय की समझाऊँ ?

महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'

स्वर्गीय बाबू महावीरप्रसाद चौधरी बिहार प्रान्त के उदीयमान कवियों मे थे। अपने जीवन-काल के थोड़े ही समय में आपने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दे हिन्दी-संसार को मुग्ध कर लिया था।

आपका जन्म सम्वत् १९६० मे विजयादशमी को हुआ था। आपके पिता बाबू ठाकुरप्रसादजी चौधरी असरगंज के वैश्यो में आदरणीय स्थान रखते थे। आप अपने पिता के एकलौता पुत्र थे। पाँच वर्ष की अवस्था में स्थानीय श्रीशारदा पाठशाला में आपकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। वहाँ की शिक्षा समाप्त कर आप जलालाबाद सेकेण्डरी स्कूल में पढ़ने के लिये भर्ती हुए। यहाँ भी अपने सहपाठी छात्रों में आपका विशेष स्थान था।

सन् १९१४ ई० में पं. जगदीश झा 'विमल' स्थान-परिवर्तन कर जलालाबाद स्कूल में गये। सुयोग्य शिक्षक से साहित्य-शिक्षा पाने के कारण आपका ध्यान साहित्य की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। फिर क्या था, आपका अधिकांश समय झाजी के साथ ही साहित्य-चर्चा में व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे आपकी रुचि कविता करने की ओर झुकी। प्रतिभा तो पहले से वर्त्तमान थी ही, अवसर पाकर वह विकसित

बिहार के नवयुवक हृदय

बाबू महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'

होने लगी। जिस समय आप मिडिल इंगलिश स्कूल में ही पढ़ रहे थे, उसी समय आपने 'प्रह्लाद' नामक एक छोटा सा खण्ड-काव्य प्रकाशित कराया। उक्त पुस्तक को देख कर कई लोगों ने आपसे कहा कि यह आपकी रचना नही है। यह आपके पण्डितजी (पं. जगदीश झा 'विमल') की रचना है। आपने अपने पण्डितजी से जाकर ये सब बातें कही। आपको उदास देख पण्डितजी ने प्रबोध देते हुए कहा—"इसकी चिन्ता नहीं, सूर्य की किरणें छिपाने से नही छिपती।"

थोडे ही समय में आपने पत्रों में लेख और कविताएँ छपवानी आरम्भ कर दी। श्रीकमला, विद्यार्थी, चन्द्रप्रभा, सरस्वती, मर्यादा, प्रताप प्रभृति पत्र-पत्रिकाओं मे आपकी रचनाएँ छपने लगी। छोटी-छोटी कई पुस्तकें भी लिखी। आप केवल एक प्रतिभाशाली कवि और अच्छे लेखक ही नही थे, वरन् एक प्रभावशाली वक्ता भी थे। आप भारत के एक होनहार रत्न थे।

आपकी लिखी 'गन्धर्व नामक पुस्तक आपकी मृत्यु के पश्चात् मिली है। श्रद्धेय 'विमल' जी उसके प्रकाशन का प्रबन्ध कर रहे हैं। आशा है कि आपके उद्योग से वह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी। उस पुस्तक का अन्तिम पद्य है—

जाता हूँ मै स्वर्ग को, देकर यह सन्देश।
गाकर मेरे गीत को, करना सुखी स्वदेश॥

इस पद्य से प्रकट होता है कि आपको अपने मरने की बात पहले ही से मालूम थी।

प्रवेशिका (मैट्रिक) देने के पश्चात् आपने 'बिहार का इतिहास' लिखना आरम्भ किया था। पर दुख है वह अपूर्ण ही रह गया। आपकी मृत्यु के बाद घर वालों ने आपकी सभी पुस्तकें जला डाली। उसमे आपकी कई अनमोल रचनाएँ भी नष्ट हो गईं।

एक दिन सदैव की भाँति आप उक्त पण्डितजी के साथ ऐतिहासिक विषयो पर बातें करते स्कूल से घर आ रहे थे कि सहसा ज्वर चढ़ आया और आप साइकिल से उतर गये। पण्डितजी ने उतरने का कारण पूछा। आपने उत्तर दिया—"कालज्वर चढ़ आया, अब मै नही बचूँगा। आप मेरे पीछे मेरे लिये क्या करेंगे?" पण्डितजी ने आपको डाँट दिया कि व्यर्थ की बातों से क्या लाभ है। तत्काल ही आप अपने घर पहुँचवा दिये गये। उस दिन से पण्डितजी नित्य आपको देखने जाते थे। पर अन्त मे 'विभूति' की बात सच्ची निकली। अपने पिता के हजारों रुपये खर्च करा कर, अपने इष्ट मित्रों तथा गुरु-जनों को रोता छोड़ आपने इस असार संसार को छोड़ ही दिया। मन की मन ही में रही।

आपकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे सप्ताह में मेट्रिक परीक्षा का फल प्रकाशित हुआ। पटना विश्वविद्यालय मे हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण आपको एक स्वर्णपदक मिला था।

सब कुछ हुआ, पर हिन्दी की विभूति लूट गई। यह मार्च सन् १९२० ई० के अन्तिम सप्ताह की घटना है।

स्वदेश

हे हे प्रियतम स्वदेश !
लोक-विदित, वन्द्य देश !
वीर-वेश, आदि-सभ्य, विश्व-ज्ञान-दाता !
महिमा तव अति अपारः
पावैं कविगण न पार ।
सृष्टि-द्वार, सुखमा-घर, आरत जन त्राता !
स्वामि ! पा 'विभूति'-दास ।
रहते तुम क्यो उदास ?
व्यर्थ त्रास, निर्भय हो स्वर्ग-लोक-भ्राता !

प्रतिज्ञा

होंगे देश-हित बलिदान !
गेय को कर ध्येय होंगे पूर्ण चेष्टावान ॥
देखकर आपत्ति सम्मुख खो न देंगे प्राण ।
शत्रु से होने न देंगे देश का अपमान ॥
हित हमारा हो न हो, रख देश-हित का ध्यान ।
तन्त्रता अपनी करेंगे देश का कल्याण ॥

बल विभव फिर से करेंगे प्राप्त देकर प्राण।
लिप्त अब होगी नहीं दुख में भरत सन्तान॥
दासता के नाम से खाली करेंगे स्थान।
नर हुए नर-स्वत्व लेंगे, हैं खड़े भगवान॥

जीवनोद्देश

पा दुर्लभ नर-देह व्यर्थ में हमें न खोना।
मर्त्य लोक में बीज अमरता का है बोना॥
सुख में हँसना नहीं न है दुख में कुछ रोना।
रहें हमारे साथ सदा वह श्याम सलोना॥
अपने हित करना नहीं हमको कुछ अब शेष है।
करना सुखी स्वदेश को जीवन का उद्देश है॥
जैसे हो प्रण-प्राण-सङ्ग निर्वाह करेंगे।
कभी विघ्न-भय की न तनिक परवाह करेंगे॥
नर को पूछे कौन काल से भी न डरेंगे।
जनमे जिसके लिये उसीके लिये मरेंगे॥
भूले भटको के लिये यह 'विभूति'-सन्देश है।
करना सुखी स्वदेश को जीवन का उद्देश है॥
जैसे हो भरना हमें निज भाषा-भण्डार।
एकमात्र बस है यही देशोन्नति का द्वार॥

नव-जीवन

प्रकृति-प्रसाद अहो नवजीवन !

जब भारत को प्राप्त हुआ तू,
रग रग में जब व्याप्त हुआ तू,
उत्तेजित होकर तन सारा,
रक्त धमनियाँ चढ़ा हमारा।
सुन वीरों का शङ्ख-मृदङ्ग;
जाग उठे कर निद्रा भङ्ग।
आत्म-प्रकाश, पुनीत, हृदय-धन।
प्रकृति प्रसाद अहो नवजीवन !

नित नवीनता का स्वागत है,
जीर्ण-भाव हो रहा विगत है;
नवयुग, नव हम, नव विचार-रत,
धारें नव नव तप, संयम, व्रत।
पा नवशक्ति, नवीन उमङ्ग;
कर्म करें धरके नव ढङ्ग।
मोह न होकर प्राण-समर्पण।
प्रकृति-प्रसाद अहो नवजीवन !

शीघ्र स्वदेश स्वराज्य प्राप्त हो,
शान्ति-कान्ति सर्वत्र व्याप्त हो,

प्राप्त करें वीरोचित-गुण हम—
साहस, शक्ति, धैर्य-पराक्रम।
हो सर्वत्र गान जय गान—
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।
अत्याचार सहे न कभी तन।
प्रकृति-प्रसाद अहो नवजीवन!

समझें कारागार तीर्थ हम,
गीता का जहँ हुआ उपक्रम;
मृत्यु-मोक्ष, सुख-सम्पति का भ्रम,
दुख साफल्य, हर्ष ही सम दम।
उद्यत हो भारत-सन्तान;
साधे भारत का कल्याण।
करें 'स्वराज्य'-हेतु भीष्म-प्रण।
प्रकृति-प्रसाद अहो नवजीवन!

एकमात्र आशा

युवाओ! एक तुम्हारी आस।
विद्या-बुद्धि रही न नाम को और न धन है पास॥
तुमको छोड़ सभी बैठे हैं विफल मनोर्थ उदास।
पाता देश अनेक भाँति से सङ्कट मे भी त्रास॥

तुम हो नये, नवीन हुआ है तुममे शक्ति-विकास।
इसी लिये तुमपर भी सबको होता है विश्वास॥
दूर गया श्रेष्ठत्त्व हमारा बने और के दास।
आओ कार्यक्षेत्र में उतरो, लेने लगो न श्वास॥
हिन्दू, हिन्दी, हिन्द हमारा पावे पूर्ण-प्रकाश।
करो न माता को 'विभूति' से कभी कदापि हताश॥

ध्रुव का वैराग्य

ध्रुव ने सहा न निज अपमान।
क्षत्रियत्व ने कायरता को अपना शरण दिया न॥
क्रूर विमाता ने जो छोड़ा गर्वित-वाणी-बाण।
वह ध्रुव के कोमल मानस को छेदे बिना रहा न॥
अतः प्रेम-सारथी बनाकर चढ़ वैराग्य-विमान।
प्रियतम से मिलने को उसने किया विपिन प्रस्थान॥
त्यागा राजैश्वर्य समझकर उसने धूलि-समान।
ईश-भक्ति कर उसने अपना किया अमित कल्यान॥
ध्रुव ध्रुव हो गया, पा लिया उसने यों वरदान।
लघु भी रघुपति-कृपा प्राप्त कर देखो हुआ महान॥

धनराजपुरी 'विद्यार्थी'

महन्त श्री धनराजपुरी का जन्म संवत् १९६० विक्रमीय में चम्पारन ज़िले के एक धनी घरवासी गोस्वामी महन्त के यहाँ हुआ था। आपके पिता का नाम महन्त श्री जङ्गबहादुर गिरि था। जब आप केवल चार वर्ष के थे तभी आपके पिता का स्वर्गवास हो गया।

बाल्यकाल की शिक्षा आपके सुयोग्य चचा महन्त श्री रघुनन्दन गिरि जी की देख-रेख में घर पर ही आरम्भ हुई। आठ वर्ष की उम्र मे आप अंग्रेज़ी की शिक्षा पाने के लिये बेतिया भेजे गये; किन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण आप वहाँ से लौट आये। पुनः घर पर ही शिक्षा पाने लगे। इसी बीच में उसी ज़िले के सिकटा नामक मठ के महन्त आपकी बुद्धि की तीव्रता देख कर मुग्ध हो गये। उन्होंने बड़े आग्रह से अपना शिष्य बनाने के लिये आपको आपके चाचा से माँगा। आपके घर पर धन की कमी न थी, अतः आपके चचा ने पहले आपको दे देने से इन्कार कर दिया, किन्तु उनके अत्यन्त आग्रह से पीछे मान लिया। तदनुसार आप संवत् १९७२ में उस मठ में शिष्य होकर 'गिरि' से 'पुरी' हो गये।

आपकी रुचि पहले से ही संस्कृत पढ़ने की ओर थी। अतः आप संस्कृत की शिक्षा पाने के लिये दूसरी जगह भेजे

बिहार के नवयुवक हृदय

साहित्यसरोज महंथ श्री धनराजपुरी 'विद्यार्थी'
व्याकरण वाचस्पति

गये। संवत् १६७८ मे, केवल अट्ठारह वर्ष की उम्र में आपने व्याकरण-वाचस्पति की परीक्षा ससम्मान पास की। साथ ही आपने साहित्य का अध्ययन करके साहित्य-सरोज की भी परीक्षा दे डाली।

आपकी बुद्धि की प्रखरता देखकर विद्यालय के अध्यापक आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। आप पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही कविता करते है। संवत् १६७६ से आपकी रचनाएँ समाचार-पत्रों मे प्रकाशित होने लगी।

संवत् १६७६ में आपके गुरुजी का कैलासवास हो गया। अतः आप सिकटा मठ के महन्त बनाये गये। तभी से आपको पढ़ना छोड़ना पड़ा। हॉ, पत्रों में कविताएँ आप बराबर देते रहते है। 'किञ्जल्क' और 'अलि' उपनाम से भी आप कविता करते हैं। आजकल, अवकाश कम रहने के कारण आप अधिक नहीं लिखते। फिर भी सदैव कुछ-न-कुछ लिखते ही रहते हैं। सुनने में आया है कि आप 'विधवा' नामक कोई काव्यग्रंथ लिखने और हितोपदेश का गद्य पद्यमय हिन्दी अनुवाद करने मे लगे हुए हैं।

आपका स्वभाव धनी होते हुए भी बड़ा सीधा-सादा है। और संन्यास धर्म मानते हुए भी बड़े ही आखेट-प्रिय हैं। ईश्वर आपको कल्याण और सञ्जीवन का वर दें।

लालसा

जीवन-पुष्प एक मै पाया,
रङ्ग रूप लख जी भर आया,
था उसके प्रति कल-दल में अति रुचिर गन्ध का बास।
बहुत देर तक उसे छिपाया,
अन्त, सभी को ले दिखलाया,
जिसने देखा, उसने सुध खो लिया दीर्घ निःश्वास !

फूला नही समाता था मैं,
सबको वही दिखाता था मै,
उसके ऊपर हुआ प्रेम मम सीमा-रहित अनन्त ।
सुख से दिन कटते जाते थे,
नित्य, ललित लहरें लाते थे,
एक दिवस मम हुआ अचानक ध्यान भंग हा हन्त !

कानों में कोई कहता था,
मानों सुधा-स्रोत बहता था,
पाकर जीवन-पुष्प किया क्या पालन अपना धर्म ?
जिसकी पाकर अद्भुत छाया,
जीवन-पुष्प रंग ले आया,
उसे भुलाया, क्या यह तेरा है नहि कुत्सित कर्म ?

गोता ले लीला-लहरी में,
निकला जब मैं दोपहरी में,
देखा, बनी हुई है मेरी कुटी स्वर्ग का धाम !
है अब यही लालसा मन में,
माता के इस भव्य-भवन में,
देकर जीवन-पुष्प समुद मैं पाऊँ चिरविश्राम !

वज्राघात

मुकुलित-कला हवा में थी काँपती त्रपित-सी।
भौंरा वहीं खड़ा था।
यक दिन कली खिलेगी रस से भरी अनूठी,
यह सोच कर अड़ा था।

ऊषा-गमन निकट था, नभ का रँगीन-पट-सा।
मृदु वायु बह रही थी।
व्याकुल हुआ भ्रमर था, इच्छा दबी छिपी-सी—
जी मे तरस रही थी।

सौरभमयी-पवन थी वासित दिशा बनाती,
पर बेख़बर भ्रमर था,
"निश्चय यही हमारी एक दिन कली खिलेगी"
यह सोच वह निडर था !

रो रो कटेंगे निशिदिन, उत्ताप कम न होगा—
यह प्रेम आग होकर !
हा हन्त ! स्वप्न मे भी भौंरा न सोचता था,—
हम मर मिटेंगे रोकर !!

देखा हृदय कडा कर जिस दृश्य को मधुप ने,
वह रह गया तडप कर !
बादल बिना कहाँ से उसपर अरे ! बिजलियाँ,
आकर गिरी कडक कर !!

माला बना कली को, हा ! अन्य के गले मे,
माली पिन्हा रहा है !
रे दुष्ट दैव ! लख कर यह दृश्य तू न रोता,
क्यो जी जला रहा है !

माली अरे कुचाली ! तू ने न प्रेम देखा,
क्या अन्य की कली थी ?
थी जान वह मधुप की, उसका मधुप हृदय था,
अलि-प्रेम म पली थी !!

जो खो गया मधुप का, वह क्या उसे मिलेगा ?
माली अरे ! बता तू ?
जो है दशा भ्रमर की, वह किस तरह मिटेगी,
यह तो हमें जता तू !

अकथ

देखी एक ज्योति-सी जग में,
फैली थी आभा भी मग मे,
शून्य गगन के एक कक्ष मे करती थी विश्राम ।
दबे पॉव मैने जा देखा,
कैसा है वह दृश्य अनोखा,
स्वच्छ, दिव्य, अति विशद, मनोहर था दृग सुखकर ठाम ।

दीप-शिखा-सी लौ जिसकी थी,
नही, कहाँ उपमा उसकी थी !
चारो ओर रूपमय दश थे वातायन-से द्वार !
पवन वहाँ आती जाती थी,
किन्तु नही हमको भाती थी,
डर था हमें, न बुझ जावे यह पा मारुत की मार !

सॉस रुकी जाती थी मेरी,
रूप राशि पर ऑखें फेरी,
हक्का-बक्का चित्र-लिखित-सा हुआ एक टक देख ।
ऐसा दृश्य इसी काया में !
कहाँ भटकता हूँ माया में ?
लख इसको तो कल्प बितेंगे जैसे एक निमेष !

ध्यान भङ्ग हो गया हमारा,
था वैसा ही यह जग सारा,
किन्तु हमारा नवजीवन था नवमङ्गलमय साज !
सोचा, दृश्य सभी के आगे—
रख दूँ, जिससे भव-भय भागे
कहा जगत से, अकथ दृश्य यह कहो लखोगे आज।

विज्ञ हँसे, मानव चकराये,
किन्तु सभी जन दौड़े आये,
बौड़म-सा जग ने तब पूछा,–'है वह कैसा रूप ?'
खूब टटोला अपने मन में,
एक बार फिर गया भवन में,
आखिर कहना पड़ा मौन बन 'है वह अकथ स्वरूप !'

हमारी दुःख-कहानी

भूली नहीं आज भी घटना, घटी आँख के जो आगे।
सोए भाव, उठी भव-ज्वाला, विरहजन्य दुख भी जागे॥
कैसे भूलूँ भला कहो तो नव-जीवन का घटना-जाल ?
जिसे लूट कर हुआ काल है उस दिन से ही मालामाल !!

नित हम दोनों बाल-बालिका, साथ खेलने जाते थे।
विविध प्रकार सदा बालोचित क्रीड़ा कर सुख पाते थे॥

प्रमुदित दोनो साथ साथ हम प्रेम-कली सरसाते थे।
मानों, प्रेम दिखा नव नित सुर-बालक को तरसाते थे !

कभी वाटिका में हम जाकर हार गूँथ कर लाते थे,
एक दूसरे की ग्रीवा में फिर हँस कर पहनाते थे !
होता कैसा भाव हृदय मे ? गिरा न यह बतला सकती !
लब्ध-प्रेम प्रेमी को ऐसी घटना ही जतला सकती !

मै था कृष्ण, तथा वह गोरी, मेघ, दामिनी–जैसे थे।
या, यों कहिये, कंज-कोश मे छिपे वराटक जैसे थे !
दीप-शिखा-सी मानस-गृह मे सदा उजेला रखती थी।
सुधा-स्रोत-सा बहता जब वह कुछ भी मुख से कहती थी !!

चंचल दीर्घ विलोक नेत्र नव उत्पल सकुचे जाते थे !
रुचिर केश-विन्यास देख घन अपनी पंक्ति हटाते थे !
रद-आभा सित-चन्द्र-ज्योत्स्ना-सम ही दृष्टि लुभाती थी !
बाँकी नाक नाक-शुक के भी रुचिर ठोर लजवाती थी !!

जब श्रम-जनित-स्वेद आनन पर अल्प बिन्दु विकसाता था,
चूती जैसे सुधा इन्दु से, वही दृश्य दिखलाता था।
जब वह जिधर बाल-गज गमनी-चंचल चितवन करती थी,
मानों, तब तब उधर चंचला द्युति छिटकाती फिरती थी !

बाहु-पाश से वेष्टित कर मम ग्रीवा जब अड़ जाती थी,
आम्रवृक्ष से लगी लता-सी तब वह मुझे सुहाती थी!
कंज-वृन्द-पूरित-वापी में जब हम दोनो जाते थे,
और लगा आपस में बाज़ी पङ्कज मे छिप जाते थे।

पङ्कज कौन, कौन मुख उसका नही समझ मे आता था!
आनन जान पकड़ता पङ्कज; फिर पीछे चकराता था!
जब हम रहते कभी कुञ्ज की छाया में सुख पाने को,
अपनी अपनी राम-कहानी सुनने और सुनाने को॥

आकर तभी मधुप पागल सा मुख पर फेरा करता था!
कुसुम-वल्लरी झलती थी वह मैं केवल मुख लखता था!
कर ताडन पाकर भी बहुधा नही मधुप जब हटते थे
आखिर हो लाचार वहाँ से तब हम भी चल देते थे!!

नही बहुत-सी बातें लिख कर जी का दुःख बढ़ाऊँगा।
हुई कौन-सी बात तदा अब घटना वही सुनाऊँगा॥
कहने का है तात्पर्य्य यह हम दोनो ही सुख के साथ।
रहते थे, पलते थे, जाते, जहाँ वहाँ हम दोनो साथ!!

इसी भाँति गत-बाल्यकाल पर आया जब यौवन का रंग,
आँख रसीली डरती उसकी, पर था वही हमारा ढंग!

कण्टक-पूरित प्रेम-मार्ग पर अब भी दौड़े जाते थे।
प्रेम वही, आलाप वही, बस उसी गान को गाते थे॥

उभय पक्ष के पिता देख यह सात्विक-प्रेम प्रसन्न हुए।
जोड़ी एक करें इन दो को; भाव शीघ्र उत्पन्न हुए॥
फिर क्या था? हम प्रणय सूत्र में बँधे शीघ्र हो कर के एक
"प्रणयी इससे बनूँ, रहूँ या प्रणय-हीन" यह पूजी टेक॥

वैवाहिक जब मन्त्रोच्चारण पण्डित जी करवाते थे।
या प्राणों को उभय पक्ष में थाती-सा दिलवाते थे॥
घूँघट-पट की ओट लोल दृग तीखे तीर चलाते थे!
कम्पित कर मम भीत हुए से पूजा-वस्तु उठाते थे!!

ख़ैर, किसी विधि पूर्ण हुआ वह कार्य गये घर के भीतर,
प्रमदा-जन-अवरुद्ध द्वार का "नेग" चुका भीतर सत्वर॥
थोड़ी देर बाद कमरे में नीरवता का वास हुआ।
तब मम शंकित जी का धीरे, उचित त्रास का नाश हुआ॥

सहसा यह कण्ठध्वनि मेरी कम्पित-सी बाहर आई—
प्रिये! कहो कैसे लगते हम? वह केवल कुछ मुसकाई!
फिर मैंने पूछा-"क्या घटना याद तुझे वे आती है?"
"नाथ! आज भी नेत्र सामने रह रह कर फिर जाती हैं।"

"नाथ नहीं पद-दासी बनती तो कॉरी ही मैं रहती !'
"प्रिये ! वही दुख सहते हम भी जिसको प्यारी तू सहती !"
घंटों बहा विनोदामृत, फिर हाय ! रङ्ग में भङ्ग हुआ !
चक्कर खाने लगी बुद्धि; फिर जी भी धड़का, दङ्ग हुआ !

"नाथ !" बोल चुप हुई ! और कुछ देर बाद फिर यों बोली—
घोली थी जो कर्ण-कुहर में मिश्री-सी, वह यों बोलीः—
"नाथ ! कलेजा कसक रहा मम, नहीं जानती क्यों ऐसा,—
शिर भी चक्कर लगा रहा है, दिखता है यम के ऐसा !!

हाय ! हाय ! यह लो ! देखो मम कैसा हृदय धड़कता है !
नाथ ! नाथ ! यह क्या ? क्यों मेरा भीतर कमल कड़कता है !!"
हुआ हाय ! हतबुद्धि, नहीं कुछ सूझ पड़ा क्या काम करूँ ?
कैसे दूँ उसको आश्वासन, औ कैसे मै धैर्य्य धरूँ !!

केवल पूछा, "प्रिये ! कहो तो और लोग को मैं लाऊँ ?
या, औषधि के लिये कहीं से योग्य वैद्य को बुलवाऊँ ?"
बोली—"नाथ ! यहाँ से जाकर क्या कुछ भी कर पाओगे ?
चले जायँगे प्राण भला तब किसको दवा पिलाओगे ?"

"सुनलो अन्तिम नाथ ! प्रार्थना यदि कर उसे दिखाओगे,
तो तुम मुझे स्वर्ग में भी रख हा ! प्रसन्न कर पाओगे !!

करना नहीं नाथ!" बस केवल यही शब्द बाहर आये!
हम ने कहा-' कहो हृदयेश्वरि! वह भी करके दिखलायें!!"

ओष्ठ-प्रकम्पन हुआ अरे! पर हुआ वाक्य वह पूर्ण नहीं
वज्राहत-सा हुआ दैव! युग हृदय हुए बस चूर्ण यहीं!
अधर-स्पन्दन रुका, हाय! निस्पन्द हुआ वह बाला-तन!
यद्यपि कहा कृतान्त दुष्ट से रहने दे बस एक क्षण!!

रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र'

आपका जन्म सन् १९०३ ई० के नवम्बर मास में हुआ था। आप भागलपुर-निवासी मैथिल ब्राह्मण हैं। माता-पिता के वर्तमान रहने पर भी आपका पालन-पोषण आपके मामा के द्वारा हुआ। आपके मामा की आर्थिक अवस्था उस समय बहुत अच्छी थी। अतएव, आपका बाल्यकाल अमीर बालकों-जैसा व्यतीत हुआ।

पाँच-छः वर्ष की अवस्था से ही आपको हिन्दी तथा अंगरेजी की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने लगी। लगभग पाँच वर्ष तक देहात की पाठशालाओं मे पढ़ने के बाद आपने अपर प्राइमरी की परीक्षा पास की। इसी बीच मे आपने अपने रसोइये से बंगला पढ़ना-लिखना सीख लिया। इसी समय से आपको कविता करने का शौक़ हुआ। बस क्या था, समस्या-पूर्त्ति तथा कवित्त आदि बनाने लगे।

आपके पिता की बड़ी इच्छा थी कि आप अंगरेजी पढ़ें। अतएव आपके मामा ने आपका नाम सन् १९१५ ई० में भागलपुर जिला स्कूल मे लिखा दिया। आपका विद्यार्थी-जीवन बड़ा अच्छा रहा। प्रत्येक श्रेणी मे आप सर्वप्रथम होते थे।

सन् १९२२ ई० में आप पटना विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने

बिहार के नवयुवक हृदय

में आपका मन पूर्ण रूप से कभी नही लगा। खेल-कूद तथा बाहरी पुस्तकों के पढ़ने में ही आपका अधिकांश समय चला जाता था। इन्ही कारणो से आप स्कूल मे बहुत कम उपस्थित होते थे।

हिन्दी तथा अंगरेजी साहित्य मे आप प्रारम्भ ही स अच्छी योग्यता रखते है। स्थानीय सभा समितियो मे आप सदैव से भाग लेते आ रहे हैं। अपने विद्यार्थी-जीवन मे आपने व्याख्यान तथा लेखादि की प्रतियोगिता मे अनेको पारितोषिक तथा सोने और चाँदी के पदक प्राप्त किये।

सन् १९२२ ई० मे आपका कालेज-जीवन प्रारम्भ हुआ। १९२४ ई० मे आपने आई० ए० की तथा १९२६ में बी० ए० की परीक्षा पास की। कालेज में आपको साहित्यिक तथा सार्वजनिक कार्यों मे भाग लेने का और अधिक मौका मिला। आप नाट्य-कला के अच्छे जानकार हैं। बराबर कालेज मे किसी भी उत्सव के समुपस्थित होने पर आप अभिनय मे प्रमुख भाग लेते थे। 'कौमुदी' नाम की एक हस्तलिखित मासिकपत्रिका भी आप निकालते थे।

बी० ए० पास करने के बाद आपकी इच्छा हिन्दी लेकर एम० ए० पढ़ने की थी, परन्तु कई आकस्मिक घटनाओं के कारण आपने अपना उक्त विचार छोड़ दिया। १९२७ ई० के मार्च मास से आप भागलपुर तेजनारायण जुबिली कालेजियट स्कूल मे सहायक शिक्षक का काम करते है। अब आपकी इच्छा प्राइवेट रूप से एम० ए० की परीक्षा देने की है।

आप सदा से आमोदप्रिय हैं। गाने-बजाने मे आपको विशेष शौक़ है। व्यायाम से आपको विशेष प्रेम है। आप प्रायः सभी अंगरेजी खेलों मे दक्ष हैं। इतना होते हुए भी आपका अधिकांश समय साहित्य-सेवा मे व्यतीत होता है। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं जो निकट भविष्य में प्रकाशित होंगी। आपकी रचनाएँ अधिकांशतः 'चाँद' में प्रकाशित हुआ करती हैं। आप शीघ्र ही मासिकपत्रिका निकालने वाले हैं। ईश्वर आपको शक्ति-प्रदान करे जिससे आप अपने उद्योग से हिन्दी का मुख उज्ज्वल करने मे बराबर हाथ बटाते रहें।

प्रेम-परिणाम

प्रेम का नाता कमल से जोड कर
क्या मधुप होता सुखी संसार में ?
जिन्दगी की रात्रियाँ इसकी सभी,
बीतती हैं बन्द कारागार में॥
रसभरी आवाज़ सुनकर बीन की
लीन होता है मृगा उस तान में।
पर अचानक बाण के आघात से
जान खोता है वही एक आन में॥
मानकर प्रियतम शलभ दीपाग्नि को
प्रकट करता प्रेम का व्यापार है।

किन्तु, चुम्बन के समय ही तो उसे
दीप कर देता जलाकर छार है ॥
प्रेम के रँग से सुरञ्जित जीव का
विश्व में, देखो ! अनूठा काम है ।
किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य्यकर
प्रेमियों के प्रेम का परिणाम है ॥

धिक्कार

द्वेष की ज्वाला धधकती है जहाँ,
स्वार्थ ही का बस, जहाँ अधिकार है ।
जो बना है क्रोध का अड्डा असल,
उस हृदय को सर्वदा धिक्कार है ॥
दीन-दुखियो को बिलखते देखकर,
फट न जिससे वह निकलती धार है ।
हो न हर्षोत्फुल्ल जो पर-विभव पर,
उस निरर्थक नेत्र को धिक्कार है ॥
सामने ही दुर्बलों पर सबल का
हो रहा जो घोर अत्याचार है ।
देखकर यह है फड़क उठती न जो,
उस भुजा को सर्वदा धिक्कार है ॥
सद्वचन जिससे कभी निकला नही,
दुर्वचन का ही बना जो द्वार है ।

'आह' कढ़ती व्यर्थ ही जिससे सदा
उस 'मरे मुँह को' सदा धिक्कार है ॥
जो सुपथ में अग्रसर होता नहीं,
पर कुपथ मे हरघड़ी तैयार है।
जा कुचलता स्वत्व औरों का समुद,
उस चरण को सर्वदा धिक्कार है ॥

किस ओर ?

न उनके उर मे रहा विवेक,
हुए अकरुण मेरे चितचोर।
कालेजा पाहन-सा कर नाथ !
निकल भागे मम बाँह मडोर ॥
प्रणय का ऐसा अभिनव हृदय,
कहीं देखा था जग में और ?
किया छल उनने मुझसे खूब,
अकेली छोड़ गये इस ठौर ॥
यहाँ है मार्ग कण्टकाकीर्ण,
तिमिर भी फैला है घनघोर।
बिरहते हिस्रक जन्तु अनेक,
यही है दुर्गम कानन घोर ॥
विकल हूँ हाय ! प्रणय-धन-हीन !
अरे ! कोई दे करुणा-कोर।

पकड़ कर मेरा कम्पित हाथ,
बतादे जाऊँ अब किस ओर ?

मुरलिका

मुरलिके ! सरस सुधा-अभिषिक्त,
सुनाजा फिर अपनी मृदु तान।
निहित है—अन्तर्हित है जहाँ,
विकल प्रणयी का अन्तर्गान !!
मदीय-स्मृति-पट पर अविलम्ब,
भव्य-भावुकतामय अभिराम।
अङ्कित करती सजनि ! चित्र जो
दिखा देती जो दृश्य ललाम॥
झनक पा जिसकी मधुमय अहो !
राधिका भी तजती थी मान।
थिरकने लगती मुख पर तथा,
प्रणय-धन-मिलन मधुर मुसकान !!
तरणिजाकी लहरी-ध्वनि-सङ्ग,
मचलती चलती थी जो तान।
मरी-सी मूक प्रकृति मे शीघ्र,
डाल देती थी जो नव प्रान॥
(यहाँ भव-भीति-व्यथा से व्यथित,
पड़ा हूँ मुरलि ! बना म्रियमान,)

सुना जा एक बार फिर वही,
मुरलिके! सुधा-सनी-सुठि तान!!

अन्तिम विश्राम

जब समाप्त कर भृत्य तुम्हारा निज जीवन-अभिनय का काम।
प्रभो लुढ़क जाये अवनी पर करने को अन्तिम विश्राम॥

तब इसके विगलित अङ्गों पर हो विच्छुरित अलौकिक कान्ति।
वदन-देश पर हो विराजती स्वर्गपुरी की सुषमा, शान्ति॥

चिन्ता-दावा-जटिल-ज्वाल से इसका अन्तःपुर हो दूर।
किसी तामसिक भावों से हो भाल न इसका वङ्किल क्रूर॥

व्यथित न हों दुर्भाव-लहर से इसके मन-मानस के कूल।
सत्य-भाव की ललित लहरियाँ उठती रहें वहाँ अनुकूल॥

स्वजनवृन्द की छाया में सन्ताप-रहित, आनन्द-विभोर।
यह अन्तिम विश्राम करे निज नयन डाल तव पद की ओर॥
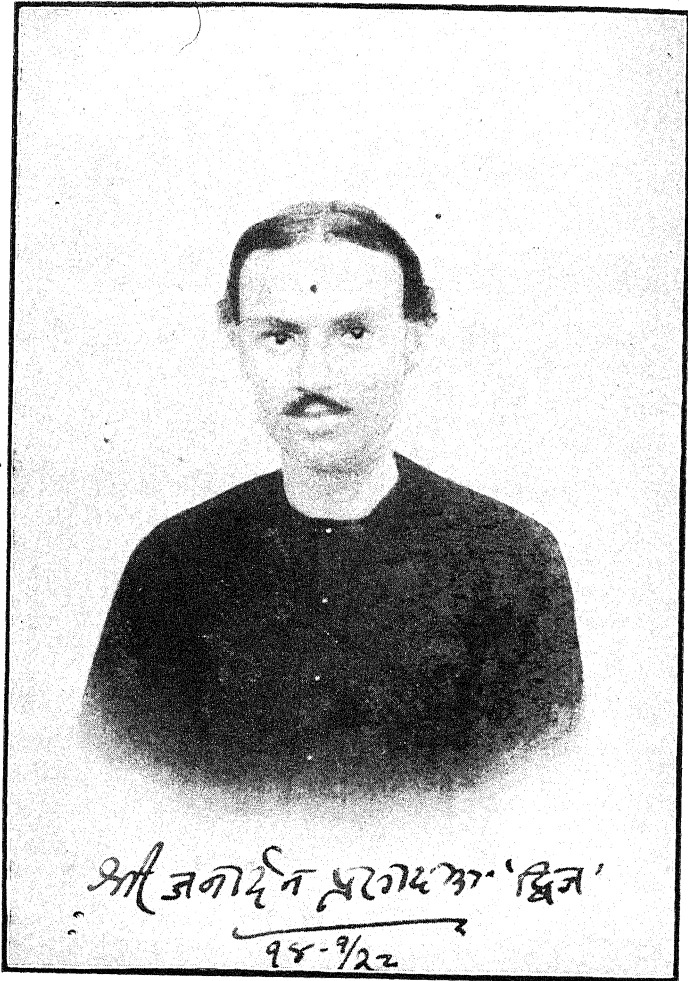
श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

पं० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' बिहार के उन होनहार रत्नों में हैं जिनपर हिन्दी-संसार को गर्व हो सकता है। छायावाद के कवियों में आपका एक विशेष स्थान है।

'द्विज' जी का जन्म २४ जनवरी सन् १९०४ ई० को भागलपुर ज़िले के रामपुरडीह नामक गाँव में हुआ था। बचपन में आप प्रायः रोगग्रस्त रहा करते थे। आरम्भ ही से आप कुशाग्रबुद्धि हैं। लोअर प्रा० स्कूल से स्कॉलर्शिप लेकर आपने परीक्षा पास की। गाँव के मिडिल स्कूल से अपर परीक्षा पास करने पर अपने पिता पं० उचितलाल झा के साथ आप कुमैठा मि० ई० स्कूल मे चले गये।

कुमैठा आकर आपको पं० जगदीश झा 'विमल' का सहवास मिला। आपकी रुचि और प्रतिभा देखकर 'विमल' जी ने आपको कविता-सम्बन्धी बहुत-सी बातों का ज्ञान करा दिया। आपकी रचनाओं को वे बडे प्रेम से सुधार दिया करते थे। आप दिन-रात कविता के पीछे पागल बने रहते थे। आपके पिता जी की सदैव यही इच्छा रहती कि आप अपनी कक्षा मे सदैव प्रथम रहें, परन्तु आपकी अभिलाषा अपनी कविताओं को पत्र-पत्रिकाओं में छपी देखने की थी।

कुमैठे में आपको एक वस्तु और मिली। वह है वक्तृत्व-

कला। आप वहाँ नाटक में बड़ी सफलता से पार्ट करते थे। आपकी जोशीली और रसभरी बातें सुनकर लोग गद्गद् हो जाते थे। दो वर्ष बाद आप वहाँ से मिडिल की परीक्षा छात्रवृत्ति के साथ पास कर भागलपुर जिला स्कूल में प्रविष्ट हुए। यहाँ भी आप थोड़े ही दिनों में अपनी वक्तृत्व शक्ति और कविता के बल पर सर्वप्रिय हो गये।

उन दिनों आप लम्बे पत्र लिखने के बड़े आदी थे। उन पत्रों की शैली पर लोग मुग्ध हो जाते थे। सच पूछिये तो वे पत्र आपकी गद्य-रचना के उत्कृष्ट नमूने हैं। उन दिनों आप जिस छात्रालय में रहते थे, उसके अध्यक्ष महोदय आपके दूर के सम्बन्धी थे। वे कुछ रूखे और भीरु स्वभाव के थे। उनके व्यवहार से कुपित होकर आपने एक दिन स्वयं ही असहयोग-काल के पहले की सारी रचनाओं को नष्ट कर अध्यक्ष महोदय को निर्भय कर दिया।

इसके बाद ही स्कूलों और कालेजों से असहयोग करने के लिए गांधी जी की आज्ञा हुई। अपने स्कूल के छात्रों का नेता बन आपने स्कूल से सम्बन्ध तोड़ लिया। अपनी वक्तृत्व-शक्ति के सहारे आप शीघ्र सर्वसाधारण में ख्यात हो गये। भागलपुर के सुप्रसिद्ध असहयोगी नेता दीपनारायण बाबू आपको विशेष प्यार करते थे। आपके घर के लोग आपके असहयोगी बन जाने के कारण बहुत असन्तुष्ट हो गये थे। अतः आप बहुत कम घर जाया करते थे।

१६२१ का साल आपका केवल व्याख्यान देने में ही बीता। नाममात्र के लिए ही आप भागलपुर राष्ट्रीय विद्यालय के छात्र थे। १६२२ में एकाएक आपका भाव बदल गया। आगे पढ़ने की इच्छा से भागलपुर छोड़ आप सीधे प्रयाग चले गये। वहाँ आपने पं० कृष्णकांत मालवीय से भेंट की। वे आपकी साहित्यिक योग्यता को जानकर बहुत प्रसन्न हुए और शीघ्र आपको काशी विद्यापीठ मे पढ़ने के लिये भेज दिया।

यहाँ आपको छात्रवृत्ति मिलने लगी और खर्च का सारा प्रबन्ध हो गया। इन दिनो विद्यापीठ के पाठशाला विभाग के प्रधान अध्यक्ष प्रेमचंद जी थे। वहाँ रहकर आपकी कई राजनैतिक कविताएँ 'आज' और 'अभ्युदय' में प्रकाशित हुईं। विद्यापीठ मे भी आपके व्याख्यानों ने आपको शीघ्र ही सर्वप्रिय बना दिया। यहाँ एक वर्ष पढ़ने के बाद आप सेंट्रल हिन्दू स्कूल के हेडमास्टर पं० रामनारायण मिश्र जी से मिले और उनकी राय से हिन्दू स्कूल में पढ़ने लगे। यहाँ भी आप अपने गुणो के कारण लोकप्रिय हो गये, जिससे पढ़ने के खर्च का प्रबन्ध हो गया।

असहयोग करने के बाद से हिन्दू स्कूल मे आने तक का आपका समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। माँ-बाप से एक पैसा न पाकर भी आप स्वावलम्बन के सहारे धीरे-धीरे आगे बढते गये और आज तो उस स्वावलम्बन में आप और भी

बढ़ गये हैं। श्रद्धेय मिश्र जी ने आपको अपने बेटे की तरह अपनाया और आज तक उन्हीं की कृपा से आप अग्रसर होते जा रहे हैं। इस स्कूल में आ जाने से आपके घर के लोग भी प्रसन्न हो गये।

हिन्दू स्कूल आपकी जीवन-क्रांति का स्थान था। यहीं आपके हृदय में वास्तविक कवि-जीवन की प्राण-प्रतिष्ठा हुई। आज तक आप केवल राष्ट्रीय भावों की कविताएँ लिखते आ रहे थे, किन्तु अब प्रवाह बदल गया। आप धीरे-धीरे अपने हृदय की अधीर भावनाओं का परिचय पाने लगे और वे ही अब कविता के रूप में प्रगट होने लगी हैं। आप केवल अच्छी कविता ही नहीं करते, कहानियाँ भी अच्छी लिखते है।

हिन्दू स्कूल मे जहाँ आप कवि और वक्ता के रूप से प्रसिद्ध थे, आप विद्यार्थी के नाते ऊँची श्रेणी के प्रतिभा-सम्पन्न नहीं कहे जाते थे। गणित और भूगोल से आप भागते थे। किन्तु फिर भी आपने प्रवेशिका परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। उसी साल १९२५ ई० मे बिहारी छात्र-सम्मेलन में आपने हिन्दी तथा अंगरेजी में सर्वप्रथम होकर स्वर्णपदक प्राप्त किया था। तत्पश्चात् आपने हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। यहाँ इस समय आप बी० ए० कक्षा में अध्ययन करते हैं। यहाँ भी अपने उपर्युक्त गुणो के कारण आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। इस समय आपकी रचनाएँ हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं मे सदैव प्रकाशित हुआ करती हैं। इस

समय साहित्यिक रचनाओं से जो कुछ मिल जाता है उस से और ट्यूशन से आप अपना खर्च चलाते हैं। हाँ, कभी कभी घर से भी कुछ मिल जाता है। स्वयं ही अपना भोजन बनाते तथा कपड़ा साफ करते हैं। भगवान् आपको दीर्घायु करें।

माँ !

यह दारुन अपमान-भरा दुख अब न सहा जाएगा,
नस-नस में लग आग गई है चुप न रहा जाएगा।
धार बहा दूँगा अपने खौले लोहू की भू पर—
हाथ उठाया आज किसी ने भी जो तेरे ऊपर।

लख-लख मेरी ओर विलख, टपका नयनों से मोती—
इस कातरता से, दिल दहला कर, है क्यों तू रोती ?
वीर-तनय हूँ, लाज बचाऊँगा मरदानेपन की;
भेंट चढ़ा दूँगा तेरे चरनों पर इस जीवन की।

कौन भला जनमा, रन में जो मुझको ताव दिखावे ?
आँखों पर चढ़ जाय, और फिर जीता रहने पावे ?
छीन सकेगा विजय-पताका कौन करों से मेरे ?
यही लाल, जड़ 'मुकुट' धरेगा माँ ! मस्तक पर तेरे।

जाओ !

रोकूँ कैसे ? "मत जाओ" कह—
उलझाने का अधिकार नही !
"जाओ" कहते ही रह जाता,
जीवन में कुछ भी सार नही !
है ज्ञात मुझे जाते हो रण में
विजयी वीर कहाने को—
माता का मान बढ़ाने को,
जीवन की ज्योति जगाने को।
ऐसे अवसर पर क्या कह कर,
तेरा समुचित सत्कार करूँ ?
"जाओ" कह विरहानल-ज्वाला में
जल जल मै दिन-रात मरूँ ?
"हाँ ?" अच्छा, तो जाओ,
युग लोचन-निर्झर योंही झरने दो।
प्राणेश ! सफल जीवन कर दो,
चरणों पर अश्रु बिखरने दो।

जिज्ञासा

कह कर ही क्या रह जाओगे ?
या सुधि भी लेने आओगे
मेरे प्राणाधार ?

मुझ दुखिया की करुण 'आह' का,
विरहाकुल उर-विषम दाह का,
प्रलय-जननि नव उत्कंठा से
उमड़े दारुण दुख-प्रवाह का,
अन्त न होगा क्या इस
जीवन मे अब स्नेहागार ?

विधियुत तव पूजोपचार कर,
पद धोने को सलिल ढार कर,
उत्कंठा-आँगन से बाहर
आ, पथ पर दृग दीन बिछाकर—
विह्वल हो हूँ खड़ा कभी से
खोल कुटी का द्वार;
नही पर आते तुम इस ओर,
बने क्यो इतने देव, कठोर ?
कहो क्या है न तुम्हें मुझ
दीन अकिंचन की पूजा स्वीकार ?

चरण पर चढ़ने को सुकुमार
सिसकती कलियाँ ये इस ओर !
कामना होकर परम अधीर—
उठी जाती छूने नभ छोर !

किन्तु तुम हे छबि के आगार !
न आते हो, तरसाते हो, करते हो
व्यर्थ सकल शृंगार !!

प्रतीक्षा है यह परम विराट,
जोहता हूँ अधीर बन वाट;
बताओ, कब तक आओगे
हे मेरे जीवन के सुख-सार ?

अश्रु-कण

कलित किसलय-से अति सुकुमार
विधुर मानस के मृदु उच्छ्‌वास,
नयन-जल मे परिणत कर आज
लिए आया हूँ तेरे पास।
भरे इसके कण कण में तीव्र
जलन के हैं आकुल संदेश;
बतावेंगे तुझको जो देव !
कठिन हैं कितने मेरे क्लेश।

रही मुझमें अवशेष न आज
तड़प सकने तक की भी शक्ति;

किए रहता निशि-दिन बेचैन
प्रलय, प्रकटा अपनी अनुरक्ति !
करूँ क्या ? रुक न सकेगा और
अधिक अब, उमड़े उर का ज्वार।
रोक मत, रोने दे प्राणेश !
रुदन ही है मेरा आधार।

किस पर ?

आशा का पलना मम प्यारा, टूट गया झूलूँ किसपर ?
था जिसका अभिमान, गया वह भी, अब फूलूँ किसपर ?
हृदय-विपिन जल गया, कामना-ललित लतायें, छार हुईं;
छवि वह ढूँढ़े भी न रही मिल, आज भला भूलूँ किसपर ?

विस्मृति-पथ का पथिक निठुर, क्या जान सकेगा मेरा क्लेश ?
कौन दृगों के जल से प्लावित करने देगा चरण-प्रदेश ?
जीवन की यह 'करुण पहेली' फिर मैं समझाऊँ किसको ?
मुझ दुखिया के लिए अवनि पर रह न गया क्या सुख का लेश ?

क्रन्दन-ज्वार-भरे आकुल उर का यह करुण घात-प्रतिघात—
मर्मभरी मम मृदुल वेदना-मय 'अन्तर्जीवन' की बात;
कैसे कोई जान सकेगा ? दीन-दुखी पर दया किसे ?
सुख का साथी विश्व; न हो फिर क्यों मुझपर निष्ठुर आघात ?

"सहलो दुख रह मौन" सांत्वना यही सबल मेरा आधार;
निष्ठुर पीड़न ही है मेरी मधुर प्रीति का प्रिय उपहार !
फिर किस चिर सुख की अभिलाषा पर अपना बलिदान करूँ ?
अमर वेदना ही हो मेरे सकल सुखों का मीठा सार।

पथिक से

पथिक ! रुक जा पल भर को और,
सुनाये जा फिर से वह गान—
मिली जिसमे है मेरी 'आह'
और उनकी निष्ठुर मुसकान।

व्यथातुर मुझ दुखिया के भग्न
हृदय का मधुमय करुण विहाग
सुनाये जा; कुछ कम हो जाय
सतत झुलसाने वाली आग !

मिलें 'वे' या न मिलें, हो जाय
हृदय में धड़कन-सृष्टि नवीन;
मुझे करदे फिर से वह गान
सुना, उस पावन सुधि मे लीन।

चरण-रज हो जाऊँगा, क्या न
करेगा यह विनती स्वीकार ?
पथिक ! गा फिर से, ले उपहार
नयन के ये मोती दो-चार।

प्रतिरोध

मत उँड़ेलता जा रस इतना
झूम रहा मन मतवाला।
छलक पडेगा, है छोटा-सा
मेरे जीवन का प्याला!

वैभव कितना बाँध सकूँगा,
फटे हुए इस अञ्चल मे?
बेहोशी मे पहनाता जा
यों न प्यार की मृदु माला!

सुख की इस अस्थिर धारामें
थिर कब तक रह पाऊंगा?
सच कहता हूँ, रोक, नही तो
तिनके-सा बह जाऊँगा!

यही हर्ष बन क्लेश-अनल,
कल से आवेगा झुलसाने;
अन्तर की वह दारुण ज्वाला,
फिर कैसे सह पाऊँगा?

प्रेरणा

जीवन की शिथिल तरङ्गें,
सोई हैं उन्हें जगा दो।

मिट कर ऊपर उठ जाऊँ,
ठोकर वह एक लगादो।
अविराम सदन की स्मृति में
सुख-दुख का अमर मिलन हो,
मेरी अभिलाषाओं का
पलना प्रिय ! तेरा मन हो।

अन्तर्जलन से

अयि अमर शान्ति की जननि जलन !
अक्षय तेरा शृङ्गार रहे।
जीवन-धन-स्मृति सा अमिट
निरन्तर तेरा–मेरा प्यार रहे।
धधकें लपटें अन्तरतर में,
तेरे चरणों पर शीश झुके,
तूफ़ान उठें अङ्गारों के
उर-प्रलय-सृष्टि का स्रोत रुके।
हाँ, खूब जलादे, रह न जाय
अस्तित्व; और जब 'वे' आवें—
चरणों पर दौड़ लिपट जाने वाली
मेरी विभूति पावें।

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री अनिरुद्ध लाल 'कर्मशील'

अनिरुद्धलाल 'कर्मशील'

बाबू अनिरुद्धलाल 'कर्मशील' बिहार के एक होनहार कवि हैं। आप बहुत कम लिखा करते हैं, परन्तु आपकी रचनाएँ बड़े मार्के की होती हैं। भविष्य में हिन्दी को आपसे बहुत बड़ी आशा है।

आपकी अवस्था इस समय लगभग २४ वर्ष की है। आपके पिता का नाम बाबू मुकुन्द साहु है। आप दरभंगा जिलान्तर्गत ताजपुर नामक ग्राम के निवासी हैं। आपके पिता एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

आपकी शिक्षा बाल्यकाल में आरम्भ हुई। आप पढ़ने में तेज थे। सन् १६१६ ई० में आपने पटना विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी मे मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की। इस परीक्षा में आप प्रान्तभर मे हिन्दी मे सर्वप्रथम हुए थे। अतएव आपको 'भूदेव-हिन्दी-मेडल' मिला।

मैट्रिक पास करने के बाद दो वर्ष तक आपने मुजफ्फरपुर कालेज में अध्ययन किया। असहयोगकाल मे, आई० ए० परीक्षा के कुछ ही दिन पहले आपने कालेज छोड़ दिया। कालेज छोडने के बाद आपने असहयोग-आन्दोलन में कार्य करना आरम्भ कर दिया।

स्कूल में पढ़ते समय आप अपने मित्रों को पद्य में ही पत्र

लिखा करते थे। आपको इसी प्रकार कविता करने की चाह बढ़ी। आप अपनी इच्छा से कविता बनाते हैं। अपनी रचनाओं को आपने जीविका का साधन नहीं बनाया है। इसलिए आप अधिक रचना नहीं करते। तथापि आपने सैकड़ों फुटकल रचनाएँ की हैं जो अधिकांश पत्रों मे प्रकाशित हो चुकी हैं। आप कभी-कभी गद्य लेख भी लिखते हैं, परन्तु बहुत कम। आपकी जीविका का साधन व्यवसाय, महाजनी तथा जमीन्दारी है। इन्हीमे फँसे रहने के कारण आप विशेष रूप से साहित्य-सेवा नहीं कर सकते। आशा है, भविष्य में आप साहित्य-सेवा की ओर कुछ विशेष ध्यान देकर मातृभाषा तथा अपनी मातृभूमि का कल्याण करेंगे।

प्यार का अन्त

फूल नहीं हैं माला में अब बचा हुआ है डोर
स्वप्न भंग हो गया शेष है उसकी याद विभोर
वीणा बन्द हुई कानों में बाकी है झंकार
उतर गया है नशा बचा है केवल मात्र खुमार।
होकर ज्योति-विहीन दीप है केवल मृतिकापात्र
पोथी के पत्रे विनष्ट हैं बचा आवरणमात्र
धब्बे पट पर बने हुए हैं छूट गया है रंग
माया का था महल उड गया माया ही के संग।

सूख सूख कर हो जाती है जैसे सरिता क्षीण
हो जाता है भीग भीग कर जैसे रंग मलीन
उड़ जाता है धीरे धीरे जैसे सरस सुवास
मिट जाती है क्रम क्रम से जैसे आकुलकर प्यास।
एक प्रेम का अभिनय था बस वह हो गया समाप्त
स्वर मानो मिट गया प्रतिध्वनि केवल नभ में व्याप्त
हुई मिठाई शेष, शेष जिह्वा पर केवल स्वाद
शिथिल हो गया हो शरीर जैसे विहार के बाद।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मै भी हूँ तू भी है, पहला किन्तु नही व्यवहार
अन्त हुआ काफूर प्रमाणित हम लोगों का प्यार!

तलवार-सिद्धान्त

तलवार उठाओ कहते हो किसपर तलवार चलाओगे?
इस अन्ध जोश का दमन करो सोचो क्या लाभ उठाओगे।
तुम वार करोगे अब किसपर दुश्मन भी तुम्हें दिखाता है?
है शत्रु कहाँ? यह तो अपना भाई ही आगे आता है
तुम इसपर हाथ उठाओगे इसको चिर शत्रु बनाओगे?
इस अन्ध जोश का दमन करो सोचो क्या लाभ उठाओगे।
क्या हो भाई की छाती पर ही पहली चोटें भालों की?
तेरा रिपु बलि देगा पहले तेरी ही माँ के लालों की

चाहे वे गिरे मदद में हों जो गोरे चमड़े वालों की
चाहे तुम गिरो एक ही है कम, संख्या होगी कालों की
दुश्मन की शक्ति न टूटेगी तुम अपना नाश कराओगे
इस अन्ध जोश का दमन करो सोचो क्या लाभ उठाओगे।
क्या सोच रहे दुश्मन अपने इसका है तुमको ज्ञान नहीं?
अपने ही जो हैं मिले उधर उनका तुमको कुछ ध्यान नहीं?
क्या सोचा है तुमने उनको? क्या वे भारत-संतान नहीं?
वे भूल रहे है भोले हैं विद्रोही बेईमान नहीं
तुम दाना हो नादां हैं वे क्या इससे उन्हें सताओगे?
इस अन्ध जोश का दमन करो सोचो क्या लाभ उठाओगे।
धीरज का है बस मोल यहाँ थोड़े में क्या अकुला जाना!
भूले से भी न हृदय में तुम हिंसा का भाव कभी लाना।
होवे भी न कहीं ग़लती ऐसी पीछे जिससे हो पछताना
संभव न कभी तलवार दिखा भाई को अपने समझाना
क्या पावोगे स्वातंत्र्य हरे निष्फल गृह-कलह मचाओगे
इस अन्ध जोश का दमन करो सोचो क्या लाभ उठाओगे।

विधाता के प्रति

विधाता यह कैसा व्यापार?
हो स्वजाति के हाथों ही जो जीवन का संहार।
करे बाज निर्बल पखेरुओं पर नित अत्याचार
निरपराध पशुओं का करता है मृगराज शिकार!

सब से अद्भुत बात मनुज भी रख कर बुद्धि अपार
दानव सा करता है मानवकुल पर अत्याचार !
दूर करो यह विषम विषमता हे जग के कर्त्तार
रक्खो जग के संचालन में समता का व्यवहार।

पथिक के प्रति

पथिक तुम फिर जाओ निज ग्राम
यहाँ न ठहरो इस उपवन में नही सुखद विश्राम।
नही रहा अब वह उपवन का प्यारा सुखद बसन्त
कर छोड़ा दुर्मति माली ने इसकी श्री का अन्त।
तोड़े हुए कही हैं पल्लव मसले अनुपम फूल
टूटी हुई कहो पर कलियाँ फाँक रही हैं धूल।
हरे फलों का हाय हुआ है कैसा करुण विनास
उजडे ही हैं कहीं अभागी चिड़ियो के आवास।
उजड़ा पुजड़ा दीख रहा है हाय मालती कुञ्ज
जिसे प्यार करता था अतिशय शोकित प्रणयी-पुञ्ज।
बहता है सब ओर भयानक अत्याचार समीर
बन्द हुए वे मधुर चहकनेवाले सुन्दर कीर।
कौन करेगा स्वागत तेरा अहो पथिक अनजान !
लौटो दुखित हृदय से होगा क्या आतिथ्य प्रदान !

बधिक के प्रति

बधिक तू बहुत हुआ हैरान
छिपी न रही मगर वह तेरी कलई रे नादान।
खड़ी हरे पत्तों की की है तूने टट्टी खूब,
पर टट्टी के पीछे कपटी, क्या रक्खा है तान ?
दाने छींट किया है क्या ही सज्जनता का काम
पर रच रच कर तू छूरे पर क्यो धरता है सान।
कम्पा बीच लगा कर लासा रख कर खोतों बीच
हट कर तरु से दूर बना बैठा है क्या अनजान।
कैसा छल है, हममें से ही कुछ को रख कर साथ
उन्हें सिखाया है स्वजाति के व्यर्थ खून की बान।
कहना मान छोड़ यह निर्दय धन्धा रे सैय्याद
हमें सुनाने दे उड़ उड़ कर जग को मीठी तान।

परदेशी से

तुम्हें भी वही मिलेगा प्यार
मत कर रे परदेशी तू माता से कपटाचार
सब से पहले एक पथिक का हुआ यहाँ अवतार
कहकर हमको असुर घृणा का उसने किया प्रसार।
उसके बाद दूसरे आये जो टपकर दीवार
रक्खा काफिर नाम हमारा चमकाई तलवार।

दोनों रहे मचाते घर मे पहले कुछ दिन रार
पर अपने बन गये अन्त मे बना एक परिवार।
परदेशी, अब तू आया है करके सागर पार
काला कहता है हमको करता है अत्याचार।
प्रगट सभ्यता शैशव तेरा करता है व्यवहार
पर तू भी तो मिल जायेगा एक दिन अरे गँवार।
रह जा अगर रहा तू चाहे हमें नहीं इनकार
क्या करना तकरार विदेशी, रहना है दिन चार।
छोड़ कुटिलता सुख से रह जो सब अभिमान बिसार
बन्द न होवे तेरे हित भी माँ के घर का द्वार।

रामजीवनशर्मा 'जीवन'

श्रीरामजीवनशर्मा 'जीवन' का जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण १ गुरुवार संवत् १९६१ वि० को मुजफ्फरपुर जिले के मरवन नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू अलख-नारायण सिंह है। आप भूमिहार ब्राह्मण जाति के हैं।

लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में आपका शिक्षारम्भ गाँव की पाठशाला में हुआ। उस समय से १९२० ई० तक आपका पढ़ना जारी रहा। असहयोग के प्रारम्भ काल ही में आपने पढ़ना छोड़ दिया। उस समय आप हाई स्कूल की कक्षा में अध्ययन करते थे। स्कूल छोड़ने के बाद आप घर ही पर स्थायी रूप से रह कर अध्ययन करने लगे। हाँ, उस समय की सभा-समितियों में भी आप बराबर भाग लिया करते थे।

हिन्दी-पद्य-रचना का शौक आपको लड़कपन ही से है। लगभग १३ वर्ष की अवस्था से आप कवित्त, सवैया आदि बनाने लगे थे। इस समय कोई साहित्यिक पथ-प्रदर्शक नहीं मिलने के कारण आप देहाती गीत, गजल तथा होली आदि ही बनाते रहे। धीरे-धीरे सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने की ओर आपकी अभिरुचि बढ़ी। फिर क्या था, पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएँ भेजने लगे।

श्री रामजीवन शर्मा 'जीवन'

१६२१ ई० में आपको पिंगल तथा अलंकार आदि पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। १६२२ ई० में मुजफ्फरपुर में 'पद्य-पाठ-परिषद्' की स्थापना हुई। इस परिषद् में आप सदैव बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। इसी समय आपको कई साहित्यिक नवयुवकों का साथ हुआ। फलस्वरूप आपका साहित्य-प्रेम और भी दृढ़ हो गया। साहित्य-सम्मेलन तथा कवि-सम्मेलन मे आप बड़े उत्साह से योग देने लगे।

१६२६ ई० में आप दिल्ली गये। वहाँ लगभग एक वर्ष तक आपने 'महारथी' के सम्पादकीय विभाग मे कार्य किया। परन्तु बीमार पड़ जाने के कारण आपको घर लौट आना पड़ा। बीमारी दुःसाध्य थी, अतएव डाक्टर के आदेशानुसार आपको एक वर्ष तक साहित्य-सेवा से सर्वथा अलग रहना पड़ा। इधर फिर आपने लिखना प्रारम्भ किया है।

आपकी रचनाएँ प्रताप, मतवाला, देश, विश्वमित्र, भविष्य, किसानमित्र, गोलमाल, भूमिहार-ब्राह्मण-पत्रिका, ज्योति, महारथी, बालक, हिन्दूसंसार, धर्मवीर, आर्यकुमार, विद्यार्थी आदि पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती रही हैं। आप हिन्दी, बंगला और अंगरेजी की जानकारी रखते हैं।

ईश्वर आपको दीर्घायु करे, जिससे आप मातृभाषा की अधिकाधिक सेवा कर सकें। आपका उद्देश्यवाक्य है—

"अपनी भाषा है भली, भलो आपनो देश।
जो कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्र-सन्देश॥"

आत्मोपदेश

कुछ दिन में झड़ जायगा, भू पर बन कर धूल।
प्रभु-चरणों पर दे चढ़ा, 'जीवन' जीवन-फूल॥
बुझने दे चिंता न कर, स्नेह रहित निज दीप।
'जीवन' तम-मय मार्ग का, है अब अंत समीप॥
अब किंचित् भी देर कर, टिकट कटाने में न।
खुलना ही है चाहती, 'जीवन' जीवन-ट्रेन॥
बिना टिकट मत कर सफर, तज कर हृदय-विवेक।
चलते हैं इस ट्रेन में, चेकर सदा अनेक॥
सदा सफर-सामान निज, रख 'जीवन' एकत्र।
नही ज्ञात आ जाय कब, परिवर्तन का पत्र॥
जाना एक न एक दिन, होगा जहाँ अवश्य।
हुई बुलाहट आज ही, यदि, तो क्यों आलस्य॥
क्रय-कीमत पर बेच ले, छोड़ लाभ का ख्याल।
रखना अच्छा है नही, 'जीवन' कच्चा माल॥
कौड़ी दे, होकर उऋण, पकड़ो घर की बाट।
विक्रेता! उठ जायगी, अब यह 'जीवन'-हाट॥
अब किंचित् ही शेष है, बीती सारी रैन।
चक्रवाक चिंता तजो, हँसो, मनाओ चैन॥

प्रेम

'जीवन'-नौका खे चलो पकड प्रेम-पतवार !
पहुँचोगे सानंद तुम, भव-सागर के पार ॥
बाधाओं को देख कर, साहस मत कर न्यून ।
बिना फले रहता नही, अनुपम प्रेम-प्रसून ॥
क्यो न काम क्रोधादि खल—तमचर रहें समीप ।
मन-मंदिर में है न जब, 'जीवन' प्रेम-प्रदीप ॥
घृणा-घटा से है ढकी जब यह हृदयाकाश ।
'जीवन' कैसे मुक्त हो, प्रेमादित्य-प्रकाश ॥
प्रेम और कर्त्तव्य में, है अटूट संबंध ।
साथ साथ रखते सुमन, हैं सौन्दर्य सुगंध ॥
हडप उसे सकती नही, मोह-मृत्यु मनहूस ।
'जीवन' जिसने पी लिया विमल प्रेम-पीयूष ॥
है विश्वास-सरोज से, मानस-सर जब हीन ।
किस प्रकार विहरे वहाँ, प्रेम-भ्रमर रसलीन ॥
जब है जीवन-पुष्प में, मित्र ! न प्रेम-पराग ।
क्यों न करे आनंद अलि, तो फिर उसका त्याग ॥
क्यों न द्वेष-दावाग्नि फिर, धधके रह सक्षेम ।
जीवन-बन को प्रेम घन से है अगर न प्रेम ॥

स्मरणीय

तृष्णा-तृण से है नहीं, हृदय-क्षेत्र जब हीन।
किस प्रकार सुख-शस्य फिर, फैले हो स्वाधीन॥
धर्म-धान कैसे जिए, रह सदैव अधपेट।
सत्य-सलिल से है न जब, होता उसको भेंट॥
किसके संग मचायगा लिपट लिपट रस-केलि।
'जीवन'-पादप से अलग, है जब शांति सुबेलि॥
'जीवन' सहकर दुख कभी, करना चित्त न म्लान।
दुख सहकर हैं चमकते, सज्जन, कंचन, पान॥
नृप-भय तजकर धर्म-हित, हो अशंक मुख खोल।
'जीवन' काया के निकट, छाया का क्या मोल?
करना सबको चाहिए, उसका ही गुण-गान।
जो जिसका 'जीवन'-ध्येय हो दुनिया का कल्याण॥

ज्योति

सभी हैं जानते यह ईश की कैसी महत्ता है।
कभी आज्ञा बिना जिसकी न हिलता एक पत्ता है॥
उसी परमेश की जग-व्यापिनी जो है विमल छाया।
उसीको ज्योति कहते हैं उसको ही महामाया॥
सुखद जिसके अनुग्रह से सभी का काम चलता है।
उपजते नाज हैं खाकर जिसे संसार पलता है॥

खुशामद ज्योति की यदि रवि नही करता रहे हरदम।
हरा उसको अभी संसार पर अधिकार कर ले तम॥
न अब तक कर सकी पैदा, जिसे विज्ञान की लीला।
कृपा से है अहा किसकी चमकता वह गगन नीला॥
इसे यदि सोचने का कष्ट प्रियवर! कुछ उठाओगे।
गगन के पास भी तुम ज्योति ही को देख पाओगे॥
निशापति कौमुदी का कांत फिर कहला नही सकता।
दुखी संतप्त दिल को वह कभी बहला नही सकता॥
भलाई भूलकर फौरन उसे ठुकरा कुमुद-दल दे।
कुपित हो रूठकर, उसके निकट से ज्योति यदि चल दे॥
जगत के बीच यों तो पेट पशु भी पाल लेते है।
हवा में एक सँग ही साँस नृप कंगाल लेते हैं॥
मगर प्यारा इसीका लाल कर कुछ काम सकता है।
कृपा का पात्र इस माँ का अलग ही से चमकता है॥
बिना इसके मृतक मे और जीवित में न अंतर है।
मरे मन को जिलाने का इसीके पास मंतर है॥
जगतभर में जहाँ पर कुछ अनूठापन नज़र आवे।
वही पर ज्योति को समझो, जहाँ 'जीवन' नज़र आवे॥

अछूत-समस्या

छूके भी अछूतों को अछूती अस्थियाँ जो रहें,
विश्व में कहेगा हा हमें तो 'विप्रवर!' कौन?

चार भुजा वाले को चमार पूजने जो लगें,
चर्च की विदेशियों के लेगा तो खबर कौन ?
जाने दिए जायें मंदिरों में जो अछूत आज,
पूजेगा कबारी कूँजरों को तो कबर कौन ?
हिंदू जो कहाने लगें सारे ये अछूत लोग,
मुल्ला पादरी को तो बँधावेगा सबर कौन ?

शरद्-वियोग

मेघ-हीन व्योम के सितारों की प्रकाशमाला,
भाती नहीं, दुःख का मसाला ही बढ़ाती है।
रात्रि में संयोग के विनोद को बढ़ाने वाली,
ज्योति चन्द्रमा की आज सत्य ही जलाती है।
आती है प्रिया की याद, साथ में विषाद लिए,
नित्य, जभी हाय दईमारी रात आती है।
खाट काटती है, काटते हैं ये कपाट आज,
सोने की हमारी कोठरी भी काटे खाती है।
कभी स्वप्न ही में मान ठानती, न मानती है,
वही, ठानता हूँ कभी प्रेम का कलह मैं।
कभी बैठ जाती है अशंक हो मयंक-मुखी,
अंक में, खुशी से नाचता हूँ बेतरह मैं।
हाथ को छुड़ा के कभी साथ छोड़ जाती है तो,
एकाएक जाता हूँ भँवर बीच बह मैं।

मै ही जानता हूँ किसी गैर को पड़ा है क्या कि,
विरह-उदधि में रहा हूँ कैसे दह मैं ?

जिज्ञासा

वह कौन-सा है ग्राम, जिसका है नही नाम,
काम ही न देते जहाँ भूमि औ गगन हैं।
कौन-से मिसाल की विशालता विलोक वहाँ,
रचे गए अमित भवन उपवन हैं ?
कोई नही लौटता हताश हो जहाँ से कभी
करते निवास वहाँ कौन-से सुजन हैं ?
कौन-सी अमंदता वहाँ है जिसे देख हाय !
देख ही न पाते कोई चीज़ ये नयन हैं ?

बिहार के नवयुवक हृदय
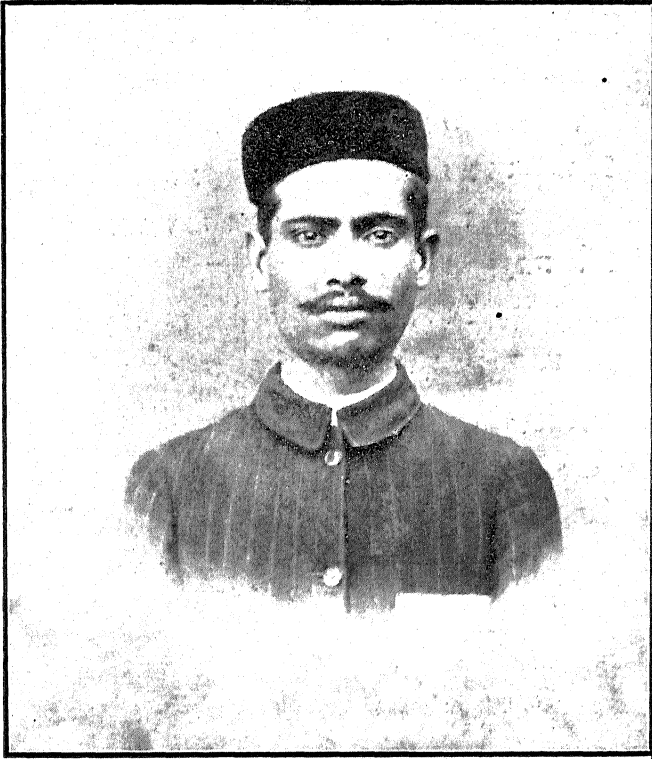
श्री रामवचन द्विवेदी 'अरविंद'

रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द'

पं० रामवचन द्विवेदी बिहार के उन नवयुवक साहित्यिकों मे हैं जिनपर हिन्दी सेवा की धुन सवार है। आप गद्य और पद्य दोनों में अच्छी रचना करते हैं।

आपका जन्म शाहाबाद जिलान्तर्गत दुबौली नामक ग्राम (पोस्ट-नियाजीपुर) में कार्त्तिक शुक्ल दशमी संवत् १९६२ वि० को हुआ था। आपके पिता का नाम पं० रामअनन्त द्विवेदी है। आप सरयूपारीण ब्राह्मण हैं। बाल्यकाल मे ही आपकी माता स्वर्गवासिनी हो गयी थी। इसलिये आपका पालन-पोषण आपके पिता और पितामही ने किया।

आपके पिता और चाचा गया में पुलिस-विभाग के कर्मचारी थे। अतएव वही आपकी शिक्षा-दीक्षा का श्रीगणेश हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद आपका नाम स्थानीय माडेल हाई इङ्गलिश स्कूल मे लिखाया गया। पढ़ने में आप आरम्भ ही से तेज थे।

हाई स्कूल मे पढ़ते समय आप हिन्दो में बहुत कच्चे थे। पर अपने विद्यालय से निकलने वाले 'भीष्म' नामक हस्तलिखित पत्र में लेख देने के शौक ने आपको धीरे धीरे हिन्दी पढ़ने में अच्छी योग्यता प्राप्त करने को बाध्य किया। फिर क्या था, आप कविता भी करने लगे। कुछ ही दिनों में आप अच्छी हिन्दी लिखने लगे।

आप सदैव अपनी कक्षा मे प्रथम होते थे। जब आप प्रवेशिका-कक्षा मे पहुँचे तो अपनी माता को पढ़ाने के खर्च से आपने मुक्त कर दिया और निज के प्रबंध से पढ़ने का खर्च चलाने लगे। बंगालियों का सहवास आपको विशेष प्रिय था। फलस्वरूप आपने बंगला भाषा अच्छी तरह सीख ली। इसमे बाबू सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, एम० ए० एम० आर० ए० एस० से आपको विशेष सहायता मिली। सं० १६८१ मे आप हिन्दीभूषण की परीक्षा में सर्वप्रथम होकर उत्तीर्ण हुए। इसके उपलक्ष्य में आपको कुछ पुस्तकें पारितोषिक में मिली। इसी वर्ष प्राइवेट तौर से आपने पटना युनिवर्सिटी की मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी मे पास की। हिन्दू-विश्व-विद्यालय मे आपको पढ़ने की पहले हो से उत्कट इच्छा थी। इसलिये १६२२ ई० की जुलाई में आपने उक्त विश्वविद्यालय की आई० ए० श्रेणी में अपना नाम लिखाया।

लहेरियासराय ही में आपको अधिक परिश्रम के कारण मूर्छा की बीमारी आरम्भ हो गई थी, परन्तु बनारस की गर्मी के कारण आपकी वह बीमारी और भी बढ़ गई। प्रथम वर्ष में तो आप इसी कारण कोई भी परीक्षा न दे सके, परन्तु प्रिंसिपल महोदय ने आपकी योग्यता को जानकर आपको यों ही तरक्की दे दी। आई० ए० की परीक्षा के पूर्व कई मासों से स्वास्थ्य अत्यन्त शोचनीय रहने पर भी आप अपनी योग्यता के भरोसे मित्रों के लाख मना करने पर भी परीक्षा में

सम्मिलित हो गये और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो गये। इस समय आप काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय ही में हिन्दी और संस्कृत लेकर बी० ए० में पढ़ते हैं।

आप १२-१३ वर्ष की उम्र से ही गद्य-पद्य लिखते है। पन्द्रह साल की अवस्था मे ही आपने अमर कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की ग्रन्थावली का आद्योपांत अध्ययन किया और उनके शर्मिष्ठा नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद भी किया जो 'कसौटी' नाम से प्रकाशित हुआ है। सं० १६८१ में आपने 'कर्म-शिक्षा' नामक एक गद्य की पुस्तक लिखी। आपकी रचित पुस्तकों के नाम ये हैं—मोदक, मोहनभोग, चमचम, ब्रह्मचर्य-शिक्षा, कर्म-शिक्षा, कसौटी, प्रेम-पत्रावली, सदाचार-शिक्षा आदि। आप बाल्य-साहित्य के एक प्रौढ़ लेखक है। आपकी रचनाओं का हिन्दी-संसार ने बहुत आदर किया है। आप गद्य तथा पद्य दोनों सुन्दर लिखते हैं। आपकी रचनाएँ हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुआ करती हैं।

आप बड़े मिलनसार और सरल स्वभाव के है। आप अपने को 'अजातशत्रु' कहा करते है। सचमुच जो कोई भी आपसे दो बातें करता, वही आपका मित्र बन जाता है। बड़े बड़े महानुभावों की आपपर सदैव कृपा बनी रहती है। आचार्य ध्रुव, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लाला भगवानदीन, बाबू रामलोचनशरण बिहारी, बाबू दामोदर-

सहाय सिंह 'कविकिंकर' आदि महानुभाव आपपर सदा स्नेह रखते हैं। शरणजी तो आपको इस समय पठन-पाठन का बहुत कुछ व्यय केवल थोड़े से अवकाश के काम के बदले दे रहे हैं। आपकी योग्यता तथा सरल स्वभाव के कारण और भी कितने साहित्य-प्रेमी आपके मित्र तथा शुभचिंतक है। ईश्वर आपको स्वास्थ्य और शक्ति का वर दें जिससे आप अधिकाधिक हिन्दी की सेवा कर सकें।

अभिलाष

विरह-व्यथा से क्षत-विक्षत यदि हृदय तुम्हारा होऊँ!
प्रेम-अश्रु कण-प्लावित नयनों का यदि तारा होऊँ!
जीवन के आशा-तरु का यदि कुसुम नियारा होऊँ!
अगर तुम्हारे शांत शयन का स्वप्न पियारा होऊँ!
अगर तुम्हारी कलित कल्पना का उद्घाटन होऊँ!
अगर तुम्हारा तन छूने को मलय-पवन घन होऊँ!
अगर तुम्हारे अन्वेषण का चारु चयन कन होऊँ!
चिर कृतज्ञ तो होऊँ विधि का यदि तव मृदु मन होऊँ!

स्मृति

हिंदू-मानस-मानसरोवर-चर-मरालवर!•
हिंदू हृदयाकाश-प्रकाशक-दिव्य-प्रभाकर!

हिंदू-जीवन-रम्य-विटप-फल-कुसुम-मनोहर !
हिंदू-हित-सुख-शांति-समुन्नति-मूल-गुणागर !
भव्य-भावना-भवन-शिखर भारत-सुत-भय-हर !
कलित-कल्पना-केंद्र धर्म-ध्रुव-नव-धारा-धर !
विद्या-बुद्धि-विवेक-ज्ञान-विज्ञान-गुणाकर !
दान-मान-सौजन्य-शांति-संत्याग-मूर्तिवर !
शुद्धि-संघटन-सौम्य-सँदेश प्रचारक-तत्पर !
स्वार्थ-गर्व-संपत्ति वासना-विषय-विरतवर !
षड्रिपु शासक सुघर देश-नेता महान-नर !
सरल-हृदय स्वातंत्र्य-भक्त संन्यासी-निर्जर !
सकल-शत्रु-उर-शाल दुष्ट दल-दर्प-तोम-हर !
आर्यज-श्रद्धानंद आर्य कुल-कमल-दिवाकर !
पतिति-धेनु-शिशु-प्राण विकल-विधवा रक्षकवर !
देव-तुल्य-अभिवंद्य कहाँ हो हा ! इस अवसर !
हा ! कुटिल-काल ने क्या किया क्रूर-यवन-कर से प्रभो !
सर्वस्व हमारा छिन गया जायँ शरण किसकी विभो !

प्रतीक्षा

निशि दिन खड़ा प्रतीक्षा तेरी करता निज अन्तर्पट खोल ।
'होगी पूर्ण कामना निश्चय' अड़ी इसी पर पलक लोल ॥
बना हृदय प्रेमी चातक-सा समझ कष्ट को सुमन-सुवृष्टि ।
कड़ी परीक्षा से निर्भय हूँ दृढ़ कर आशा-पथ पर दृष्टि ॥

बाधा-बादल से निर्भय हूँ मुझे न कुछ काया का सोच ॥
आत्मसमर्पण कर डालूँगा 'आर्त्तनाद' का कर उन्मोच ॥
'तू मेरा है-मैं तेरा हूँ'—इसका करके अविरत ध्यान ।
निश्चल-सा मै अटल रहूँगा करता मन से तव आह्वान ॥

'आता है मुझसे मिलने तू'—मन में जब उपजेगा भाव ।
'अपने को तेरी सुस्मृति में करूँ निहित'—ऐसा कर हाव ॥
प्रेम-पुष्प से डाला सजकर भव्य भावना को कर संग ।
बैठ प्रतीक्षासन पर दृढ़ हो ध्यान करूँगा मान उमंग ॥

'दया दिखा मेरे तन पर है तूने दिया स्वकर टुक फेर'— ।
ऐसा सद्विश्वास जागते पाऊँगा जब उर मे हेर ॥
कृपापात्र तेरा अपने को मान तथा होकर मुदमान ।
भाग्य-चक्र-उद्भूत व्यथा का तब समझूँगा मै अवसान ॥

'हँसते हुए मृदुल वचनों से देता तू मुझको उपदेश—' ।
ऐसा अनुभव उत्थित हो तो मानूँ जन्म सफल सविशेष ॥
'हृदयालिंगन कर मुझको तू चूम रहा है अति सुख मान— ।'
जीवन-लक्ष्य मोक्ष्य-प्राप्ति तब समझूँगा मै प्राप्त प्रमाण ॥

मन

अविरत रह कर्तव्य-निरत मन ! छोड़-छाड़ मद मत्सर लोभ ।
पर-निंदा तज पर-हित-व्रत-रत हो कर कर कर्म सतत तज क्षोभ ॥

तेरा तभी भला होगा जब सत्याग्रह-व्रत लेगा धार।
कर्म-महात्म्य मनन कर दृढ़ हो जिससे हो भव-सागर पार॥

दुष्टों की कटु कथा सहन कर स्वयं निकाल न कड़वी बात।
कलित कल्पना उर मे पालन कर न किसी का कुछ अपघात॥
पर का दोष छिपा रख मन में कर सदैव सज्जन-गुण-गान।
दीन-दुखी पर दया-दृष्टि रख कहला जग में साधु महान॥

विश्व-प्रेम का मंत्र भूल मत समझ सभी को एक समान।
ईर्ष्या छल, पाखंड पिशुनता तजकर कर जग का कल्याण॥
'भूत-भक्ति भूतेश-भक्ति है'—इसपर रखकर दृढ़ विश्वास।
कर्म-योग की दीक्षा लेकर कर जग-सेवा स्वात्म-विकास॥

'सेवा से पाता नर मेवा सेवा सकल-सिद्धि-सुख-मूल।
'सेवा-सिद्ध आत्म-त्याग ही स्वानुभूति है'—इसे न भूल॥
'क्या साधन सुविराग प्राप्ति का?' है इसका उत्तर-'अनुराग'।
बन अनुरागी अतः सृष्टि का कर मत कभी कर्म का त्याग॥

करते-करते कर्म तुझे नैष्कर्म्य मिलेगा अपने आप।
लक्ष्य-प्राप्ति में कभी न अड़चन कुछ डालेंगे कष्ट-कलाप॥
हो निर्भीक इष्ट-साधन में बस रह धीर सतत संलग्न।
होकर सफल सुगति पायेगा यदि न करेगा साहस भग्न॥

बसंत का समागम

सखि रितुपति भे उदित प्रमान।
नव किसलय कल देखि मुदिन ह्वै बिहँसत दसो दिसान ॥
धीर सीर सुरभित समीर तन परसत औचक आन।
मनहुँ धनुर्धर माधव छारत विषम तीर संधान ॥
अलवेली अलिअवलि लगी लखु पुहुपन पै मररान।
कोकिल कलरव कूजि काम कर करत सुस्वागत गान ॥
जीव जंतु जेते जग बिच सब करत केलि मनमान।
प्रिय बिनु तरफत कामिनि 'कंटक' ह्वै स्मर-सर ते म्लान ॥

(कसौटी से)

प्रभो !

अपने ही हाथों से कैसे प्रभो ! लुटा दें जीवनधन ?
कंटक-वन कैसे होने दें प्रेमामृत-सिंचित उपवन ?
दुर्गुण-घन से घिरने दें हा ! कैसे परमोज्ज्वल विधु-मन ?
इन आँखों से कैसे देखें हिंदू-हिंदी-हिंद-पतन ?

पूर्ण-चंद्र के बिना हर्ष से होता क्या वारिधि-वर्द्धन ?
स्वाती-सलिलामृत-सीकर के विना मुदित हो चातक-मन ?
सूर्य-रश्मि के विना कभी क्या होता है पंकज-विकसन ?
मावस में शशि से मिलकर क्या होता प्रस्फुट कैरव-वन ?

ऋतुपति-बिन तरु-द्रुम पाते क्या नवकिसलय या रम्य सुमन ?
ग्रीष्म तपित भू पर बह सकता है क्या सुरभित आर्द्र पवन ?
शरद्-काल में पिक-रव क्या है किया किसी ने कभी श्रवण ?
छोड़ निरंकुश इंद्रियगण का हो सकता क्या आत्मदमन ?

कैसे जन्मसिद्ध अधिकारो को खो देखें सौख्य-स्वपन ?
दुस्सह दुखमय दुर्दिन में हा ! कैसे रक्खें फुल्ल वदन ?
पर का घात जाति पर लख कर चुप हो कैसे करें सहन ?
पराधीनता-विकट पाश में बँधा तजें कैसे तन मन ?

शोचनीय है बात, जान दुख-हेतु करें हा ! नही शमन !
हों सचेष्ट स्वातंत्र्य-लाभ के लिए नही रख धन बल जन !
देश जाति का नत शिर लखना स्वीकृत है पर नही मरण !
प्रभुवर ! हा ! हममें संचारित होगा कब फिर नवजीवन !

आँसू

विरह-ताप पा हृदय-पिंड जो पिघल रहा है।
बनकर आँसू वही नेत्र से निकल रहा है॥
प्रेम-वारि या प्रचुर पियाला छलक-छलक कर।
कारण-पथ से निकल रहा है आँसू बनकर॥
निज प्रियतम को खोजने चला चित्त जल-धार हो।
पा उससे मिल जायगा झट मोती का हार हो॥

कलम और तलवार

किसी शत्रु का सिर छेदनकर शोणित पीकर अकड अपार।
सरल सुशील कलम से बोली विकट वचन यों तलवार॥

'काला मुँह ले समता करने आयी है तू मेरे पास।
दूर भाग, तू कर सकती क्या ? यदि झट तेरा कर दूँ नाश॥

"कुत्सित भोजन कर रहती है पर-निन्दा-रत तू दिन-रात।
जब-तब व्यर्थ प्रशंसा करती, होकर मुखर बनाती बात॥

"बीती बातें याद दिला तू करती है चिन्तित संसार।
तेरे आश्रित सब कायर है, अधिक कहूँ क्या ? स्वयं विचार॥

"मैं शूरों का शोणित पीती, कहलाती काली-अवतार।
राजा-रंक सभी में पूजित मुझको सब करते हैं प्यार॥

"बात न गढ़ती कोरी तुझ-सी पर दिखलाती हूँ कर काम।
कायर क्रूर बधिक का बध कर जग को करती बल-गुण-धाम॥

"मेरे आश्रित सभी शूर हैं, मुझे मानते अपना प्राण।
जयमाला उनको छजती है, नृप से भी बढ़ उनकी शान॥

"मिट्टी काँच आदि के घर में तुझ-सी कभी न करती बास ।
मै रहती हूँ सज्जित घर में मिलता मुझको जहाँ सुपास ॥'

इसी तरह कटु कथा बहुत जब निधड़क बोल चुकी तलवार ।
तब यों उत्तर दिया कलम ने परम नम्र हो सोच-विचार ॥

"हिंस्रक निठुर अशान्त बावली वास्तव में तू है तलवार !
खान-पान का भले-बुरे का तुझको कुछ भी है न विचार ॥

"अपना गुण मै स्वयं कहूँ क्या ! सब गुणियों को है यह ज्ञात ।
सात्विक जीवन बिता रही मैं हूँ सद्गुण-सरवर-निस्नात ॥

"नहीं घूमती हूँ सिर पर ले तुझ-सी नर-हत्या का पाप ।
शान्ति-प्राप्ति के लिए देह पर जड़ कर ली है अपने आप ॥

"तुझ-सा विमल न मेरा तन है, पर है मेरा प्राण परार्थ ।
'विष-रस-भरा कनक-घट-जैसे' कभी मै न करती चरितार्थ ॥

"सज-धज शान-बान मोहक हैं तेरे किन्तु कर्म है हेय ।
'मुँह मे राम बगल मे छूरा,'-है तेरे जीवन का ध्येय ॥

"आदरते थे मुझे व्यास-से गुणिगण मेरी महिमा जान ।
तिल भर भी कम नहीं हुआ है अब भी जग में मेरा मान ॥

"जो कुछ रण में तू करती है उसे न लिख यदि मैं दूँ छोड ।
तो तेरा गुण कौन गायगा ? मम विन आती विपद् करोड ॥

"मुझसे काम नही होता जो उसको मै करती हूँ पूर्ण ।
लिख-लिख लेख क्रान्ति करती हूँ भीरु-हृदय बल भरती तूर्ण ॥

"शोणित पी मतवाली होकर करती तू जग का अपकार ।
जगदुद्धारक दैन्य-विदारक है जग मे मेरा अवतार ॥'

सुनकर सच्ची बात कलम की हुई बहुत लज्जित तलवार ।
पर-निन्दा वाचालपना तज चुप हो रही कलम'से हार ॥

(चमचम से)

भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

पं० भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' का जन्म दरभंगा जिला के आनन्दपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपकी अवस्था लगभग २१ वर्ष की है। आपके पिता का नाम पं० मदनेश्वर सिंह जी था। लगभग आठ-नौ वर्ष हुए आपके पिता जी का देहान्त हो गया।

आप जाति के मैथिल ब्राह्मण हैं। आपके दो भाई और हैं। उन लोगो का नाम श्री जालेश्वर तथा श्री भीमेश्वर सिंह है। आप तीनों भाई 'सिंह-बन्धु' के नाम से साथ मिलकर लेखादि लिखते है। आप महाराज दरभंगा के वंशज हैं। आपके पितामह के पिता और वर्त्तमान महाराजा बहादुर श्री रामेश्वर सिंह जी के पिता सहोदर भ्राता थे।

जब आप पाँच वर्ष के थे तब संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। कुछ दिनोंतक पाठशाला में आपकी शिक्षा हुई। फिर घर ही पर बहुत दिनों तक शिक्षकों की अध्यक्षता में विद्याध्ययन करते रहे। किसी स्कूल तथा कालेज में आपने कभी नही पढ़ा। आपने जो कुछ भी योग्यता अब तक प्राप्त की है वह आपहीके अध्यवसाय का फल है। आप हिन्दी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी जानते हैं।

आपने १९२५ ई० से पत्र-पत्रिकाओं में लिखना प्रारम्भ

किया। आप कविता, गद्य लेख, समालोचना आदि लिखते हैं। आपकी रचनाएँ माधुरी, ज्योति, मतवाला, श्रीकृष्ण-संदेश, बालक आदि पत्र-पत्रिकाओं मे निकलती हैं।

लगभग एक वर्ष से आपने स्वय अपने पूज्य पिता की पुण्यस्मृति मे मुजफ्फरपुर से 'लेखमाला' नामक एक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका निकाली है। आप स्वयं ही उसके सम्पादक है। मुजफ्फरपुर ही मे रह कर आप घर के अन्यान्य कार्यों के साथ 'माला' का सम्पादन तथा साहित्य-सेवा करते है।

भविष्य में आपसे हिन्दी-साहित्य की सेवा की बहुत अधिक आशा है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें जिससे साहित्य-संसार की दिन-दिन उन्नति हो। आप बड़े ही नम्र तथा मिलनसार व्यक्ति है। आपका उद्देश्य तथा परिश्रम सराहनीय है। ईश्वर आपको सफलता दें।

अभिलाषा

माँ, अब मेरे हृत्-तन्त्री को एक वार झंकृत कर दे।
रस बरसा दे सघन-गगन उनमें मंजुल-मलार भर दे॥
स्थिर होकर अखिल विश्व की पलकों से आँसू छलके।
मेरी एक एक तानो में सुन्दर गुण-गरिमा झलकें॥
उस नीरव संगीत लहरियों में ऐसी हो शक्ति-अपार,
हो मदमत्त रण-प्रांगण में सज दे समर साज संसार।

नही, नही, मिट जाये उससे उस 'अकपट चातक' की प्यास,
नाच उठे मन मोर पुनः लख ब्रज-कानन घनश्याम निवास।

विरह-वेदना-ग्रस्त विरागिनि को न रहे क्लेशों का लेश,
सरस-सुमन सौरभ फैलाये, हो सुख-मय यह 'भारत देश'।
विमल राग-रागिनियो से प्रगटित होवे अभिनव आभास,
खंड खंड हो जाय टूट कर पराधीनता निष्ठुर-पाश।
माँ, कदम्ब की छाँह-वही हो; बंशी वह नटनागर श्याम,
ब्रज-बनिताओं की क्रीडायें कलित ललित लीला अभिराम।
मधुर, मंजु मुरली से मुखरित हो जावे यह कुञ्ज कुटीर,
सफल-नयन हो जायें लखकर युगल-मूर्तियुत यमुनातीर।

अभिलाषा-सप्तक

चाहिये मुझे न सुख वैभव अनन्त धन,
तन मन हारिणी सुकामिनी का मंजु हाश।
नेक परवाह यश की न मुझे भूतल में,
हानि नही ज्ञान, ध्यान का, न हो यदि विकाश।
राजा नही दीन हीन रंक ही रहूँ सदैव,
अन्न के अभाव मे ही होवे चाहे प्राणनाश।
किन्तु करुणानिधि सदैव जन्म देना मुझे,
ब्रज के करीलमय सुकुंजों के आश-पाश।

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री रामलोचन शर्मा 'कंटक'
हिन्दी-भूषण

तेरा ही मुरली मंजु सुनता रहूँ कानों से,
होके बस धेनु ब्रजभूमि मे चरा करूँ ।
यमुना पुलिन मे कदम्बन की डारन पै,
कोयल हो कूक तुव श्रवण भरा करूँ ।
ग्वालबाल होऊँ ऐसो भाग है हमारो कहाँ,
इन्द्र कोप लोपक गोवर्द्धन धरा करूँ ।
'वंस' ही के वंस मे तू मुझे उपजाना प्रभु,
'भुवन' का मनवन बाँसुरी हरा करूँ ।

ठुकरा के चरणों से वैभव हटा दूँ दूर,
कामना नही है पाऊँ धन जन सुख मूल ।
चाह नही मुझको बनाओ प्रिया राधिका के,
कोमल सुकंठन के हारन को मंजुफूल ।
रूठ भले जाओ तुम मुझसे निठुर होके,
चाहे तुम जाओ अखिल 'भुवन' भूल ।
किन्तु सब तरते हैं सीस पै चढ़ा के जिसे,
मुझको बनाओ उसी पावन पदों का धूल ।

मानुख बनाओ तो निवास देना नन्द गाँव,
ग्वाला ही रहूँगा यही कामना हमारी है ।
सखा सखा कहके बुलाओगे समीप मुझे,
गैया ले चलूँगा संग तुमको जो प्यारी है ।

चाहिये मुझे क्या कहो इसके सिवाय और,
जिसके निकट तुच्छ सम्पति भी सारी है।
चकित कहेंगे सब 'भुवन' के भाग जागे,
देखो संग बंसीधर राधिका बिहारी है।

गोकुल गाँव के ग्वारन में, कय ग्वारन ही मुझको प्रगटाइये।
औ इन हाथन से 'भुवनेश' पुनीत दधि, मधु, माखन पाइये॥
जो खगनाथ करौं सो करौं यमुना-तट से नहिं दूर बसाइये।
मंजु कदंब की डार वही हो नीवास जहाँ सुखराश रचाइये॥

दीन, मति-हीन, पंगु, बधिर, रहूं मै मूक,
तृषित क्षुधा से होके व्याकुल ही पड़ा रहूँ।
घोर विपदा की मार सहता रहूँ जीवन मे,
पाप पंक ही में चाहे सिर तक गड़ा रहूँ।
आँशुओं की धारायें बहा दूँ यदि रो रो के हो,
कण्टकमय पथ मे चाहे विकल खड़ा रहूँ।
निज शत्रुओं को किन्तु पीठ दिखलाऊँ नही,
करुणानिधान निज प्रण पै अड़ा रहूँ।

विपुल विलाश सुख वैभव विभूति जेते,
तुच्छ ही रहेंगे नही इनसे मुझे है काम।
धन औ विशाल धाम मुझको मिले न मिलै,
सीस पै विपत्ति की प्रहार ही हो आठो याम।

आप सदैव अपनी कक्षा मे प्रथम होते थे। जब आप प्रवेशिका-कक्षा मे पहुँचे तो अपनी माता को पढ़ाने के खर्च से आपने मुक्त कर दिया और निज के प्रबंध से पढ़ने का खर्च चलाने लगे। बंगालियों का सहवास आपको विशेष प्रिय था। फलस्वरूप आपने बंगला भाषा अच्छी तरह सीख ली। इसमे बाबू सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, एम० ए० एम० आर० ए० एस० से आपको विशेष सहायता मिली। सं० १६८१ मे आप हिन्दीभूषण की परीक्षा में सर्वप्रथम होकर उत्तीर्ण हुए। इसके उपलक्ष्य में आपको कुछ पुस्तकें पारितोषिक में मिली। इसी वर्ष प्राइवेट तौर से आपने पटना युनिवर्सिटी की मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। हिन्दू-विश्व-विद्यालय में आपको पढ़ने की पहले ही से उत्कट इच्छा थी। इसलिये १६२२ ई० की जुलाई में आपने उक्त विश्वविद्यालय की आई० ए० श्रेणी में अपना नाम लिखाया।

लहेरियासराय ही में आपको अधिक परिश्रम के कारण मूर्छा की बीमारी आरम्भ हो गई थी, परन्तु बनारस की गर्मी के कारण आपकी वह बीमारी और भी बढ़ गई। प्रथम वर्ष में तो आप इसी कारण कोई भी परीक्षा न दे सके, परन्तु प्रिंसिपल महोदय ने आपकी योग्यता को जानकर आपको यों ही तरक्की दे दी। आई० ए० की परीक्षा के पूर्व कई मासों से स्वास्थ्य अत्यन्त शोचनीय रहने पर भी आप अपनी योग्यता के भरोसे मित्रों के लाख मना करने पर भी परीक्षा में

सम्मिलित हो गये और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो गये। इस समय आप काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय ही मे हिन्दी और संस्कृत लेकर बी० ए० में पढ़ते हैं।

आप १२-१३ वर्ष की उम्र से ही गद्य-पद्य लिखते है। पन्द्रह साल की अवस्था मे ही आपने अमर कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की ग्रन्थावली का आद्योपांत अध्ययन किया और उनके शर्मिष्ठा नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद भी किया जो 'कसौटी' नाम से प्रकाशित हुआ है। सं० १९८१ में आपने 'कर्म-शिक्षा' नामक एक गद्य की पुस्तक लिखी। आपकी रचित पुस्तको के नाम ये है—मोदक, मोहनभोग, चमचम, ब्रह्मचर्य-शिक्षा, कर्म-शिक्षा, कसौटी, प्रेम-पत्रावली, सदाचार-शिक्षा आदि। आप बाल्य-साहित्य के एक प्रौढ़ लेखक हैं। आपकी रचनाओं का हिन्दी-संसार ने बहुत आदर किया है। आप गद्य तथा पद्य दोनों सुन्दर लिखते हैं। आपकी रचनाएँ हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुआ करती हैं।

आप बडे मिलनसार और सरल स्वभाव के हैं। आप अपने को 'अजातशत्रु' कहा करते हैं। सचमुच जो कोई भी आपसे दो बातें करता, वही आपका मित्र बन जाता है। बडे बड़े महानुभावों की आपपर सदैव कृपा बनी रहती है। आचार्य ध्रुव, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लाला भगवानदीन, बाबू रामलोचनशरण बिहारी, बाबू दामोदर-

सहाय सिंह 'कविकिंकर' आदि महानुभाव आपपर सदा स्नेह रखते है। शरणजी तो आपको इस समय पठन-पाठन का बहुत कुछ व्यय केवल थोड़े से अवकाश के काम के बदले दे रहे हैं। आपकी योग्यता तथा सरल स्वभाव के कारण और भी कितने साहित्य-प्रेमी आपके मित्र तथा शुभचिंतक हैं। ईश्वर आपको स्वास्थ्य और शक्ति का वर दें जिससे आप अधिकाधिक हिन्दी की सेवा कर सकें।

अभिलाष

विरह-व्यथा से क्षत-विक्षत यदि हृदय तुम्हारा होऊँ!
प्रेम-अश्रु कण-प्लावित नयनो का यदि तारा होऊँ!
जीवन के आशा-तरु का यदि कुसुम नियारा होऊँ!
अगर तुम्हारे शांत शयन का स्वप्न पियारा होऊँ!
अगर तुम्हारी कलित कल्पना का उद्घाटन होऊँ!
अगर तुम्हारा तन छूने को मलय-पवन घन होऊँ!
अगर तुम्हारे अन्वेषण का चारु चयन कन होऊँ!
चिर कृतज्ञ तो होऊँ विधि का यदि तव मृदु मन होऊँ!

स्मृति

हिंदू-मानस-मानसरोवर-चर-मरालवर!
हिंदू हृदयाकाश-प्रकाशक-दिव्य-प्रभाकर!

हिंदू-जीवन-रम्य-विटप-फल-कुसुम-मनोहर !
हिंदू-हित-सुख-शांति-समुन्नति-मूल-गुणागर !
भव्य-भावना-भवन-शिखर भारत-सुत-भय-हर !
कलित-कल्पना-केंद्र धर्म - ध्रुव - नव-धारा - धर !
विद्या - बुद्धि - विवेक - ज्ञान - विज्ञान - गुणाकर !
दान - मान - सौजन्य - शांति - संत्याग - मूर्तिवर !
शुद्धि-संघटन-सौम्य-सँदेश-प्रचारक - तत्पर !
स्वार्थ-गर्व-संपत्ति-वासना-विषय-विरतवर !
षड्रिपु शासक सुघर देश-नेता महान-नर !
सरल-हृदय स्वातंत्र्य-भक्त संन्यासी–निर्जर !
सकल-शत्रु-उर-शाल दुष्ट दल - दर्प-तोम - हर !
आर्यज - श्रद्धानंद आर्य कुल - कमल–दिवाकर !
पतिति-धेनु-शिशु-प्राण विकल-विधवा रक्षकवर !
देव-तुल्य-अभिवंद्य कहाँ हो हा ! इस अवसर !
हा ! कुटिल-काल ने क्या किया क्रूर-यवन-कर से प्रभो !
सर्वस्व हमारा छिन गया जायँ शरण किसकी विभो !

प्रतीक्षा

निशि दिन खड़ा प्रतीक्षा तेरी करता निज अन्तर्पट खोल ।
'होगी पूर्ण कामना निश्चय' अड़ी इसी पर पलक लोल ॥
बना हृदय प्रेमी चातक-सा समझ कष्ट को सुमन-सुवृष्टि ।
कड़ी परीक्षा से निर्भय हूँ दृढ़ कर आशा-पथ पर दृष्टि ॥

बाधा-बादल से निर्भय हूँ मुझे न कुछ काया का सोच ॥
आत्मसमर्पण कर डालूँगा 'आर्त्तनाद' का कर उन्मोच ॥
'तू मेरा है-मै तेरा हूँ'—इसका करके अविरत ध्यान ।
निश्चल-सा मै अटल रहूँगा करता मन से तव आह्वान ॥

'आता है मुझसे मिलने तू'—मन में जब उपजेगा भाव ।
अपने को तेरी सुस्मृति में करूँ निहित'—ऐसा कर हाव ॥
प्रेम-पुष्प से डाला सजकर भव्य भावना को कर संग ।
बैठ प्रतीक्षासन पर दृढ़ हो ध्यान करूँगा मान उमंग ॥

'दया दिखा मेरे तन पर है तूने दिया स्वकर टुक फेर'— ।
ऐसा सद्विश्वास जागते पाऊँगा जब उर में हेर ॥
कृपापात्र तेरा अपने को मान तथा होकर मुदमान ।
भाग्य-चक्र-उद्भूत व्यथा का तब समझूँगा मैं अवसान ॥

'हँसते हुए मृदुल वचनों से देता तू मुझको उपदेश—' ।
ऐसा अनुभव उत्थित हो तो मानूँ जन्म सफल सविशेष ॥
'हृदयालिंगन कर मुझको तू चूम रहा है अति सुख मान— ।'
जीवन-लक्ष्य मोक्ष्य-प्राप्ति तब समझूँगा मै प्राप्त प्रमाण ॥

मन

अविरत रह कर्तव्य-निरत मन ! छोड़-छाड़ मद मत्सर लोभ ।
पर-निंदा तज पर हित-व्रत-रत हो कर कर कर्म सतत तज क्षोभ ॥

तेरा तभी भला होगा जब सत्याग्रह-व्रत लेगा धार ।
कर्म-महात्म्य मनन कर दृढ़ हो जिससे हो भव-सागर पार ॥

दुष्टों की कटु कथा सहन कर स्वयं निकाल न कडवी बात ।
कलित कल्पना उर में पालन कर न किसी का कुछ अपघात ॥
पर का दोष छिपा रख मन में कर सदैव सज्जन-गुण-गान ।
दीन–दुखी पर दया–दृष्टि रख कहला जग में साधु महान ॥

विश्व-प्रेम का मंत्र भूल मत समझ सभी को एक समान ।
ईर्ष्या छल पाखंड पिशुनता तजकर कर जग का कल्याण ॥
'भूत-भक्ति भूतेश-भक्ति है'—इसपर रखकर दृढ़ विश्वास ।
कर्म-योग की दीक्षा लेकर कर जग-सेवा स्वात्म-विकास ॥

'सेवा से पाता नर मेवा सेवा सकल-सिद्धि-सुख-मूल ।
'सेवा-सिद्ध आत्म-त्याग ही स्वानुभूति है'—इसे न भूल ॥
'क्या साधन सुविराग प्राप्ति का?' है इसका उत्तर–'अनुराग' ।
बन अनुरागी अतः सृष्टि का कर मत कभी कर्म का त्याग ॥

करते-करते कर्म तुझे नैष्कर्म्य मिलेगा अपने आप ।
लक्ष्य-प्राप्ति में कभी न अड़चन कुछ डालेंगे कष्ट-कलाप ॥
हो निर्भीक इष्ट-साधन में बस रह धीर सतत संलग्न ।
होकर सफल सुगति पायेगा यदि न करेगा साहस भग्न ॥

बसंत का समागम

सखि रितुपति भे उदित प्रमान ।
नव किसलय कल देखि मुदित ह्वै बिहँसत दसो दिसान ॥
धीर सीर सुरभित समीर तन परसत औचक आन ।
मनहुँ धनुर्धर माधव छारत विषम तीर संधान ॥
अलवेली अलिअवलि लगी लखु पुहुपन पै मररान ।
कोकिल कलरव कूजि काम कर करत सुस्वागत गान ॥
जीव जंतु जेते जग बिच सब करत केलि मनमान ।
प्रिय बिनु तरफत कामिनि 'कंटक' ह्वै स्मर-सर ते म्लान ॥

(कसौटी से)

प्रभो !

अपने ही हाथों से कैसे प्रभो ! लुटा दें जीवनधन ?
कंटक-वन कैसे होने दें प्रेमामृत सिंचित उपवन ?
दुर्गुण-घन से घिरने दें हा ! कैसे परमोज्ज्वल विधु-मन ?
इन आँखों से कैसे देखें हिंदू-हिंदी-हिंद-पतन ?

पूर्ण-चंद्र के बिना हर्ष से होता क्या वारिधि-वर्द्धन ?
स्वाती-सलिलामृत-सीकर के बिना मुदित हो चातक-मन ?
सूर्य-रश्मि के बिना कभी क्या होता है पंकज-विकसन ?
मावस मे शशि से मिलकर क्या होता प्रस्फुट कैरव-वन ?

ऋतुपति-बिन तरु-द्रुम पाते क्या नवकिसलय या रम्य सुमन ?
ग्रीष्म तपित भू पर बह सकता है क्या सुरभित आर्द्र पवन ?
शरद्-काल में पिक-रव क्या है किया किसी ने कभी श्रवण ?
छोड़ निरंकुश इंद्रियगण को हो सकता क्या आत्मदमन ?

कैसे जन्मसिद्ध अधिकारों को खो देखें सौख्य-स्वपन ?
दुस्सह दुखमय दुर्दिन में हा ! कैसे रक्खें फुल्ल वदन ?
पर का घात जाति पर लख कर चुप हो कैसे करें सहन ?
पराधीनता-विकट पाश में बँधा तजें कैसे तन मन ?

शोचनीय है बात, जान दुख-हेतु करें हा ! नहीं शमन !
हों सचेष्ट स्वातंत्र्य-लाभ के लिए नहीं रख धन बल जन !
देश जाति का नत शिर लखना स्वीकृत है पर नहीं मरण !
प्रभुवर ! हा ! हममें संचारित होगा कब फिर नवजीवन !

आँसू

विरह-ताप पा हृदय-पिंड जो पिघल रहा है।
बनकर आँसू वही नेत्र से निकल रहा है॥
प्रेम-वारि या प्रचुर पियाला छलक-छलक कर।
कारण-पथ से निकल रहा है आँसू बनकर॥
निज प्रियतम को खोजने चला चित्त जल-धार हो।
पा उससे मिल जायगा झट मोती का हार हो॥

कलम और तलवार

किसी शत्रु का सिर छेदनकर शोणित पीकर अकड अपार।
सरल सुशील कलम से बोली विकट वचन यों तलवार॥

'काला मुँह ले समता करने आयी है तू मेरे पास।
दूर भाग, तू कर सकती क्या? यदि झट तेरा कर दूँ नाश॥

"कुत्सित भोजन कर रहती है पर-निन्दा-रत तू दिन-रात।
जब-तब व्यर्थ प्रशंसा करती, होकर मुखर बनाती बात॥

"बीती बातें याद दिला तू करती है चिन्तित संसार।
तेरे आश्रित सब कायर हैं, अधिक कहूँ क्या? स्वयं विचार॥

"मै शूरों का शोणित पीती, कहलाती काली-अवतार।
राजा-रंक सभी मे पूजित मुझको सब करते हैं प्यार॥

"बात न गढ़ती कोरी तुझ-सी पर दिखलाती हूँ कर काम।
कायर क्रूर बधिक का बध कर जग को करती बल-गुण-धाम॥

"मेरे आश्रित सभी शूर है, मुझे मानते अपना प्राण।
जयमाला उनको छजती है, नृप से भी बढ़ उनकी शान॥

"मिट्टी काँच आदि के घर में तुझ-सी कभी न करती बास ।
मै रहती हूँ सज्जित घर में मिलता मुझको जहाँ सुपास ॥'

इसी तरह कटु कथा बहुत जब निधड़क बोल चुकी तलवार ।
तब यों उत्तर दिया कलम ने परम नम्र हो सोच-विचार ॥

"हिंसक निठुर अशान्त बावली वास्तव में तू है तलवार !
खान-पान का भले-बुरे का तुझको कुछ भी है न विचार ॥

"अपना गुण मै स्वयं कहूँ क्या ! सब गुणियों को है यह ज्ञात ।
सात्विक जीवन बिता रही मै हूँ सद्गुण-सरवर-निस्नात ॥

"नही घूमती हूँ सिर पर ले तुझ-सी नर-हत्या का पाप ।
शान्ति-प्राप्ति के लिए देह पर जड कर ली है अपने आप ॥

"तुझ-सा विमल न मेरा तन है, पर है मेरा प्राण परार्थ ।
'विष-रस-भरा कनक-घट-जैसे' कभी मै न करती चरितार्थ ॥

"सज-धज शान-बान मोहक हैं तेरे किन्तु कर्म हैं हेय ।
'मुँह में राम बगल में छूरा,'-है तेरे जीवन का ध्येय ॥

"आदरते थे मुझे व्यास-से गुणिगण मेरी महिमा जान ।
तिल भर भी कम नही हुआ है अब भी जग में मेरा मान ॥

"जो कुछ रण मे तू करती है उसे न लिख यदि मैं दूँ छोड ।
तो तेरा गुण कौन गायगा ? मम विन आती विपद करोड ॥

"मुझसे काम नही होता जो उसको मै करती हूँ पूर्ण ।
लिख-लिख लेख क्रान्ति करती हूँ भीरु-हृदय बल भरती तूर्ण ॥

"शोणित पी मतवाली होकर करती तू जग का अपकार ।
जगदुद्धारक दैन्य-विदारक है जग मे मेरा अवतार ॥'

सुनकर सच्ची बात कलम की हुई बहुत लज्जित तलवार ।
पर-निन्दा वाचालपना तज चुप हो रही कलम से हार ॥

(चमचम से)

भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

पं० भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' का जन्म दरभंगा जिला के आनन्दपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपकी अवस्था लगभग २१ वर्ष की है। आपके पिता का नाम पं० मदनेश्वर सिंह जी था। लगभग आठ-नौ वर्ष हुए आपके पिता जी का देहान्त हो गया।

आप जाति के मैथिल ब्राह्मण हैं। आपके दो भाई और हैं। उन लोगो का नाम श्री जालेश्वर तथा श्री भीमेश्वर सिंह है। आप तीनों भाई 'सिंह-बन्धु' के नाम से साथ मिलकर लेखादि लिखते है। आप महाराज दरभंगा के वंशज हैं। आपके पितामह के पिता और वर्त्तमान महाराजा बहादुर श्री रामेश्वर सिंह जी के पिता सहोदर भ्राता थे।

जब आप पाँच वर्ष के थे तब संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। कुछ दिनोंतक पाठशाला में आपकी शिक्षा हुई। फिर घर ही पर बहुत दिनों तक शिक्षको की अध्यक्षता में विद्याध्ययन करते रहे। किसी स्कूल तथा कालेज में आपने कभी नही पढ़ा। आपने जो कुछ भी योग्यता अब तक प्राप्त की है वह आपहीके अध्यवसाय का फल है। आप हिन्दी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी जानते हैं।

आपने १९२५ ई० से पत्र-पत्रिकाओं में लिखना प्रारम्भ

किया। आप कविता, गद्य लेख, समालोचना आदि लिखते हैं। आपकी रचनाएँ माधुरी, ज्योति, मतवाला, श्रीकृष्ण-संदेश, बालक आदि पत्र-पत्रिकाओं में निकलती हैं।

लगभग एक वर्ष से आपने स्वयं अपने पूज्य पिता की पुण्यस्मृति में मुजफ्फरपुर से 'लेखमाला' नामक एक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका निकाली है। आप स्वयं ही उसके सम्पादक है। मुजफ्फरपुर ही में रह कर आप घर के अन्यान्य कार्यों के साथ 'माला' का सम्पादन तथा साहित्य-सेवा करते हैं।

भविष्य में आपसे हिन्दी-साहित्य की सेवा की बहुत अधिक आशा है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें, जिससे साहित्य-संसार की दिन-दिन उन्नति हो। आप बड़े ही नम्र तथा मिलनसार व्यक्ति हैं। आपका उद्देश्य तथा परिश्रम सराहनीय है। ईश्वर आपको सफलता दें।

अभिलाषा

माँ, अब मेरे हृत्-तन्त्री को एक वार झंकृत कर दे।
रस बरसा दे सघन-गगन उनमें मंजुल-मलार भर दे॥
स्थिर होकर अखिल विश्व की पलकों से आँसू छलके।
मेरी एक एक तानो में सुन्दर गुण—गरिमा झलकें॥
उस नीरव संगीत लहरियों में ऐसी हो शक्ति-अपार,
हो मदमत्त रण—प्रांगण में सज दे समर साज संसार।

नही, नही, मिट जाये उससे उस 'अकपट चातक' की प्यास,
नाच उठे मन मोर पुनः लख ब्रज-कानन घनश्याम निवास।

विरह-वेदना-ग्रस्त विरागिनि को न रहे क्लेशों का लेश,
सरस-सुमन सौरभ फैलाये, हो सुख-मय यह 'भारत देश'।
विमल राग-रागिनियो से प्रगटित होवे अभिनव आभास,
खंड खंड हो जाय टूट कर पराधीनता निष्ठुर-पाश।
माँ, कदम्ब की छाँह-वही हो; बंशी वह नटनागर श्याम,
ब्रज-बनिताओं की क्रीडायें कलित ललित लीला अभिराम।
मधुर, मंजु मुरली से मुखरित हो जावे यह कुञ्ज कुटीर,
सफल-नयन हो जायें लखकर युगल-मूर्तियुत यमुनातीर।

अभिलाषा-सप्तक

चाहिये मुझे न सुख वैभव अनन्त धन,
तन मन हारिणी सुकामिनी का मंजु हाश।
नेक परवाह यश की न मुझे भूतल में,
हानि नही ज्ञान, ध्यान का, न हो यदि विकाश।
राजा नही दीन हीन रंक ही रहूँ सदैव,
अन्न के अभाव मे ही होवे चाहे प्राणनाश।
किन्तु करुणानिधि सदैव जन्म देना मुझे,
ब्रज के करीलमय सुकुंजों के आश-पाश।

तेरा ही मुरली मंजु सुनता रहूँ कानों से,
होके बस धेनु ब्रजभूमि मे चरा करूँ ।
यमुना पुलिन मे कदम्बन की डारन पै,
कोयल हो कूक तुव श्रवण भरा करूँ ।
ग्वालबाल होऊँ ऐसो भाग है हमारो कहाँ,
इन्द्र कोप लोपक गोवर्द्धन धरा करूँ ।
'वंस' ही के वंस में तू मुझे उपजाना प्रभु,
'भुवन' का मनवन बाँसुरी हरा करूँ ।

ठुकरा के चरणों से वैभव हटा दूँ दूर,
कामना नही है पाऊँ धन जन सुख मूल ।
चाह नही मुझको बनाओ प्रिया राधिका के,
कोमल सुकंठन के हारन को मंजुफूल ।
रूठ भले जाओ तुम मुझसे निठुर होके,
चाहे तुम जाओ अखिल 'भुवन' भूल ।
किन्तु सब तरते हैं सीस पै चढ़ा के जिसे,
मुझको बनाओ उसी पावन पदों का धूल ।

मानुख बनाओ तो निवास देना नन्द गाँव,
ग्वाला ही रहूँगा यही कामना हमारी है ।
सखा सखा कहके बुलाओगे समीप मुझे,
गैया ले चलूँगा संग तुमको जो प्यारी है ।

चाहिये मुझे क्या कहो इसके सिवाय और,
जिसके निकट तुच्छ सम्पति भी सारी है।
चकित कहेंगे सब 'भुवन' के भाग जागे,
देखो संग बंसीधर राधिका बिहारी है।

गोकुल गाँव के ग्वारन में, कय ग्वारन ही मुझको प्रगटाइये।
औ इन हाथन से 'भुवनेश' पुनीत दधि, मधु, माखन पाइये॥
जो खगनाथ करौं सो करौं यमुना-तट से नहिं दूर बसाइये।
मंजु कदंब की डार वही हो नीवास जहाँ सुखराश रचाइये॥

दीन, मति-हीन, पंगु, बधिर, रहूं मै मूक,
तृषित क्षुधा से होके व्याकुल ही पड़ा रहूँ।
घोर विपदा की मार सहता रहूँ जीवन में,
पाप पंक ही में चाहे सिर तक गड़ा रहूँ।
आँशुओं की धारायें बहा दूँ यदि रो रो के हो,
कण्टकमय पथ मे चाहे विकल खड़ा रहूँ।
निज शत्रुओं को किन्तु पीठ दिखलाऊँ नही,
करुणानिधान निज प्रण पै अड़ा रहूँ।

विपुल विलाश सुख वैभव विभूति जेते,
तुच्छ ही रहेंगे नही इनसे मुझे है काम।
धन औ विशाल धाम मुझको मिले न मिलै,
सीस पै विपत्ति की प्रहार ही हो आठो याम।

निष्कलंक, निष्पक्ष ही हृदय सदैव रहे,
अखिल 'भुवन' चाहे मुझे करे बदनाम।
कामना यही है नाथ! और अभिलाषा यही,
प्राण जब निकलें तो मुख में हो 'कृष्णराम'।

विरह

छलछल छलक रहा है तेरे यौवन-मदिरा का प्याला,
किस विषाद में किन्तु कमल-मुख बना हुआ है यों काला।
सरल हृदय में दुख देने को आह! गरल ने किया निवास,
मंजुभाषिणी! मृदुल हँसी के बदले यह कैसा निश्वास।
विरह-विधुर यह अधर दुःख की झलक दिखा देते है,
नयन कोण में छिपे अश्रुकण हृदय चुरा लेते है।

अपना दुखड़ा

हृदय कह रहा तेरे सम्मुख प्रेम सहित कुछ गाऊँ।
अंतस्तल में छिपी वेदना जो है उसे सुनाऊँ॥
किन्तु हाय! कहने से पहले ही यह दुखद कहानी।
रो देते हैं नयन और रुक जाती है यह वाणी॥
तुम्ही कहो इन युगल लोचनों को कैसे समझाऊँ।
रो देते हैं अङ्ग-अङ्ग किस-किस को अरे मनाऊँ॥
हे प्राणेश! नयन से बहती जो अविरल जल-धारा।
क्या न समझ लोगे उससे ही तुम रहस्य यह सारा?

मुस्कान

जब तुम मेरे हृदय-देश में चम्पक अँगुली से साकार,
खिच देते हो चित्र मनोहर सरस, ललित, सुन्दर, सुकुमार;
जागजागकर छिपे हुए मेरे मानस के कोमल भाव,
आह! छोड़ते तरल तरंगों मे जब मेरी जर्जर नाव;
भय से विह्वल हो जाता हूँ पड़ता मुझे न पथ पहचान,
साहस तुम्हीं बढ़ाते हो छिटका कर मुख पर मृदु मुस्कान।
जगती मे भीषण ज्वाला से जब मै चक्कर खाता हूँ,
कूल, कछारों, कुंजो में भी नहीं शान्ति सुख पाता हूँ,
होकर व्याकुल नयन निरन्तर अश्रु प्रवाह बहाते हैं,
तू होता है सदय, भाग्य के भानु उदय पाते हैं,
उद्भासित करके अन्तस्तल प्रगटित करके सुन्दर ज्ञान,
मार्ग बताते तुम ढुलकाकर अधर-देश मे मृदु मुस्कान।
किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखकर तुम मुझको कातर भयभीत.
मौन मन्त्र सा कानों में पहुँचाते हो मधुमय संगीत,
जब पतझड़ के सदृश नष्ट हो जाता जग का नवल उमंग,
बर वसन्त-सा सुधासिक्त कर दमकाते हो सबका अंग,
थपकी दे गुदगुदा अहा! तुम खींच 'भुवन' का लेते ध्यान,
भूतल में तब एकमात्र नटवर! रह जाता मृदु मुस्कान।

हृदयधन के प्रति

मोह, मद, मत्सर का हो न लवलेश जहाँ,
जानते हो कोई नही, कहते किसे निरास।
शठता औ हठता का प्रवेश भी न होता हो,
पास भी न फटके अधैर्य्य, दुःख औ उदास ॥
भेद भाव होवे नही पूज्य औ अपूज्यता का,
फैला हो प्रेम का प्रबल सूर्य्य-सा प्रकाश।
'भावुक भुवन' का निवास कब होगा ऐसा,
सुख और शान्तिमय मेरे करुणानिवास।

शोक-प्रवाह

तुव पद-कंज-पराग रेणु हित मैं नित प्रति ललचाऊँ।
मन मानस के अन्तर-तल से निसिदिन ध्यान लगाऊँ।
चैन रैन को नही, अहर्निस तेरा ही गुण गाऊँ।
पूज्य पिता! पर नही क्षणिक भी तुव दर्शन-सुख पाऊँ।
एक बार भी 'अमरपुरी' से प्रेम-वारि बरसाना।
अकुलाना मम देख हृदय से कभी भूल मत जाना।

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' बिहार के होनहार नवयुवकों में से हैं। आप बहुत थोडी उम्र से ही साहित्य-सेवा में संलग्न हैं।

आपका जन्म संवत् १९६६ वि० में शाहाबाद जिलान्तर्गत निमेज ग्राम में हुआ था। बहुत छोटी अवस्था में ही आपको अपने पिता के साथ प्रयाग चला जाना पड़ा। वहाँ आपके लगभग १३ वर्ष व्यतीत हो गये। आपने अभी तक किसी स्कूल या कालेज मे नही पढ़ा। घर ही पर आपने अपने पिता साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री से पढ़ा-लिखा। यह शिक्षा भी क्रमानुगत नही हुई।

बचपन से ही आप बड़े भावुक हैं। लड़कपन मे आपको आकाश के आदि-अन्त का पता लगाने की तीव्र लालसा थी। चलते हुए बादलों को आप छड़ी से खोदकर गिरा देने का उद्योग सदैव किया करते थे। बालकपन से ही आपको प्राकृतिक दृश्यों को देखने में बड़ा आनन्द मिलता है।

१४ वर्ष की अवस्था में आप प्रयाग से पटना आये। इस समय आप अपने पिताजी से संस्कृत का अध्ययन करते हैं और इस साल कलकत्ते की काव्यतीर्थ परीक्षा में भी सम्मिलित हुए हैं। आप हिन्दी, संस्कृत, अंगरेजी और बंगला जानते हैं।

बिहार के नवयुवक हृदय

श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

आप १४ वर्ष की अवस्था से ही कविता करते हैं। आप गद्य और पद्य दोनों अच्छा लिख लेते है। आपकी रचनाएँ आज, सैनिक, मतवाला, चाँद और बालक आदि पत्र-पत्रिकाओं में निकलती हैं। इस समय अध्ययन के कारण आप इच्छा रहने पर भी विशेष रूप से साहित्य-सेवा नही करते। भविष्य में हिन्दी को आपसे बहुत कुछ सेवा की आशा है। आप मधुरभाषी और मिलनसार हैं। आप परिश्रमी भी खूब हैं। आपका भविष्य उज्ज्वल तथा मंगलमय हो।

मुक्त

त्याग जिसने सारा ऐश्वर्य
दुःख को ही है अपना लिया,
हटाकर पात्र सुधा से भरा
गरल का जिसने प्याला पिया।
हृदय में जिसके भरी अपार-
वेदना दलितों के प्रति, आह;
बिताना जीवन समझा श्रेय
साथ लेकर जिसने गुमराह॥

देख दुखियों का दुःखसमुद्र
तैरने को जो हुआ तयार;
छलकता रहा आयु में सदा
पीड़ितोंके प्रति जिसका प्यार।

छोड़कर मोह प्राण को स्वयं
निछावर किया विश्व के लिए;
झुका जो कभी किसी से नहीं
स्वत्व पर मरे स्वत्व पर जिए॥

गुफा में, बन में फिरता रहे
सदा भयहीन और स्वच्छन्द;
प्रकृति का सारा सुखमय साज
भोग निर्लेप करे सानन्द ।
कभी मन में मत आवे क्रोध
द्वेष से हो न कभी संयुक्त;
विश्व उन्नायक, जग-सिरमौर
वही है रत्न, जगत् का "मुक्त" ॥

हताश हृदय

सोते हैं, मत छेड़ इन्हें, चिर-निद्रा मे सो लेने दे ।
व्यथित हृदय का भार मिटाने को जी भर रो लेने दे ॥
थोड़ा-सा है धीर हृदय में उसको भी खो लेने दे ।
स्मृति-पट पर अङ्कित चित्रो को धीरे से धो लेने दे ॥
तब फिर जले हुए दिल का ताजुब देखेगा यह संसार ।
प्रलय मचेगा और विश्व में गूँज उठेगा हाहाकार ॥

विवश

उषःकाल के जीवन मे उन दो आँखों से प्यार हुआ ।
उनकी मादकता पर बिकने को दिल हाय! तयार हुआ।
सिर झुका हिले फिर होंठ, ठिठक वह गया और कुछ शरमाया।
मै हाथ बढ़ा जब हृदय लगाने चला, नही उसको पाया।
अब ऊब उठा हूँ, विह्वल होकर करुण गीत गाता हूँ मै।
जी करता, निकल चलूँ, पर बन्धन में जकड़ा जाता हूँ मैं॥

दर्द

अरी धधक, तू खूब धधक मेरे अन्तरतम की ज्वाला ।
अपने ही अन्दर मै होऊँ जलभुनकर काला-काला ॥
मै पागल हूँ, तुझे बुझाना आँसू से मैंने चाहा।
तू दुगुनी हो गयी देखकर दुःसाहस मेरा, आहा!
मुझे प्रेम है तुझसे, मुझको छोड़ कही मत जाना तू।
इस संकीर्ण और सीमित दिल में ताण्डव दिखलाना तू॥
यमुना को आलोड़ित करके मीठे स्वर से गाना तू।
मेरे भरे हुए घावों को फिर से हरा बनाना तू॥

+ + +

अब तो मुझको परब्रह्म से दिल का दर्द सुनाना है।
आँसू भर भर कहना है, प्रियवर यह कैसा गाना है?

गाने में यह मादकता कैसी, कैसा उलझाना है ?
अथवा अपने चरणों से इन दुखियों को ठुकराना है ?
ज्ञात नहीं, अज्ञातसार में कितना पाप कमाया है।
निष्ठुर से निष्ठुरतर बदला जिसका मैंने पाया है॥

\+ + +

मैं दुखिया हूँ, इस जीवनमें रोकर समय बिताया है।
बड़े यत्न से स्मृति को विस्मृति में ही हाय ! छिपाया है॥

दीप-दान

अब तो इन गलियों में कोई कहता नहीं पुकार पुकार।
बहुत देर से आया हूँ मैं, झटपट आकर खोलो द्वार॥
अब तो कानों में पड़ती है नहीं विश्व-मोहक झंकार।
टक्कर खाकर टूट गये हैं, हाय ! विपंची के सब तार॥
हे अनजान ! कहाँ भूला तू, खाली है कब से कुटिया।
आ ! प्रकाश से भर दे इसको, कह दे—दीपक जला दिया॥

आओ

इस श्मशान में क्यों आते हो, आह ! यहाँ क्या पाने ?
जीवन की अन्तर्ज्वाला मे अपनी साध मिटाने॥
तृषित साधना बेदी पर जग का बलिदान चढ़ाने।
या हूँ ललक अनन्त रुदन को आता गले लगाने॥
आते हो ? आओ; पर आँखों के जल में तरना होगा।
जीना होगा जहाँ, वहीं फिर हँस हँसकर मरना होगा।

हृदय-हार

रूप !

मनोहारिणी नन्दन-सुषमा,
राका-शशि की निर्मल कान्ति !
मादकता मदिरा का प्याला,
या स्वर्गिक शोभा की भ्रान्ति !!

विश्व-माधुरी की शुचि आभा,
या यौवन का सुन्दर फूल !
है सोहाग की छटा मनोहर ?
या विरही-जीवन का शूल !!

प्रकृति-नटी का हास्य-ज्योति, या
मधुर-मिलन का भाव अनूप !
हीतल शीतल करने वाला,
या तरुणी रमणी का रूप !!

सोन्हौली,
तारापुर [मुंगेर]

केशवलाल झा 'अमल'
[अवस्था २५ वर्ष]

विश्व-नाट्यागार

विश्व यह अद्भुत नाट्यागार ।
पटीयसी वह प्रकृति-नटी है सूत्रधार करतार ।
गिरि कानन भू उदधि आदि ये सुन्दर दृश्य अपार ।
जीव मात्र सब पात्र यहाँ हैं ज्ञानी देखनहार ।
देखो तनिक ध्यान से इसको यह कैसा उद्गार ।
हुआ युगान्तर दृश्य उपस्थित मानों अब की बार ।
यह जो प्रबल लोकमत की है उमड़ी भीषण धार ।
कैसी चली मिटाती नृप की सत्ता अत्याचार ।
देश देश में हुआ प्रतिष्ठित शुभ स्वराज-सरकार ।
जलियाँवाला बाग़ यहाँ भी खोल दिया वह द्वार ।
भारतमाता जगा रही है तुम्हें पुकार पुकार ।
बड़ा विशाल क्षेत्र है आगे कूद पडो इक बार ।

आदर्श होली

आज यह अनुपम फाग मचाऊँ ।
स्वार्थ कुबुद्धि आदि कुश कंटक होली माँहि जलाऊँ ।
वारि विवेक दीप तन मंदिर आसन हृदय सजाऊँ ।
जननि भारत बिठलाऊँ ।

श्रद्धा थार उतारि आरती भक्ति भेंट निज लाऊँ।
पाय प्रसाद अशीष जननि के शुभ नव वर्ष मनाऊँ।
मातु-मन मोद बढ़ाऊँ।

करि पतझड़ विदेश-वस्त्रों के खादी नवल सजाऊँ।
अभिनव भाव कुसुम विकसित करि शुभ स्वराज फल पाऊँ।
विमल ऋतुराज बनाऊँ।

भंग उमंग पीबि भायप रँग सब कहँ आज रँगाऊँ।
विविध अङ्ग साहित्य वाद्य लै स्वतंत्रता सुर गाऊँ।
वीर रस फाग मचाऊँ।

सभा समिति की टोली सजि सजि गाँव गाँव प्रति जाऊँ।
घर घर हिन्द हिन्दु हिन्दी का शुभ संदेश सुनाऊँ।
धूम जग बीच मचाऊँ।

कन्या-सुधार

(मैथिली)

कूजित छल जे देश सरस कविता कलाप सँ।
पूजित छल सभ ठाम प्रबल विद्याक दाप सँ।
जगमग छल जग बीच नारि आदर्श रत्न सँ।
घर घर छल शुभ शांति जतै राजा क यत्न सँ।

से मिथिला शिथिला भेली कायर संतति जन्म सँ।
हैत हिनक उन्नति पुनः यदि सुधार हो सद्म सँ।

\+ + + +

पिता दान कय तजथि मुरुख कर बेचि गमावथि।
बाल्य काल में मातृपद क गौरव पुनि पावथि।
पति एमे छथि पास पिता छथि पंडित यद्यपि।
हो नहिं अक्षर ज्ञान वधू कन्या कैं तद्यपि।
विन वेतन दासी क पद गृहिणी गण पावथि अवश।
मातृत्व क अछि लोप जैं संतति गण तैं छथि विवश।

\+ + + +

विन रखने सम भाव पुत्र पुत्री मे सुन्दर।
विन हटने भ्रम भाव बालिका शिक्षा दुस्तर।
विन शिक्षा कन्या क वधू औती की उत्तम ?
विनु उत्तम वधु हैत शिशु क शिक्षा की हृत्तम ?
शिशु सुधार विन हैत की किछु देशक उपकार कहु ?
छाड़ि दुराग्रह मूर्खता कन्योन्नति सुखमूल गहु।

लहेरियासराय, [दरभंगा] — भोलालाल दास [अवस्था ३४ वर्ष]

सुरा-पान

बिद्या यह उनमाद असुभ की, बारि अहै बिपदा की!
दारिद केर देह यहि जानो, अघ की जननि सदा की!!
कलि को केवल कांत मार्ग यह, उर को अहै अँधेरो!
कुम्भ मोल लै भला बनो किन शीघ्र शुम्भ को चेरो!!

जन के होश हेराय हिये महँ हीन भाव उपजावै।
मात, पिता, गुरु, साधु, संत कहँ हनै, भविष्य न भावै॥
या को सुरा कहैं जग मै, सब अहो सुराभा धारी।
गुन को पक्ष गहै नहिं जो नर, लहै याहि दुखकारी॥

जाके सेवत पाप निरत नित होवत हैं नर नारी।
पड़ैं प्रचंड प्रपात नरक कै, पावैं संकट भारी॥
पशु सम दीसै दसा, प्रेत सम पातर तन दिखरावै।
ताकहँ ताकनहू को काकहँ कहो ख्याल उर आवै?

कितना हू लघु होय कुफल मद्पान किये को।
सदाचार को नाश करै, मत हरै हिये को॥
नरक 'अवीकी' ज्वलित अनल मों बास करावै।
प्रेत और पशु जोनि माहि नर को भरमावै॥

सकुचावत संकोच सील को, सुजस नसावत।
दूर बहावत लाज सुमन को मलिन बनावत॥
गुन गन सुभग भगावत, औगुन बेगि बुलावत।
महाराज सो सुरा भला कैसे तोहि भावत?

कदम्बकुआँ, [पटना]

महेशचन्द्र प्रसाद
[अवस्था लगभग ३० वर्ष]

स्वप्न-विषाद

निबिड कालिमा से आच्छादित हँसता था आकाश,
और पयोधर सिंहनाद से कहता था–"शाबाश" !
पवन तुरङ्गम उस सेनप को दिखा रहा संग्राम,
प्रकृति–जगत् के बीच मचा था ऐसा ही कुहराम।
मेघ-बिन्दु के विशिख समक्ष
बना हुआ था मै ही लक्ष—

मिला भयंकर घोर महा वन कण्टक से आकीर्ण,
पथ-विहीन शत योजन तक था मानो वह विस्तीर्ण।
सिंहादिक व्यालादिक हिंसक घूम रहे थे जन्तु।
देख देख कर टूट रहा था मेरा साहस तन्तु।
कैसे निकलूँ इससे हाय।
कौन बतावे यहां उपाय।

शैल समान पुलिन सरिता के दीख बड़े चहुँ ओर,
जिनके बीच अगम आपगा भी करती थी खघोर।
ताल समान तरङ्ग कभी था उठता विविध प्रकार,
नक्र मगर झख उपलाते थे उसमें बारम्बार।
अरे ! अचानक गिरी धरा।
मै भी उसके साथ गिरा।

सब छूटी आशा जीवन की चेष्टित थे सब अंग।
कर पद ने आधार-खोज में कर दी निद्रा भंग।
देखा वहाँ न भय था भी, थी केवल कुछ रात।
पड़ा हुआ था मैं शय्या पर होने को था प्रात।
परिवर्त्तित होकर आह्लाद
कहाँ गये वे स्वप्न-विषाद?

इसी तरह जग में जीवन है करता मिथ्या शोक;
जब तक उसमे दीख न पडता सच्चा ज्ञानालोक।
सहते हुए ताप इस तन में जब करता है यत्न,
तभी जीव यह पा सकता है 'ईश्वर' ऐसा रत्न।
स्वप्न-कथा का यह उपदेश
ग्रहण करोगे क्या कुछ देश?

मुंगेर } स्वर्गीय श्यामारुण वंशी,
[अवस्था ३० वर्ष]

युद्धस्थल के मध्य में

आगे कैसे बढ़ूं, सूझता नही भयानक पथ है आज।
पीछे हटना नहीं जानता, रख लो भगवन्! मेरी लाज॥

आशा, तप, विश्वास, धैर्य्य हैं भक्ति-पंथ के प्रमुखाधार।
बढ़ता हूँ नहिं किंचित् डर है तुम पर मेरा रक्षा भार॥
मन, वच, कर्म-भाव से सब दिन, रहूँ धर्म-पालन में लीन।
तप से कभी न विचलित होऊँ, कभी न हो मम साहस हीन॥
मर जाऊँ यदि सत्य धर्महित, यही रहे दिल में अरमान।
अखिल विश्व हित जन्म अनेकों धारण हों मेरा भगवान॥
हृदय भक्ति नहिं, भाव शुद्ध हैं, सब प्रकार से हूँ अति दीन।
इतना बल दे नाथ! हृदय मे, यही कामना लगी नवीन॥

महिला, इटाढ़ी [आरा] मधुसूदन ओझा 'स्वतंत्र'
[अवस्था २८ वर्ष]

नाश

जगत् में सबका नियमित नाश।
उषा का बंकिम भृकुटि-विलास,
निशा का किंचित् मंजुल हास,
छटा का यह सुन्दर शृङ्गार,
प्रकृति का है स्वच्छंद विहार।
अरुण-मंडल का रजत प्रकाश,
गगन-मंडल का पुष्पित वास।

छटाओं का यह अद्भुत मेल,
प्रकृति का है क्षणभंगुर खेल।
कुसुम-कलियों की मृदु मुसुकान,
हरित विटपों की छवि अम्लान,
ललित-लतिका कुसुमित द्रुम-वृन्द,
चटकना कलिका का स्वच्छंद।
सभी मे है सौंदर्य विकास,
सभी का होता तो भी ह्रास,
क्षणिक है जीवन स्वप्न-विकाश,
जगत् में सबका नियमित नाश।

चित्रकार

मलयानिल ने छेड़ जगाई, सुप्त अधखिली कलियों को।
बना दिया दीवाना सौरभ ने मधु-लोलुप अलियों को॥
वीणा की झंकार सुनाई पड़ती निर्जन कानन में।
करती है कल्लोल कल्पना, कविता-कुञ्ज-निकेतन में॥
मुस्काता है विश्व मदन, ले छटा प्रसूनों का मधुभार।
बैठ तीर पर चित्र खीचते हो, तुम चित्रकार सुकुमार॥
भूल गई है सखि रजनी, भरना तारा-मणि से अंचल।
तेरी चतुर चित्रकारी पर, टँगी हुई है दृष्टि अचल॥
विविध भाँति का रङ्ग कहाँ तुमने पाया हे प्रतिभावान्!
धन्य शक्ति है तेरी, तुम चित्रों में भरते जीवन-जान॥

हर्ष-शोक के संगम का, होता है चित्रों में दर्शन।
चित्रकार, क्या रँग दोगे, फिर शिशुता से मेरा जीवन ?

बाकरगंज (पटना) } जगन्नाथमिश्र गौड़ 'कमल'
[अवस्था लगभग २७ वर्ष]

मालिन के प्रति

विध्वंस वाटिका हाय ! हुई—
कोमल कलिकायें धूल गिरीं !
सुन्दर सुमनों में गन्ध नहीं,
लोनी लतिकायें हाय ! मरीं—
मालिन ! क्यों तेरे केश खुले ?
मुख की प्रतिभा क्यों क्षीण हुई ?
क्यों शोक-तप्त आँसू बहते ?
पे, सिसिक रही, क्यों दीन हुई ?
तेरा उपवन है उजड़ गया—
यह व्यथा, विकल तुझको करती !
था सींचा जिसको प्रणय-सुधा से—
वहीं अनल-ज्वाला जलती !
यह दृश्य देखती आँखों से—
पर, हृदय विदीर्ण हुआ जाता !

मंजुल मधु-स्निग्ध पराग पुष्प का—
मधुप चूसता मदमाता
तेरे माली का पता नहीं—
क्या घोर नींद उसको आई
क्रंदन-ध्वनि से उस निद्रित को—
तू सखि न जगा अबतक पाई ?

तरी. आरा
रामचन्द्र शर्मा 'काव्यकण्ठ'
[अवस्था २६ वर्ष]

चाह

चाह नहीं है, रायबहादुर बनकर मै इतराऊँ।
चाह नही है, बड़ों बड़ों से सजकर हाथ मिलाऊँ॥
चाह नही है, लन्दन जाकर मैं मिस्टर बन जाऊँ।
चाह नहीं है, बड़े लाट का मैं मेम्बर बन जाऊँ॥
चाह यही है जीवन-पथ मे, राग-द्वेष से दूर रहूँ।
चाह यही है हिन्द-देश की सेवा में भरपूर रहूँ॥
चाह नही है, नेता बन कर सभा-भवन में जाऊँ।
चाह नही है, जनता की मैं पूजा शीश चढ़ाऊँ॥
चाह नहीं है, कपट हृदय से त्याग वीर कहलाऊँ।
चाह नहीं है, योगी बनकर तन में भस्म रमाऊँ॥

चाह यही जीवनको मेरे, दीनों का उद्धार करूँ।
चाह यही है भारत माँ का, हिलमिल बेड़ा पार करूँ॥

रामेश्वरी प्रसाद "राम"

बाढ़ [पटना] [अवस्था २६ वर्ष]

प्रार्थना

अब स्वार्थ-तम का परदा सत्वर हटा दे मोहन।
अब आत्म-त्याग रवि की आभा दिखा दे मोहन॥
पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति लाली।
मन-पल्लवों पै आशा-बूँदें बिछा दे मोहन॥
महिला कमल-कली क्यों अब लों न खिल रही है।
विद्या-मलय बहाकर इनको खिला दे मोहन॥
अज्ञान के निशाचर हमको सता रहे हैं।
चैतन्य-शर से इनकी गरदन उड़ा दे मोहन॥
चेतें, मिलें, खड़ी हो, स्वत्वों को आज ले लें।
बिगड़ी मेरी बना दे शुभ दिन फिरा दे मोहन॥

कामेश्वर प्रसाद

साहेबगंज [छपरा] [अवस्था लगभग २६ वर्ष]

शरद्-वर्णन

(पूर्णचन्द्र-विषयक)

यहाँ आज क्या ! हा शरत् पूर्णिमा है।
उसी की मनो-मोहनी सत् समा है॥
शरत् शर्वरी सुन्दरी सी बनी है।
सुधा धाम को पा सुधा में सनी है॥
चकोरी लखो चञ्चु है चटपटाती।
कली कैरवी नाज से मुस्कुराती॥
महा मोद का राज्य मानो सु छाया।
तमस्तोम का सत्व संहार पाया॥
मधून्मत्त गाते अली झूमते हैं।
खिले पुष्प बालास्थ को चूमते हैं॥
कहीं झुन्ड के झुन्ड आनन्द छाके।
बने कैरवी कामिनी केश बाँके॥
अभै है कहीं गन्ध की लूट ठाने।
उचक्के नहीं चाँदनी रैन माने॥
न पै पद्मिनी कौमुदी-मोद-माती।
सती को नहीं लम्पटी ऋद्धि भाती॥
कहीं चाँदनी-चक्र में चक्र-माला,।
हुई चक्रिता पा रही है कसाला॥

दिवा मान हा ऊलुवे अन्ध भाते ।
अभागे कहीं क्या कभी सौख्य पाते ॥
पयो-राशि कैसा अहो हर्ष-व्यग्र ।
बढ़ा व्योम में बीचि-पाणी समग्र ॥
लिया चाहता चन्द्र उत्संग में है ।
पगा पुत्र वात्सल्य के रंग में है ॥
किधौं अब्ज मेरा महा दर्शनीय ।
लगे दीठि यापै नहीं राहवीय ॥
मनो हेतु या ऊर्मि से है छिपाता ।
किधौं प्रेम से पालने मे झुलाता ॥
किधौं व्योम-संसर्ग-सम्भूत-अङ्क ।
स्वकीयाङ्ग-संलग्न या अङ्क-पङ्क ॥
मनो धो रहा वारि से बार बार ।
किसे है नहीं पुत्र का इष्ट प्यार ॥
नभ-सद्म में तारकाली समेत ।
कला पूर्ण-राकेश शोभा-निकेत ॥
सुधा की सुरा पी पिला मस्त होते ।
उगे सर्व संसार सन्ताप खोते ॥
उदै-दृश्य क्या ही मनो-मुग्ध-कारी ।
जिसे देख को है न जो है सुखारी ॥
अनोखी लसी लालसी लालिमा है ।
गिरा वर्णना में लहे कालिमा है ॥

मनो ब्याह के रंग रंगे रँगीले ।
प्रिया-प्राचि को पा क्षपा के छबीले ॥
किधौं लाल जामा पिन्हा प्राचि-मैया ।
गहे गोद सामोद लेती बलैया ॥
किधौं है कहाँ ध्वान्त-उत्पात कारी ।
मनो ढूँढ़ते रोष से रक्त भारी ॥
किधौं बारुणी है सगी संग धाई ।
किधौं पद्मिनी खून की छींट छाई ॥
किधौं पूर्व दिग्भामिनी भाल लाल ।
लगी सोहती गोल बिन्दी विशाल ॥
पुनः पेखिये हो रहे रिक्त राग ।
नही राग की रेख आये विराग ॥
हँसाते नचाते कुढ़ाते किसी को ।
महा कौतुकी हो रुलाते किसी को ॥
बढ़े आ रहे दिव्य कैसे सुहाते ।
सुधा धार में विश्व सारा बहाते ॥
नही चन्द ये चन्द हैं गोकुला के ।
लसे संग मे तारिका-गोपिका के ॥
रचे व्योम-वृन्दाटवी बीच रास ।
नही चाँदनी हास्य की है उजास ॥
किधौं काम ही ये रती रोहिणी है ।
किधौं सौम्य शृंगार शोभा घनी है ॥

किधौं काम का काम्य कन्दूक है ए।
किधौं व्योम-उद्यान बन्धूक है ए॥
सरित्सुन्दरी की सु गोलार सीहै।
किधौं दिग्वधू का सिंधोरा यसी है॥
किधौं दिग्जयी मार की ढाल सोहे।
किधौं राजती थाल है चित्त मोहे॥
किधौं विश्व के हर्ष को है पिटारी।
किधौं ताज है प्राकृती-तेज धारी॥

शीतलपुर,
एकमा [सारन]

उपेन्द्रनाथ मिश्र,
[अवस्था २५ वर्ष]

(ईश्वर की महिमा)

विश्व-विपंची के वादक हे,
विश्व-विमोहन विभव-निधान,
हे सर्वेश्वर-जगन्नियन्ता,
भाग्य-विधायक सब गुण-खान!
परमपिता परमेश्वर स्वामी,
हे जग के प्रतिपालक ईश
हे स्वतंत्रता के दाता,
भव-बन्धन के नाशक जगदीश!

ज्वलित-हृदय की विपुल वेदना,
हरने वाले हे भगवन्त !
जीवन-ज्योति जगाने वाले,
अजर, अमर, अखिलेश, अनन्त ।
बृहद् विश्व के चतुर प्रबन्धक,
नायक जग के प्रेमागार;
हे गुरु ज्ञानी मोक्षप्रदायक,
सुख-दुख-दायक जगदाधार ।

अमरपुरी, जगतीतल-नन्दन—
कानन के हे दिव्य प्रकाश !
सन्त-हृदय के श्रेष्ठ प्रेम हे,
शिशुओं के स्वर्गीय सुहास !
हे भटकों के मार्ग-प्रदर्शक,
विरही के आश्रय आधार;
हे अनाथ के रक्षक पालक,
दुखियों के हित सदा-उदार ।

हे सरिता के सर-सर झर-झर,
झरनों के कमनीय स्वरूप;
विहँग-वृन्द के कलरव सुन्दर—
सुमनों के सद्गन्ध अनूप ।

गिरि-गह्वर नीरव निशीथ हे,
निर्जन वन की अनुपम शान्ति;
शीतल मन्द सुगन्ध पवन के—
दाता चन्द्र सूर्य की कान्ति !

हे न्यायी सर्वोच्च निरीक्षक,
निपुण नियामक विमल-विधान !
कामधेनु धर्मिष्ठ व्यक्ति के,
पापी के संहारक प्राण।
निराकार आकार सहित हे—
समदर्शी सर्वज्ञ सुजान !
प्रकृति-मंच के सुघड़ खेलाड़ी,
अन्तर्यामी 'देव' जहान ॥

गौरे,
दामोदरपुर (चम्पारण)

देवव्रत शास्त्री
[अवस्था २५ वर्ष]

विद्या

है अहर्निशि इस जगत में ज्योति जिसकी जागती।
देखते जिसकी प्रभा हिय की तमी है भागती॥
बात जिसकी मूक हो लाचार पशुता मानती।
देख जिसकी साधुता शठता न हठता ठानती॥
तेज जिसका है निराला देखकर जिसकी लपट।
है झुलसती मूर्खता मिटते मनुज के छल-कपट॥
जो अलौकिक वस्तु है पै आ धरा पै शोभती।
देव-किन्नर-नाग-नर-जड-प्राज्ञ मन को मोहती॥
व्योम-भू-पाताल में जिसकी छटायें सोहती।
संसार की सारी कलायें बाट जिसकी जोहती॥
तुल्य इस ब्रह्माण्ड मे जिसके न कुछ मिलता कहीं।
जिसका निराला रंग है बदरंग वह होता नहीं॥
जो अमित धन सब धनों मे शान-शौकत-हीन है।
जिसकी दया से शान से धनवान बनता दीन है॥
चोर-डाकू से कभी जाती नहीं जो छीन है।
बांटबखरे भी कभी जिसको न करते क्षीण हैं॥
संसार के विज्ञान का जिसका जताना काम है।
मानव-चतुष्पद-भेद जो विद्या उसीका नाम है॥
व्योम-यानों को सहज में ही चलाती है वही।
तार की सारी क्रियाओं को बताती है वही॥

रेडियो की अञ्जसा को भी जनाती है वही।
सागरों के वक्ष के बेडे बनाती है वही॥
बात बिगड़ी कौन है जिसको बनाती वह नहीं।
सूझ ऐसी कौन है जिसमे समाती वह नहीं॥
वह ढहाती गर्व है शुचिशीलता के दान से।
रोस को पानी बना देती हृदय के ज्ञान से॥
तमतमाना वह हटाती है सहज सम्मान से।
बात में वह रोक देती फूलना अभिमान से॥
द्वेष को प्रेमाग्नि में वह भस्म करना जानती।
अपकार के आवास में उपकार उत्तम मानती॥
वह गिराने में किसी को भाग लेती है नही।
जी दुखाने में कभी वह राय देती है नही॥
ऐंठने को दूसरों से आँख दिखलाती नही।
राह भूलों को बताती राह भुलवाती नही॥
है परम धन पै सताना है उसे आता नहीं।
छल-कपट से कोष भरना है उसे भाता नही॥
संसार की सब वस्तुओं की जाँच जो करती सदा।
खोज में रहती निरन्तर भेद क्या पावें कदा॥
स्थूल में क्यों सूक्ष्म में है राजती उसकी अदा।
है चकित कर डालती कुछ मर्म बतलाती यदा॥
जान दे बेजान मे वह काम करवाने लगी।
आँखहीनों से सहज ही पाठ पढ़वाने लगी॥

उर-तमोनुद का उदय इसके बिना होता नहीं।
बह यहाँ सकता कभी है स्नेह का सोता नहीं॥
दूर रह देखा गया उलझा हुआ सुलझा नहीं।
बिन दया देखा गया बिगड़ा हुआ बनता नहीं॥
विद्या बिना अबोध-तम जग से कभी जाता नहीं।
परमेश के स्थित्व का भी कुछ पता मिलता नहीं॥

खरौंधी, भवनाथपुर [पलामू] } पाण्डेय रामावतार शर्म्मा
[अवस्था २५ वर्ष]

तू

निभृत-निकुंज की निर्जनता में, कलियों की कोमलता में।
मलय-वायु की शीतलता में, गंगा की पावनता में॥
अर्द्ध-निशा की नीरवता में, ज्योत्स्ना की सुन्दरता में।
नव-यौवन की चंचलता में, नयनों की मादकता में॥
प्रिय-वियोग की विह्वलता में, विस्मृत की तन्मयता में।
प्रेम-देव की व्यापकता में, कवियों की भावुकता में॥
उच्च-जाति की निष्ठुरता में, दलितों की आतुरता में।
रण-क्षेत्र की भीषणता में, कायर की कायरता में॥
भग्न-हृदय की व्याकुलता में, पुष्पों की सौरभता में।
दीख पड़ा तू! सब सत्ता में, स्वतः "शब्द" की कविता में॥

कब-तक

कब तक देखूं राह प्राणप्रिय !
इन मिलनोत्सुक नयनों से ।
कब तक पी की लगन लगाऊँ,
इन विरहाकुल बयनों से ॥
कब तक हाय ! न दर्शन दे कर,
मुझ को कहो सताओगे ।
कब तक दारुण विरह व्यथा में,
और अधिक तड़पाओगे ॥

कब तक निष्ठुर बन जीवनधन !
मुझ को नाथ रुलाओगे ।
कब तक मेरे शुष्क हृदय में,
प्रेम-सुधा बरसाओगे ॥
कब तक हे मेरे अराध्य ! मम,
दुःखित हृदय जुड़ाओगे ।
कब तक निज चितवन दिखला कर,
हिय की कली खिलाओगे ॥

कब तक अपने करकमलों से,
सुन्दर साज सजाओगे ।

कब तक मिलन वारि बरसा कर,
सुख तरुवर सरसाओगे ॥
कब तक बहियाँ डाल गले में,
हर्षित गले लगाओगे ।
कब तक प्रियतम बतलाओ तो,
मीठी हँसी हँसाओगे ॥

शोभासदन,
कमंगरगली (पटना सिटी)
ईश्वरीप्रसाद वर्मा 'शब्द'
[अवस्था २५ वर्ष]

अभाव

है संसार वही भारत है, मेरा प्यारा भवन वही ।
इधर उधर हैं वही दिशायें, ऊपर नीला गगन वही ॥
वही सूर्य प्रति दिन आता है, लेकर सोनेकी थाली ।
वही चन्द्र अमृत बरसाता, भरता अन्नोंकी बाली ॥

वही खेत शश भरे लखाते, वही बनों की हरियाली ।
भूधर सभी खड़े वे ही हैं, करते जग की रखवाली ॥
रत्नाकर गम्भीर भाव से, वही दृश्य दिखलाते हैं ।
सरिताओंको बड़े प्रेम से, हृदय-मध्य बिठलाते हैं ॥

वही वसन्त वही वर्षा है, वही शरद्-साम्राज्य यहाँ ।
वही कोकिला वही पपीहा की मदभरी पुकार यहाँ ॥
वही फुदकना वन पक्षी का, और मयूरी नृत्य वही ।
वही चहकना है बुलबुल का, सुभग सारिका कृत्य वही ॥

वही फूलना है कलियों का, वही सुगन्धी अलबेली ।
अब तक वही मोहिनी, मूरति धारे नवल नवेली ॥
पर फिर भी क्या सदा उदासी, रहती है मेरे मनमे ।
है 'अभाव' स्वातन्त्र्य विना, विना सुख हो इस जीवनमें ॥

नौगाई
सग्रामपुर (मुंगेर)
ठाकुर उच्चेश्वरप्रसाद सिह 'ईश्वर'
[अवस्था २४ वर्ष]

अनुरोध !

माँ ! यद्यपि हम सब बालक हैं कुसुम-सुकोमल और अबोध !
फिर भी, तेरे चरणों में बस, यही हमारा है अनुरोध !
निःसंकोच हमें दे दे अपने हाथों की तीक्ष्ण-कुठार !
होने दे—यदि दृश्य देख यह जग में होगा हाहाकार !!
चरणों की ही धूल मिले, है चाह नही पहनें हम ताज ।
कर विश्वास, न किसी तरह पद-मर्दित होने देंगे लाज !!

हमें न विचलित कर सकते हैं विघ्नों के विक्षिप्त-प्रहार !
बड़वानल के दाह, उदधि-गर्जन, तूफान प्रलय-हुंकार !!
कह दे—"जा, हो सफल ध्येय में, ले, देती हूँ स्वीय कुठार !
आज हमारे बच्चों की भी साहस-शक्ति देख संसार !!

मत रूठो !

ठुकरा दो पैरों से, यदि ठुकराने की है चाह तुम्हें;
'मै मर जाऊँ'—यही कामना—किन्तु, न हो परवाह तुम्हें !
सम्हले रहना कहीं बहा दे करुणा का न प्रवाह तुम्हें;
दूर हटो, पर मत रूठो, देखो, लग जाय न दाह तुम्हें !
हाँ, निकाल लो एक एक कर तुम अपने मन के अरमान !
मत रूठो, पर मत हे दुखिया के प्यारे भगवान !!

बाकरगंज (पटना) — केदारनाथमिश्र गौड़ 'प्रभात'
[अवस्था लगभग २४ वर्ष]

अनुनय

मैं हूँ तेरा अनुचर प्रभो, मोह-अज्ञान-ग्रस्त ।
संसारों की प्रगति लख हूँ निन्द्य उद्भ्राढ़ त्रस्त ॥
उद्योगी हूँ तदपि रहता सर्वदा रिक्त हस्त ।
मुद्रा मुद्रा जपन करता त्याग स्वामी प्रशस्त ॥

नाना रोग-ग्रसित रहता लालसा वृद्धि पाती।
चिन्ता में है निशि दिन प्रभो विश्व माया डुबाती॥
आशा से यदपि मन को धैर्य्य होता सदा ही।
पै होती है विफल जब तो दुःख होता बड़ा ही॥

ऐसे में तो क्षण भर लिये याद आते तुम्हीं हो।
चाहे मेरे स्वजन गण आत्मीय प्यारे कहीं हों॥
पश्चात् थोड़े पुनरपि वही मोहिनी मन्त्र आता।
मिथ्या नाता 'मधुर' सब आत्मीय से जोड़ जाता॥

यों ही मेरा प्रति दिवस है व्यर्थ का बीत जाता।
है कोई भी कलित मुझ से कार्य्य होने न पाता॥
अज्ञानी हूँ दस दिसि प्रभो दीखता है अँधेरा।
अन्तर्यामी बस अधिक क्या, ज्ञात ही हाल मेरा॥

आके नौका भव जलधि के मध्य में डूबती है।
कैसे जाऊँ सुतट पर कैवर्त्त तो लापता है॥
रक्खो जीता अतल जल में या मुझे दो डुबाही।
मैं तो तेरी शरण अब हूँ कृपा या कृपाही॥

रलैठा [मुङ्गेर] बनारसी ढे० 'मधुर'
[अवस्था २३ वर्ष]

आत्म-परिचय

(समालोचक)

समालोचकों में मेरा बस नाम प्रथम है।
मुझे नहीं भजता वह लेखक महा अधम है।
लेखक औ कवियों का हूँ मैं भाग्यविधाता।
मुझे प्रशंसा निन्दा अनुचित करने आता।
खा चोट करारे कलम के कविवर पड़े कराहिए।
भर नजर तड़पता देख लूँ और मुझे क्या चाहिए।

(लेखक)

हूँ अरसिक मूर्द्धन्य बला से पर हूँ लेखक;
हिन्दी पत्रों को सुन्दर लेखों का प्रेषक।
हिन्दी हत्याकारी हूँ, व्याकरण-व्याध हूँ।
रस वस कुछ न जानता हूँ मैं तो अगाध हूँ।
सम्पादक जी! खोल कर मुझको खूब सराहिए।
लेखों को मेरे छाप दें और मुझे क्या चाहिए।

(प्रकाशक)

अरे लेखको! हमी प्रकाशक कहलाते हैं;
जो तुमको तम से प्रकाश में ले आते हैं।
इतनाही उपकार हमारा है क्या कुछ कम?
पुरस्कार फिर कहो माँगते हो क्यों हरदम।

ज़रा तुम्ही सोचो तुम्हें करना ऐसा चाहिए;
हैं हम पूँजीपति हमे तो हाँ पैसा चाहिये।

(सम्पादक)

अहम्मन्य सम्पादक हूँ मै लेखकगण सम्हले रहना।
है कर्त्तव्य तुम्हारा मेरे काटछाँट को बस सहना॥
कलम कतरनी से जब चाहूँ भाव तुम्हारे सब दूँ काट।
नाहक बकझक क्यों करते हो नही देखते मेरा ठाट॥
अब जिस समय जिसे चाहूँ साहित्य-शिखर पर बिठला दूँ।
यश देवी है वश में मेरे जिसे चाहूं इठला दूं॥
चाहूँ जिसे युगान्तरकारी पल में उसे बना दूँ मै।
बड़ों बड़ों की इज्जत को मिट्टी में तुरत मिला दूँ मै॥
यदि परिचित हो मुझसे तो तुम समझो अपने को विद्वान।
कही अपरिचित हुए अगर तो यह जानो दुर्भाग्य महान॥
क्योंकि अपरिचित जन को तो गिनता हूँ मैं अति तुच्छ सदा।
मेरे पत्र में न पाते हैं उनके लेख स्थान कदा॥
केवल वेस्ट बास्केट में मै फेंक उन्हें देता हूँ बस।
लेख छाप अपने परिचित के उनको ही देता हूँ यश॥

खरगपुर, बिहटा (पटना) — गंगाशरणसिंह (साहित्यरत्न) [अवस्था २३ वर्ष]

जिज्ञासा

यमुना-तट पर खड़ा शांत हो
निरख रहा था ब्रज-बनिता।
कूलों की मंजुल कलियों को
देख बिहँसती थी सरिता॥
नील गगन से झाँक झाँक कर
तारेगण मुसकाते थे।
थिरक थिरक कर चन्द्रदेव,
आ कर आनन्द बढ़ाते थे॥
पुष्पों की माला लेकर,
मन्थरगति से वह आती थी।
उस छवि की मंजुल चितवन
रसिकों का चित्त चुराती थी॥
आकर रुकी, हँसी, फिर बोली,
"तुम क्यों यहाँ खड़े हो?
नन्दनबन-सी छटा देख,
क्या तुम पथ भूल पड़े हो?
अथवा उस घनश्याम मूर्ति से
तुम भी गये ठगे हो?
या मुझ-सा निज को विनष्ट
करने पर स्वयं लगे हो?"

हरकुलियन प्रेस
मुजफ्फरपुर

शारदाप्रसाद 'भण्डारी'
[अवस्था २३ वर्ष]

कविते !

वाणी-वीणा झनकार कहें,
कविवर हिय का उद्गार कहें,
मंगलमय मंजु मलार कहें,
या सुख-सरिता की धार कहें !

वर विमल वसन्त बहार कहें,
या संसृति-सोभा-सार कहें,
क्या सु-रति हृदय का मार कहें,
या कामिनि-कान्त-दुलार कहें !

जीवन नौका पतवार कहें,
झंकरित सुप्रेम-सितार कहें,
क्या नव सुन्दरी-शृंगार कहें ?
या भ्रमर भ्रमरि गुञ्जार कहें !

कविते ! मन-मोहक धार कहें,
या नव जीवन-सञ्चार कहें,
क्या प्रेमी का आधार कहें ?
या नवल सुमन का हार कहें !

सोन्हौली, तारापुर [मुंगेर] — नवलकिशोर झा 'नवल' [अवस्था २२ वर्ष]

प्रश्न

मुक्त गगन में मचा हुआ है, कैसा क्रन्दन-मय चीत्कार !
चतुर्दिशाएँ करुण-स्वरों में, रह रह उठती किसे पुकार !
सिसक सिसक कर वायु भ्रमित सी, कहती किसका अत्याचार !
सभी ओर रजकण सा उड़ता फिरता, कैसा हाहाकार !
जग के हृदय-देश में काली छाया-सी क्या सोती है !
मेरे जीवन की विभूति क्यों व्याकुल फिरती रोती है !

निवेदन

यौवन-ग्रीष्म-प्रचण्ड-ताप में झुलस रहा है मेरा मन।
तीव्र-लालसा-लू की लपटें बढ़ती जाती हैं छन छन।
अन्तस्थल को जला रहा है, धधक धधक कर प्रेम-अनल।
फूट फूट कर विलप रही है परदे में वासना विकल।
मेरी हृदय-वेदना हर जा दरस दिखा कर ऐ स्वामी।
पा विश्राम सुखद छाया में होऊँ तेरा अनुगामी।

कतरीसराय [गया] — प्रबोधचन्द्र [अवस्था ५५ वर्ष]

उद्वेजना ।

शैशव की मञ्जुल दोनी में यौवन का उन्माद—
ढाल चला अज्ञात पथिक, मधु-सम्मोहन-सम्वाद !
'अपना' समझ सामने उसके मैं ने खोली छाती,
अहह ! लुटेरा लूट ले गया, भोलेपन की थाती !

\+ + + +

उलझा हृदय जभी मेरा उसकी माया-लड़ियों मे,
बिका हाय ! सर्वस्व तभी से मतवाली घड़ियों में !
अमित वेदना की लहरी में भुला दिया अपने को,
चेतन की हरियाली में ही बुला लिया सपने को !

\+ + + +

कौन खींचता जाता अब भी इस पतंग की डोरी ?
ठहरो निठुर खिलाड़ी ! उभड़ी जाती पीड़ा भोरी !
बहुत दूर अज्ञान देश में, मेरा मन है अटका,
यह अल्हड़-शैशव मृदु मेरा, माया-जग में भटका !

\+ + + +

परिचय उस से कब का मेरा, कैसा है यह नाता,
क्यों मेरी सोई पीड़ा को 'वह' उभाडने आता ?
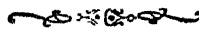
मूक-माँग ।

बनी रहे हिय मधुर वेदना,
बहते रहें अश्रु-निर्झर !
व्याकुल प्राण सदा तेरे—
दर्शन-हित बने रहें नटवर !!
सदा खोजता जाऊँ मैं—
पर तू अनन्त में मिलता जा !
आतुर आँखों की ओझल हो,
झिलमिल-सा तू हिलता जा !!

यों छक कर इस खोज ढूँढ़ से—
करने लगें कूच जब प्राण !
बिना प्रयास भाव-वैभव से—
गूँज उठें हृत्तन्त्री-तान !!
रिमझिम बजती पाँय-पैंजनी,
मुरली मधुर बजाते नाथ !
आ हिय-आँगन लगो नाचने—
हम भी नचैं तुम्हारे साथ !!

मिश्रौली, बिलौटी [शाहाबाद] } भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
[अवस्था २२ वर्ष]

चिता

अरी चिते ! चित–बीच सर्प-सा
यह तेरा डँसना कैसा ?
काली की कल किलकारी-सा
भय–कारी हँसना कैसा ?

धधक-धधक कर जल उठती है—
कभी मंद पड़ जाती है—
जग की आश निराशा काया
दृश्य प्रकट दिखलाती है ?

बन-देवी-सी सरित-कूल पर
अनुपम तेज-राशि लसती
किसी साधिका-सी निर्जन में
विश्व रुदन पर जो हँसती ॥

सुमन में नवरस

पवन के पावन तम 'शृंगार'
उषा के मंजु मनोहर 'हास'
सुमन से सीखे सब संसार
'शान्त' चित करना मधुर विकास ।

सुमन मन मेरा तेरी ओर
'भयानक' आतुरता-आवेश
खींचता 'अद्भुत' गति चितचोर।
'वीर' ता के कोमल संदेश॥

'रौद्र' बन 'विकृत' करेगा भानु
युवक-सा अ 'करुण' विभव-विभोर।
फूल! पर मत निज गौरव भूल
धूल मिल फिर फूलोगे फूल।

बिहारी-बिहार, पकड़ी-नरोत्तम } पांडेय अवध बिहारी श्रीवास्तव
सतजोड़ा बाजार (सारन) } [अवस्था २२ वर्ष]

व्यर्थ जीवन

जीवन व्यर्थ गया उसका जिसने न प्रेम-रस पान किया।
हिय नीरस ही रहा, न जिसने प्रेम अदान-प्रदान किया॥

व्यर्थ गया उसका जीवन जिसने न प्रेम आलाप किया।
व्यर्थ उसे समझो, न प्रेमहित जिसने पश्चात्ताप किया॥

प्रेम-मंत्र का जाप न जिसने मन मंदिर में किया कभी।
"अमर" व्यर्थ उसका जीवन है व्यर्थ काम है अहो-सभी॥

प्रेम-सूत्र में एक बार भी, शुभग पिरोओ हृदय सुमन।
जीवन धन्य बनेगा सब विधि स्वर्गिक सुख पायेगा मन॥

मुरलिके!

मेरे सुख में कंटक बन कर अरी मुरलिके! तूँ आई।
मेरे मंजु विलास हास में तूँने बाधा पहुँचाई॥

तेरे साथ नाथ जू मेरे, मत्त बने रहते सब काल।
कभी न सुधि लेते हैं मेरी यद्यपि रहती परम बिहाल॥

पा बसन्त अनुकूल समय लगने को थे जब सुन्दर फूल।
उसी समय तूँने आ सौतिन उत्पाटा सहसा सुख-मूल॥

शरत् चन्द्र की स्निग्ध चन्द्रिका में जब थी कर रही बिहार।
बादल बन कर उसे छिपाया अन्धकार का किया प्रसार॥

जीवन-तरणी भव-सागर में खेव रही थी जब सुख मान।
लिया बीन पतवार प्रेम का हाय किया जीवन बलिदान॥

× × ×

आज तुझे पा अपने कर में मन की साध मिटाऊँगी।
श्याम-सहचरी सौतिन मेरी यम-पुर तुझे पठाऊँगी॥

फिर भी श्याम-संग बिहरूंगी प्रेम-राज्य में बनी स्वतंत्र।
प्रेम हमारा सर्वस होगा प्रेम बनेगा जीवन मंत्र॥

मेरीचाह

प्रकृति राज्यमें निर्भय विचरूँ चिन्ता का हो नाम नही।
पीने को हो प्रेम अमीरस मदिरा का कुछ काम नही॥

डूबा रहूँ ध्यान में हरदम, लेता रहूँ हृदय की थाह।
यही लालसाएँ मेरी हैं, और यही है मेरी चाह॥

स्थान मिले एकान्त सदा ही, कविता 'अमर' बनाने को।
संगति होवे संत जनों की चित का चाव बढ़ाने को॥

मिले परिस्थिति सानुकूल हो शीतल मंद सुगंध समीर।
वृन्दावन की कुञ्जगली हो, अथवा हो यमुना का तीर॥

रतैठा हवेली (मुंगेर) — नृसिंहपाठक 'अमर' [अवस्था २१ वर्ष]

क्या से क्या

सुठि सितार के तारों पर उँगली की जब पड़ती है मार।
श्रुति-गोचर होती है तौ भी सुधासनी सुन्दर झंकार॥

वह सुनकर उरबीच प्रवाहित हो उठती है नव-रस-धार।
हो जाता है ज्ञात कि यह है शान्ति-पूर्ण सारा संसार॥
सरस भाव संयुक्त मनुज की यही दशा है नित हे यार।
तनिक न विचलित होते पाकर दुःखों के आघात अपार॥
प्रत्युत् बज उठते हैं झटपट हृदय-यन्त्र के सारे तार।
साधु-शब्द से हो जाता है आप्यायित सारा संसार॥

शुभागमन

अपने पूर्व हिन्द-गौरव का ज्ञान कराने आयी है।
माँ! कमले अपने बच्चों की रक्षा करने आयी है॥
दुष्ट जनों का नाश कराने मुझे बताने आयी है।
राघवेन्द्र के शुभ-चरित्र को याद दिलाने आयी है॥
पूर्व वीर योद्धाओं का फिर नाम सुनाने आयी है।
अहो हिन्दुओ! फिर से अम्मा तुम्हें जगाने आयी है॥
साश्रु-नयन वह बिलख बिलख कर दुःख जताने आयी है।
हो जाओ तैय्यार कमर कस यही बताने आयी है॥
डरो न पीछे पाँव धरो, यह नीति सिखाने आयी है।
होगी विजय अवश्य तुम्हारी, यही बताने आयी है॥

चम्पानगर, भागलपुर। भगवान मिश्र 'निर्वाण'
[अवस्था २१ वर्ष]

अभिलाषा

चिर जीवन की अयि जननी ! तव आन्तरिक उल्लासा ।
निहित आत्म की नन्दन बन की, टूटी हुई दुराशा ॥
अपलक दृग के भ्रान्त दृष्टि की, यह अन्तिम आश्वासा ।
बिन मिजराब सितार वाद्य की, विकृत स्वर की श्वासा ॥
हृदय-स्पन्दन के मूक जगत की जीवनदर की भाषा ।
मानवता के स्वर्ण समय का अक्षुण्ण यह परिभाषा ॥
पददलितों के स्वतंत्रता का मृग-मरीचि-आभासा ।
जननी ! तू मसोस रहती है जीवन की अभिलाषा ॥

पनिहारी

बलखाती मनहर पनिहारिन जल भरने नहिं आयी ।
झीनी अँगिया के तारों से हृदय झाँकने आयी ॥
प्रेम-नगर की साँकर गलि से नेह निवारत आयी ।
छबि-मयंक के कितने चातक बान्ध लजीली लायी ॥
निर्मल शीतल सरवर जल में प्रेम मीन को पायी ।
उझक झिझक कर जानि अकेली छवि-वंशीहि बझायी ॥
सुरभित भाव-कुसुम की माला जीवनधन पहनायी ।
लोचन-लाज लगाम लगाकर समय सकोच बुझायी

खरेंदा,
भगवानपुर (शाहाबाद)

मार्कण्डेय पाण्डेय 'मधु'
[अवस्था २१ वर्ष]

सरस-सूचना

(१)

अरुणोदय के प्रथम अरुणिमा
की नभ में सुन्दर मुसकान ।
दिवस-आगमन के पहले ही
बन-विहंग की कोमल तान ॥

(२)

विटप फलित होने के पहले
नवकिसलय-छबि की छिटकान ।
कर देती मन मुग्ध काव्य के
प्रथम कल्पना आकर ध्यान ॥

(३)

होता प्रेम-क्रिया के पहले
नव-यौवन-मद का संचार ।
और मिलन के प्रथम गूँजते
हृत्तंत्री के कोमल तार ॥

वंगरहटा, शुभाड्योढ़ी [दरभंगा] } वागीश्वरी सिंह
[अवस्था २१ वर्ष]